उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

DIPLOMA IN MEDICAL ASTROLOJY

चिकित्सा ज्योतिष में डिप्लोमा

पाठ्यक्रम कोड़ –DMA-20

ज्योतिषशास्त्र में विविध व्याधि योग

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी-263139

Toll Free : 1800 180 4025

Operator : 05946-286000

Admissions : 05946-286002

Book Distribution Unit : 05946-286001

Exam Section : 05946-286022

Fax : 05946-264232

Website : http://uou.ac.in

अध्ययन मण्डल

कुलपति (अध्यक्ष)
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
प्रो0 देवीप्रसाद त्रिपाठी, कुलपति
उत्तराखण्ड संस्कृत विश्वविद्यालय, हरिद्वार
प्रो0 विनय कुमार पाण्डेय
अध्यक्ष, ज्योतिष विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,वाराणसी
प्रो0 रामराज उपाध्याय
अध्यक्ष, पौरोहित्य विभाग, श्री ला.बा.शा.क्रे.स.वि.वि. नई दिल्ली

प्रो0 एच0 पी0 शुक्ल (संयोजक)
निदेशक, मानविकी विद्याशाखा
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
डॉ0 नन्दन कुमार तिवारी
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, ज्योतिष विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
डॉ0 प्रभाकर पुराहित
असिस्टेन्ट प्रोफेसर,ए.सी.ज्योतिष विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

पाठ्यक्रम समन्वयक

डॉ 0 प्रभाकर पुराहित
असिस्टेन्ट प्रोफेसर,ए.सी ज्योतिष विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

सम्पादन

डॉ 0 नीरज कुमार जोशी
असिस्टेन्ट प्रोफेसर,ए.सी. संस्कृत विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

इकाई लेखन	खण्ड एवं इकाई संख्या	
डॉ. रत्न लाल शर्मा ,सहायकाचार्य ज्योतिष विभागाध्यक्ष, उत्तराखण्ड संस्कृत, विश्वविद्यालय, हरिद्वार उत्तराखण्ड	खण्ड -1	(सम्पूर्ण)
डॉ. कृष्ण कुमार भार्गव,सहायकाचार्य,ज्योतिष विभाग तिरुपति ,आंध्रप्रदेश, केन्द्रीय संस्कृत विश्व विद्यालय	खण्ड -2	(1, 2)
डॉ. गणेश त्रिपाठी,सहायकाचार्य ज्योतिष विभाग शासकीय रामानन्द संस्कृत महाविद्यालय लालघाटी, भौपाल (मध्यप्रदेश)	खण्ड -2	(3,4,5)
डॉ. रमेश शर्मा,सहायकाचार्य, ज्योतिष विभाग गवेर्मेंट नेहरु कॉलेज फगली शिमला,हिमाचल प्रदेश	खण्ड -3	(सम्पूर्ण)
डॉ. देशबन्धु शर्मा,सहायक प्राध्यापक,वास्तु विभाग श्री लाल बहादुर शास्त्रीकेन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ , नई -दिल्ली	खण्ड- 4	(1,2,3,4)

प्रकाशक : उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
कॉपीराइट @ उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
पुस्तक का शीर्षक -**ज्योतिषशास्त्र में विविध व्याधि योग**

मुद्रक : प्रकाशन वर्ष : 2022

नोट:-यह पुस्तक छात्र हित में शीघ्रता के कारण, प्रकाशित की गयी है। संशोधित व परिवर्द्धित संस्करण का प्रकाशन पाठ्यक्रम के पूर्ण लेखन व सम्पादन के पश्चात् किया जायेगा। इसका उपयोग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की लिखितअनुमति के बिना अन्यत्र किसी भी रूप में नहीं किया जा सकता।

अनुक्रम

प्रथम-01 काल पुरूषावयव

इकाई-01 कालपुरूष की अवधारणा
इकाई-02 कालपुरूष का रोगों से सम्बन्ध
इकाई-03 नेत्र रोग
इकाई-04 मुख रोग
इकाई-05कर्ण रोग, नासिका रोग एवं गला रोग

द्वितीय-02 मध्यम अंग विचार

इकाई-01 हृदय रोग
इकाई-02 उदर रोग
इकाई-03 दन्त रोग
इकाई-04 वक्षरोग एवं क्षय रोग
इकाई-05गुर्दा रोग

तृतीय-03 अधोअंग रोगाधिकार

इकाई-01 वस्ति रोग
इकाई-02 गुर्दा रोग
इकाई-03चर्म रोग
इकाई-04 गुदा रोग
इकाई-05गुप्त रोग
इकाई-06जानु एवं पाद रोग

चतुर्थ-04 रोग विशेष

इकाई-01अस्थि रोग
इकाई-02 स्नायु रोग
इकाई-03 स्त्री रोग
इकाई-04 बाल रोग

खण्ड – प्रथम
काल पुरूषावयव

इकाई–1 काल की अवधारणा

इकाई की रूपरेखा –

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 मुख्य भाग खण्ड एक–काल विज्ञान की प्रासंगिकता
1.3.1 उपखण्ड एक–काल की प्राचीन भारतीय ग्रंथों में अवधारणा
1.3.2 उपखाण्ड दो–ब्रह्म आयुर्मान एवं कल्पमान की अवधारणा
1.3.3 उपखण्ड तीन–नवविध कालमान की अवधारणा
1.4 सारांश
1.5 पारिभाषिक शब्दावली
1.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.7 सन्दर्भ ग्रंथों की सूची
1.8 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना :–

जैसा कि ज्योतिषशास्त्र का प्रधान विषय काल **गणना करना** है वेद में इसे प्रधान विषय के रूप में स्थापित किया है। चूँकि काल ही सब कुछ है यहाँ तक वेदांग ज्योतिष के प्रणेता आचार्य कालज्ञानं प्रवक्ष्यामि इस प्रकार से काल के विषय में कहते हैं वस्तुतः काल ही सर्वस्व है काल ही ईश्वर है काल के बिना कुछ भी सम्भव नहीं है। इसलिए जगत में काल की ही प्रधानता रहती है। ''कालो गच्छति धीमताम्'' बुद्धिमान लोग काल की प्रधानता के विषय में जानते हैं। ''काल संख्याने'' सूत्र के काल धातु के सहयोग के निष्पन्न काल शब्द गणना के अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है इसलिए गणना के अर्थ को व्यवहार में प्रयोग बताया गया है। वस्तुत संसार में सभी कार्य काल की अपेक्षा रखते हैं इसलिए क्रिया की अपेक्षा काल की प्रधानता है। काल के विषय में यदि यहाँ चर्चा करें दो प्रकार के काल के विषय में उल्लेख प्राप्त होते हैं। जिसमें स्थूल काल एवं सूक्ष्म काल। स्थूल काल व्यवहारार्थ है यहाँ ज्योतिषशास्त्र में घटी, पल, विपल, कला, विकला, प्रतिविकला के रूप में प्रयोग किया जाता है। और आधुनिक गणितीय विधि में काल का प्रयोग गणनात्मक है जिससे घण्टा, मिनट, सैकिंड आदि समाहित है। प्रयोग में जैसे हम व्यवहार में जानते हैं कि प्रातः 6 बजे सूर्योदय होगा। दोपहर 12 बजे के आस–पास अभिजित मुहूर्त का होना सांय 5 बजे सूर्यास्त का होना इत्यादि समस्त विषयों का गणनात्मक काल का व्यवहार में प्रयोग होता है। द्वितीय काल सूक्ष्मकाल के रूप में देखा जा सकता है जिसमें व्यवहार में प्रयोग नहीं किया जा सकता इसलिए इसको अयोग्य काल की संज्ञा भी है। इसे त्रुटि से लेकर प्राण तक व्यवहार आयोग्य काल कहा गया है जिसे अमूर्त काल कहा जाता है। इस प्रकार से यदि हम काल को और अधिक सूक्ष्मतापूर्वक देखें तो काल को तीन भागों में बाँट सकते है जिसमें– 1. महाकाल जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के चराचर जड़–चेतन का पालनहार एवं संहारकर्ता

है वह काल या महाकाल के रूप में लोक में विख्यात है। 2. व्यवहारिक गण्नायोग्य स्थूलकाल या मूर्तकाल जिसके विषय में उपर्युक्त चर्चा हो चुकी है। 3. सूक्ष्म अमूर्तकाल जिसको त्रुटि से लेकर प्राण तक रखा गया है यह प्रयोग में नहीं होता परन्तु काल की प्रारम्भविक इकाई है। इस काल में उपर्युक्त समस्त विषयों का अध्ययन हम यहाँ करेंगे और यही विषय यहाँ प्रस्तावित है।

1.2 उद्देश्य :–

ज्योतिषशास्त्र को वेद में काल विधान शास्त्र कहा है। वस्तुतः ज्योतिष सूचक शास्त्र के साथ काल विधानव का भी शास्त्र है। यदि दूसरे शब्दों में कहें तो ज्योतिषशास्त्र का विषय निश्चित रूप से काल ही है। जैसा कि वेदांग ज्योतिष में आचार्य लगध मुनि जी ने द्वितीय श्लोक में इस प्रकार से कहा है कि ''कालज्ञानं प्रवक्ष्यामि लगधस्य महात्मना'' अतः ज्योतिषशास्त्र में काल की प्रधानता है। काल शब्द 'कल् संख्याने' सूत्रानुसार कल धातु से निष्पन्न और गणना के अर्थ में व्यवहार में प्रयोग किया जाता है। काल के बिना एक तुच्छतम कार्य का भी सम्पादन करना असम्भव है। इस प्रकार से सर्वोपयोगी एवं सर्वव्यवहार्थ काल का प्रत्यक्षीकरण नहीं किया जा सकता केवल काल को कार्य के साथ मापा जा सकता है चूँकि काल ही ईश्वर है इसलिए ईश्वर का प्रत्यक्षीकरण करना असंभव है केवल ईश्वर का अनुमान के आधार पर विचार किया जा सकता है। ठीक इसी प्रकार से जैसे प्रत्येक जड़–चेतन में ईश्वर निवास करते हैं परंतु उनका प्रत्यक्षीकरण करना असंभव है। यहाँ तक कि दार्शनिक आत्मा को परमात्मा मानते हैं परंतु उसका दर्शन नहीं कर पाते ठीक उसी प्रकार से काल हमेशा था हमेशा रहेगा परंतु प्रत्यक्षीकरण करना असम्भव है। काल का प्रत्यक्षीकरण केवल कार्य के साथ ही किया जा सकता है। काल की अवधारणा क्या है यही इस इकाई का उद्देश्य स्पष्ट करना यहाँ लक्ष्य है।

1.3 मुख्य भाग खण्ड एक–काल विज्ञान की प्रासंगिकता :–

वेद विश्व की सबसे प्राचीन पुस्तक है यह आधुनिक काल का कथन है वस्तुतः प्राचीन भारतीयों के अनुसार तो सृष्टि के आरंभकाल में भगवानव ब्रह्म द्वारा इनकी रचना कर दी गई थी। चूँकि वेदों की भाषा अतिकलिष्ठ थी जिसके कारण उस भाषा को किस प्रकार से सुगम बनाया जाए और किस प्रकार से जनसामान्य तक पहुँचाया जाये इस हेतु को ध्यान में रखते हुए भाषा के साथ किस प्रकार से सामन्जस्य स्थापित किया जाए वैदिक संस्कृत को जाना जाए, इस हेतु महर्षियों द्वारा शब्दके अर्थ को जानने एवं भिन्न–भिन्न कालवश होने वाली गतिविधियों का ज्ञान किस प्रकार से ग्रहण किया जाए इस को ध्यान में रखते हुए षडंगों का निर्माण आवश्यक समझा गया। चूँकि वेद में दृश्यमान, अदृश्यमान समस्त विषयों का ज्ञान समाहित है इस लक्ष्य के साथ चिन्तन मनन करने के उपरान्त शब्दों का निर्माण शब्दों का चयन, शब्दों की उत्पत्ति, शब्दों के अर्थ को ठीक से जानने हेतु महर्षियों द्वारा व्याकरण शास्त्र का अध्ययन आवश्यक समझा गया इसी व्याकरण के अध्ययन करने के उपरान्त वैदिक संस्कृत का ठीक प्रकार अर्थाबोध किया जा सकता है। अतः आज के युग में यही कारण है कि वेद का अध्ययन और अध्यापन करवाने वाले न तो मन्त्रों का अर्थ का बोध कर पाते हैं और न ही अर्थ की उत्पत्ति, मन्त्र की निरुक्तशास्त्र के द्वारा विग्रह की स्थिति को नहीं जान पाते चूँकि एक वैदिक को व्याकरण का ज्ञान होना परमावश्यक है। व्याकरण अध्ययन के बिना वेद का अर्थ, वेद की परिभाषा वेदों की अवधारणा, वेदों का उद्देश्य, वेदों का लक्ष्य, मंत्रों के अर्थ एवं इनका उपयोग किस काल खण्ड में किया जाये इस विषय से अनभिज्ञ रहते हैं। यही कारण था कि इस वैदिक को तभी वैदिक कहा जा सकता है जब वह सम्पूर्ण रूप से व्याकरण का ज्ञान रखता होगा। इसी के आधार पर व्याकरण शास्त्र को वेदों का मुख इस प्रकार से कहा गया है। चूँकि वेदों में समस्त ज्ञान

समाहित है वेदों के कौन से मंत्र का कब पाठ करना चाहिए, मंत्र की सिद्धि हेतु कौन सा काल उचित रहेगा, किस कालखण्ड में औषधियों का चयन करना चाहिए मानव कल्याण हेतु कब यज्ञ करना चाहिए। इस समस्त विषयों का ज्ञान इस प्रकार से प्राप्त हो इस हेतु ज्योतिषशास्त्र/कालशास्त्र का अध्ययन आवश्यक होने के फलस्वरूप ज्योतिषशास्त्र को नेत्र की संज्ञा से उद्बोधित किया गया ताकि उचित एवं अनुचित समय का ज्ञान हो और यज्ञ सम्पादन मानव कल्याण हेतु औषधियों का चयन, तिथि, वार, नक्षत्र, योग, करण का ज्ञान, यहाँ तक कि समस्त दैनिक गतिविधियों का उपयोग किया जाए इस हेतु ज्योतिष का अध्ययन आवश्यक होना चाहिए तभी वेद जैसे गूढ़ रहस्यमय ज्ञान के विषय को सुगमता एवं सरलता पूर्वक जाना जा सकता है। इन्हीं षडंगों में निरूक्त की भी अहम् भूमिका है– वेदार्थ को देश काल परिस्थिति के अनुसार उसकी अर्थ की उत्पत्ति करना, निघण्टु का ज्ञान करना, वेदों की ऋचाओं को ठीक प्रकार से समझना इस विषय हेतु निरुक्तशास्त्र का ज्ञान न होने के कारण आज वेदों के ज्ञान का सही तरह से उपयोग नहीं हो पा रहा है। पुराकाल में श्रुति परम्परा थी जिसका उल्लेख आज भी श्रौत–स्मार्त्त के रूप में किया जाता है। श्रुति से सम्बन्ध था कि सुन–सुन कर वेद ऋचाओं का अध्ययन करवाना, जिसे गुरु शिष्य परम्परा के द्वारा भी जाना गया है। गुरु अपने शिष्य को ज्ञान बाँटता था और शिष्य ग्रहरण था। यही कालान्तर तक अनवरत होता रहा। शनैः–शनैः कागज का निर्माण होना भारतीय संस्कृति का छिन्न–भिन्न होना, गुरुकुलों का नष्ट–भ्रष्ट करना इत्यादि तमाम गतिविधियों के चलते श्रुति परम्परा समाप्ति की ओर बढ़ गयी। जिसका आज हम प्रत्यक्ष उदाहरण देख रहे हैं। चूँकि जिस देश की अपनी भाषा, अपनी संस्कृति जब नष्ट–भ्रष्ट हो जाए तो वहाँ शेष कुछ नहीं रह जाता है। उस राष्ट्र का भविष्य अन्धकार मय होता है। आज हम स्वतन्त्र हैं लेकिन यह स्वतन्त्रता कहीं परतन्त्रता से भी कहीं ज्यादा इस राष्ट्र पर बोझ बनी हुई है। कारण यह है कि आज भी हम अपनी भाषा,

अपनी संस्कृति को संविधानिक दृष्टि से नहीं अपना रहे हैं। कारण है कि जब तक हम संस्कृत जैसी भाषा को अपना नहीं सकेंगे जब तक हमारे पास जो संस्कृत में ज्ञान निहित है उसको जान नहीं पाएँगे। इसलिए सर्वप्रथम संस्कृत का ज्ञान होना आवश्यक है। इसी क्रम में एक वैदिक को जब तक निरुक्तशास्त्र का ज्ञान नहीं होगा, तब तक वह वेद के गूढ़ एवं रहस्यमयी ऋचाओं का पठन–पाठन नहीं कर सकता है। महर्षियों ने यहाँ निरुक्त को वेदों का स्रोत इस संज्ञा से उद्‌बोधित किया है। षडंगों के क्रम में 'कल्प' शास्त्र का ज्ञान आवश्यक था। चूँकि कल्प को वेदों का हाथ कहा गया है। हमारे हाथों में एक विशेष शथ्कत का आवाहन होता है जिस प्रकार से हाथों के बिना कोई भी कुछ करने में असमर्थ है ठीक उसी प्रकार से वेद के रक्षक के रूप में विद्यमान कल्पशास्त्र के अध्ययन के बिना वेद को जानना अर्थात् बोध करना असम्भव है। कल्पशास्त्र हममें श्रौत सूत्र, धर्मसूत्र, गृह्यसूत्र और शुल्वसूत्र के विषय में ज्ञान प्रदान करता है। आज स्थिति इस प्रकार से उत्पन्न हो चुकी है कि श्रुति परम्परा लगभग समाप्ति की ओर अग्रसारित है परन्तु वेद–शास्त्र का ज्ञान रखने वालों के लिए श्रुतियों का ज्ञान परमावश्यक है। आज भी भले विश्वविद्यालयों में शिक्षा का आधुनिक कायाकल्प हो चुका है परन्तु आज की विश्वविद्यालयों में यत्र–तत्र गुरु–शिष्य का अनुपालन किया जा रहा है। धर्मसूत्रों में प्राचीन भारतीय मानव धर्म, सामाजिक धर्म, राष्ट्र धर्म एवं विश्व जनकल्याण धर्मों के विषय में उल्लेख प्राप्त होता है। इसलिए मानव होने पर धर्म सूत्रों का अध्ययन होना आवश्यक है। गृह्य सूत्रों में गृहस्थ धर्म का अनुपालन करना, गृहस्थ से सम्बन्धित समस्त नियमों उपनियमों का ज्ञान प्राप्त करना, चूँकि गृहस्थ धर्म को सभी धर्मों में श्रेष्ठ एवं उत्तम कहा गया है। क्योंकि गृहस्थ धर्म के आधार पर सन्यासी, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी सभी आश्रित हैं। शुल्व सूत्रों गृह निर्माण एवं रख–रखाव, वास्तु विद्या का सम्पूर्ण उल्लेख आद्योपान्त ज्ञान का समावेश रहता है। अतः कल्पशास्त्र के ज्ञानाभाव के कारण एक वैदिक का होना असम्भव है।

चूँकि वेद के हस्त के रूप में कल्पशास्त्र विद्यमानव है। वेदशास्त्र की नासिका शिक्षा के क्षेत्र को कहा गया है। क्योंकि नासिका प्रत्येक जन मानस के व्यवहारिक भौतिक स्वरूप का बाह्य व्यक्तित्व जिस प्रकार से नासिका की संज्ञा से उद्बोधित होता है ठीक उसी प्रकार से वैदिक वाङ्मय, वैदिक कालीन शिक्षा, वैदिक कालीन आचार–विचार और व्यवहार के विषय में ज्ञानाभाव के कारण वेदशास्त्र को प्रतिष्ठित करना असम्भव सा प्रतीत होता है।

छन्दशास्त्र का ज्ञान वैदिक शिक्षा ग्रहण करने वाले का अत्यावश्यक है। चूँकि छन्दों के ज्ञानाभाव में वेद ऋचाओं का पठन–पाठन करना, मन्त्रों का अभ्यास करना असम्भव है। अतः छन्द ज्ञानाभाव में वेद–शास्त्र अपूर्ण है। अतः वेद का ज्ञान तभी सम्भव होगा जब षडंगों का ज्ञान हो, यथा–

शब्दशास्त्रमुखं ज्योतिषं चाक्षुषी श्रोत्रयुक्तं निरूक्तन्च कल्पः करौ।
यातु शिक्षास्य वेदस्य सा नासिका पादपद्द्वयं छन्द आद्यैर्बुधैः।।

कालरूपी इस शास्त्र का प्रमुख उद्देश्य आकाशीय पिण्डों का आधार है। आकाशस्थ पिण्डों की गति–स्थिति एवं पृथ्वी की अक्षीय एवं कक्षीय गति के कारण ही दिन रात्रि का होना सम्भव है यही दिनरात्रि को समय में परिवर्तित करने हेतु वशात् ही इस शास्त्र को कालशास्त्र की संज्ञा से उद्बोधित किया जाता रहा है। भारतीय ज्योतिष में काल को प्रमुख दो भागों में विभक्त किया गया है जिसमें सूक्ष्म काल तथा स्थूल काल है। यहाँ तक कि इस शास्त्र के विषय में और गहराई तक अध्ययन करने पर आप पायेंगे कि वेदांग ज्योतिष प्रणेता आचार्य लगध इस कालरूपी शास्त्र के विषय में कहते हैं कि ''प्रवक्ष्यामि कालज्ञान शास्त्रम्'' इस प्रकार से प्रारंभ करते हैं। सूर्य सिद्धान्त, सिद्धान्त तत्वविवेक, सिद्धान्तशिरोमणि जैसे खगोलशास्त्र सम्बन्धित ग्रंथों में ग्रहों की गति–स्थिति, आकाशीय ग्रहों के द्वारा स्थिति का आकलन गणितीय विधि द्वारा किया जाना तथा समय का ज्ञान किस प्रकार होता है और ग्रहों और पृथ्वी का

परस्पर सम्बन्धवशात् सूर्य और पृथ्वी की गतिवशात् होने पर प्रभाव से प्रभावित होने पर भू–भाग के कौन से क्षेत्र में कब किस काल में कौन सी घटना घटने वाली है ग्रहण कब सम्भव है, सूर्य का राशिचक्र, नाड़ी चक्र, नक्षत्र चन्द्र के साथ गतिवशात् होने वाला आसन्नत्व तथा दूरत्व का कारण क्या है और किस स्थिति में होने वाला है इन समस्त स्थितियों का आकलन को केवल कालशास्त्र के माध्यम से ही बोध किया जा सकता है।

विश्व के पास इस समस्त ब्रह्मण्ड को जानने का कोई तो आधार होना चाहिए। लेकिन ऐसा कोई आधार वेदों के इत्तर है नही तो ऐसे में भले ही कालान्तर में विश्व की बड़ी–बड़ी प्रयोगशालायें वर्तमान में भारतीय अन्तरिक्ष ज्ञान को पीछे छोड़ रही हैं परन्तु इनका आधार भी तो हमारे वेद में वर्णित सूत्र, मन्त्र, ऋचायें ही है। इतिहास में कई ऐसी घटनायें घटित हुई हैं जिसमें वेदों का अधिकतर भाग पाश्चात्य देशों के पास उपलब्ध होता है। इसके पीछे जो भी कारण रहे हों उस विषय का यहाँ पर लेखन करना उचित नहीं होगा। अस्तु वेदों का ज्योतिषशास्त्र के साथ सम्बन्ध स्थापित होना काल की अवधारणा को लेकर ही है इसिलए वेदकाल से ही ज्योतिषशास्त्र के अन्तर्गत काल के शुभाशुभ का विचार किया जाने लगा। इस शास्त्र को कालविज्ञान शास्त्र की संज्ञा से उद्बोधित किया जाने लगा क्योंकि काल के विषय में ज्ञान करवाना इस शास्त्र का प्रमुख उद्देश्य प्रधानरूप से था। वेदांग ज्योतिष के श्लोक संख्या दो में आचार्य लगध जी ने इस शास्त्र को कालज्ञानं कहा है। अतः इन समस्त विषयों का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि वेदकाल में ज्योतिष के प्रति लोगों की कालज्ञान का सूचक शास्त्र होने के फलस्वरूप किस प्रकार की भावना थी। यह जानना परमावश्यक है। चूँकि इस प्रकार से काल की स्थिति के विषय में जानकर ही ज्योतिषशास्त्र की वास्तविक स्थिति को एवं स्वरूप को जाना जा सकता है। अतः कालरूपी शास्त्र के विषय में जानने हेतु वेदकालीन अवधारणा के विषय में जानना होगा।

अभ्यास प्रश्न :–

निम्न प्रश्नों के उत्तर एक या दो शब्दों में दें–

(क). वेदांग ज्योतिष के प्रणेता कौन है।

(ख). वेदांग ज्योतिष का दूसरा मंत्र क्या है।

(ग). श्रुति परम्परा से क्या तात्पर्य है।

(घ). वेदों का नेत्र किसे कहा गया है।

(ङ). गृह्यसूत्रों में वर्णित विषय क्या है।

1.3.1 उपखण्ड एक–काल की प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में अवधारणा–

काल को वैदिक साहित्य में विभिन्न रूपों में वर्णित किया गया है। ऋग्वेद संहिता के (10/42/29) मन्त्र में काल शब्द का प्रयोग केवल ज्योतिषशास्त्र द्वारा उपयोग हेतु शुभाशुभ समय को लेकर नहीं अपितु समस्त क्रियाओं प्रतिक्रियाओं यहाँ तक कि समस्त निर्देशार्थ हेतु उपलब्ध होता है। उदाहरण स्वरूप जैसे–''कृतं यच श्वहनी विचिनोतिकाले'' अथर्ववेद के (29/53/9–10) एवं (19–54–1–5)। इन मन्त्रों में काल के प्रति उच्चतम धारणा प्रकट की गई है। शतपथ ब्राह्मण के मन्त्र संख्या (1/7/3/3) तथा (2/4/2/4) में भी काल का प्रयोग निर्दिष्ट ज्ञान के लिए ही प्रयोग होता है। छान्दोग्योपनिषद के मन्त्र संख्या (2/31/1) में काल शब्द का प्रयोग ''अन्तक'' अर्थ में प्रयुक्त होता है। जिसका काल के ही एक रूप में वर्णन उपलब्ध होता है। वृहदारण्यकोपनिषद के मन्त्र संख्या (1/2/4) में भी काल शब्द का प्रयोग निश्चित काल के लिए प्रयुक्त किया गया है। श्वेताश्वतरोपनिषद् में (1/1–2) में काल शब्द का प्रयोग सृष्टि मूल के विषय में किया गया है। ॐकार तीनों कालों भूत–भविष्य एवं वर्तमान को प्रदर्शित करता हुआ उच्चतम रूप में विद्यमान है। इस प्रकार से वैदिक साहित्य में अनेकानेक रूप में काल के अर्थ को स्पष्ट किया गया है।

प्रथम काल जो परमतत्त्व के रूप में विराजमान है और सृष्टि के मूल में विद्यमान है। दूसरा सामान्य व्यवहार में प्रतिक्षण प्रयुक्त होने वाला काल। इनमें प्रथम काल के स्वरूप का वर्णन संस्कृत वाङ्मय के विभिन्न ग्रन्थों में उपलब्ध होता है और हमारे सुधीजनों ने इस विषय को गम्भीरता पूर्वक रखा हुआ है। इसमें भी काल शब्द के प्रमुख दो स्वरूप हमारे सामने उपलब्ध होते हैं। प्रथम स्वरूप जो इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को समेटे हुए परम अनन्त तत्त्व रूप में विद्यमान है। जिसको जाँचा परखा नहीं जा सकता। क्योंकि इसका सम्बन्ध सृष्टि के मूल तत्त्व से है। दूसरा काल हमारे यहाँ पर सामान्य व्यवहार में प्रयुक्त होने वाला काल है। सृष्टि की संरचना कब हुई और कैसे हुई यह विषय संस्कृत वाङ्मय में प्रमुखता से उपलब्ध होता है। इस विषय में हमें पुराण, स्मृति, उपनिषदों में तो यत्र–तत्र काल के विषय में विस्तृत रूप से विवेचन प्राप्त होता है। परन्तु यदि हम इस अथाह सागर में इस विषय को लेकर गोते न लगाएँ तो भी आपको गीता जैसे उपनिषद में काल के वास्तविक स्वरूप से परिभाषित हो सकते हैं। यथा–

कालः पचति भूतानि सर्वाण्येव सहात्मना।
कान्ते सपक्वस्तेमैव लयं व्रजेत्।।

इस प्रकार से उक्त श्लोक के माध्यम से आप प्रथम काल के विषय में गहराई पूर्वक जान सकते हैं। चूँकि यह सृष्टि की संरचना एवं संहार होना यही इन दोनों के मध्य आत्म तत्त्व का विचार होता है।

दूसरा काल के विषय में भी वैदिक साहित्य में प्रायः सर्वत्र काल से सम्बद्ध पर्याप्त उद्धरण प्राप्त होते हैं। दूसरा काल कार्य की प्रत्यक्षता को लेकर है। यह सामान्य व्यवहार में व्यावहारिकता के रूप में प्रयोग काल का स्वरूप है। यह कलनात्मक काल है। अर्थात् इस काल को आप सामान्य व्यवहार में गणना के रूप में जानते हैं। जिसका सम्बन्ध घण्टा, मिनट, अहोरात्र, मास, वर्षादि से

सम्बन्धित है। वस्तुतः काल के इसी स्वरूप के माध्यम से हम काल के प्रथम स्वरूप के मूलतत्त्व तक पहुँच सकते हैं। चूँकि सृष्टि का आरम्भ और उसका संहार होना यह बार–बार की प्रक्रिया एवं इस सूक्ष्म एवं अतिगूढ तथा गम्भीर रहस्य को जानने हेतु हमें प्रथम काल के रूप में द्वितीय काल की ही अहमियत् है।

द्वितीय स्वरूप कलनात्मक काल का विचार–वर्तमान की स्थिति को ध्यान में रखते हुए हमें यहाँ वर्तमान को आधार मानकर काल के विभिन्न स्वरूपों के विषय में जानने का प्रयास करते रहना चाहिए। इस समय प्रचलित कलियुग का मान 432000 सौर वर्ष माना जाता है। द्वापर युग का परिमाप कलियुग से द्विगुणित होता है। त्रेतायुग का परिमाप सौरवर्षों में त्रिगुणित, और कृतयुग का परिमाप चतुर्गुणित होता है ऐसा उल्लेख कालशास्त्र के प्रधान ग्रन्थ सूर्यसिद्धान्त आदि में उपलब्ध होता है। जिसको दिव्य वर्षों में सूर्य सिद्धान्त आदि ग्रन्थों में दर्शाया गया है। इस सर्वप्रथम दिव्य वर्षों के विषय में एक बार विचार कर लेना परमावश्यक होगा। देवताओं का जो दिन होता है वह असुरों की रात्रि रहती है और जो असुरों का दिन होता है वह देवताओं की रात्रि होती है। यह कारण केवल सूर्य का परिभ्रमण वशात् उत्तरायण और दक्षिणायन का गमनागमन वशात् ही सम्भव है। इसलिए इस विषय में प्रमुख हेतु के रूप में स्थित भू–भ्रमण एवं सूर्य की स्थिति का होना है। यही देवताओं और असुरों के अहोरात्र के 60×6 गुणा 360 दिनों का देवताओं और असुरों का दिव्य वर्ष कहलाता है। सामान्य व्यवहार के रूप में हमारे यहाँ पर पर 360 सावन दिनों एक वर्ष होता है उसी प्रकार से 360 दिनों का दिव्यदिन और असुर दिन माना गया है कहने का तात्पर्य यह हुआ कि देवताओं का उत्तरायण 6 माह में दिवस और दक्षिणायण 6 माह की रात्रि अर्थात् भूमि वासियों का एक वर्ष और देवताओं का एक अहोरात्र

इस क्रम से 360 वर्षो का एक वर्ष जिसको दिव्य या असुर वर्ष कहा जायेगा। यह 360 वर्ष सावन दिनों के अनुसार जानने चाहिए। यथा–

सुरासुराणामन्योन्यमहोरात्रं विपर्ययात्।
षट् षष्टि संङ्गुणं दिव्यं वर्षमासुरमेव च।।

हम यहाँ पर चतुर्युगों के विषय में वर्णन कर रहे थे कि चतुर्युगों का गण्नात्मक द्विगुणित, त्रिगुणित, और चतुर्गुणित का भी यही कारण है। यथा–

तद्द्वादशसहस्राणि चतुर्युगमुदाहृतम्।
सूर्याब्दसंख्यया द्वित्रिसागरैरयुताहतैः।।

इन चारों युगों का योगमान एक महायुग के रूप में होता है अर्थात् 4320,000 सौरवर्षों से 10 गुणा अधिक होती हैं। इस प्रकार से हम यदि और गहराई से विचार करें तो चार युगों का एक महायुग और 71 इकहत्तर महायुगों का एक मन्वन्तर है इस प्रकार से संधि सहित 14 मन्वन्तरों का एक कल्प होता है। और एक कल्प ब्रह्म की रात्रि होती है और एक कल्प ब्रह्म का दिवस होता है। यथा–

युगानां सप्तति सैका मन्वन्तरमिहोच्यते।
कृताब्दसंख्यया तस्यान्ते संधिः प्रोक्तो जलप्लवः।।
ससन्धयस्ते मनवः कल्पे ज्ञेयाश्चतुर्दश।
कृतप्रमाणः कल्पादौ संधि पंचदश स्मृताः।।

यहाँ ध्यातव्य है कि चतुर्यग के प्रत्येक युग में दो संध्याएँ मानी गई है। परन्तु मन्वन्तर के अन्त में केवल एक संधि मानी गई है। जिसका कुलमान सत्ययुग के सौरवर्षों के समान होता है। एक मन्वन्तर 71 महायुगों का अर्थात् 71X43,20,000 = 306720,000 सौरवर्षों का होता है। प्रत्येक मन्वन्तर के अन्त में 17,28000 सौरवर्षों की एक सन्ध्या होती है। तथा कल्प के प्रारंभ में भी इसी प्रकार से एक संधि होती है। इसको और अधिक गहराई पूर्वक इस प्रकार से जानना चाहिए।

1 कल्प= 14 मन्वन्तर÷15 सत्युग के सौरवर्षों के समान संध्याएं

= 14×71 महायुग+15 सत्ययुग

= 994 महायुग+ 15×4 महायुग(क्योंकि सत्ययुग= महायुग का $\frac{4}{10}$)

10

= 994+6 महायुग= 1000 महायुग अथवा इसको इस प्रकार से समझें = 1000 × 12000 = 12000000 दिव्यवर्ष अथवा सौरवर्षों में जानने हेतु 1000×4320000000 सौरवर्ष होंगें।

गणनात्मक काल के इस स्वरूप का वर्णन मनुस्मृति आदि में भी उपलब्ध होता है। परन्तु आर्यभट्ट ने अपने आर्यभटीय ग्रन्थ में युगों के मान कुछ भिन्न दिये हैं। उनके अनुसार 1 कल्प से 14 मनु और एक मनु में 72 चतुर्युग के प्रत्येक सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग समान होते हैं।

6 मनु+27 चतुर्यग+ $\frac{1}{4}$ चतुर्युगी = 6×72+27+$\frac{1}{4}$ चतुर्युग

=432+27+1/4 चतुर्युग = 459$\frac{1}{4}$ ×43,20000 सौर वर्ष

=(460 − $\frac{1}{4}$) × 43,20000 सौरवर्ष = 1986120,000 सौर वर्ष हुए इसमें यदि 5023 वर्ष और जमा कर दिए जाएं तो 1979 वि0 में कल्प के आरंभ से जितने सौर वर्ष बीते हैं वह निकल आयेंगें। ब्रह्मगुप्त तथा भास्कराचार्य ने आर्यभट्ट के इस सिद्धान्त को नहीं स्वीकारा है। इनके मतानुसार कल्प के आरंभ से अब तक की सौर वर्षों की संख्या वही आती है जो सूर्य सिद्धान्त के अनुसार आती है। अद्यावधि तक व्यतीत हो चूके 6 मन्वन्तरों के नाम इस प्रकार से हैं। 1. स्वायुम्भुव 2. स्वारोचिष 3. औत्तमी 4. तामस 5. रैवत और 6. चाक्षुष है वर्तमान सातवें मन्वन्तर का नाम वैवस्वत है। वर्तमान कल्प का अपर नाम वराह कल्प भी है। ऊपर हमने आर्यभट्ट के अनुसार गणनात्मक काल के मतान्तर को अध्ययन किया यहाँ सूर्य सिद्धान्त के मतानुसार कुछ इस प्रकार से कालगणना की गई है। एक हजार महायुग का एक कल्प होता है जो ब्रह्म का एक दिन कहलाता

है। इतने ही समय ब्रह्म की एक रात्रि होती है। जिसमें सृष्टि का अन्त हो जाता है। जैसे–

इत्थंयुगसहस्रेण भूतसंहारकारकः।
कल्पो ब्राह्ममहः प्रोक्तं शर्वरी तस्य तावती।।

यहाँ इसको और अधिक जानने के लिए हमें इस प्रकार से जानना चाहिए। ब्रह्म के दिवस और रात्रि के विषय में भगवान श्री कृष्ण जी ने श्रीमद्भगवद् गीता में कुछ इस प्रकार से बहुत ही सुन्दर और सरल ढंग में दर्शाया गया है। जैसे–

सहस्रयुगपर्यन्तमहर्यद् ब्रह्मणो विदुः।
रात्रि युगसहस्रां तां तेऽहोरात्रविदो जनाः।।
अव्यक्ताद् व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे।
रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्त संज्ञ के ।।
भूतग्रामः स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते।
रात्र्यागमेऽवशः पार्थ प्रभवत्यहरागमे।।

यहाँ भगवान श्री कृष्ण अर्जुन को कहते हैं कि हे अर्जुन अहोरात्र को जानने वाले पुरुष समझते हैं कि (कृत, त्रेता, द्वापर और कलियुग इन चार युगों का एक महायुग होता है और ऐसे) एक हजार महायुगों का समय ब्रह्म का एक दिन होता है और ऐसे ही एक हजार महायुगों की रात्रि होती है। ब्रह्मदेव के दिन का होने पर अव्यक्त से व्यक्त अर्थात् सृष्टि लय की स्थिति से पुनः उसका अवतरण हो या पदार्थ में निर्मित होते हैं और ब्रह्मदेव की रात्रि होने पर पुनः पूर्व की भान्ति अव्यक्त हो जाते हैं अर्थात् लय या लीन हो जाते हैं। हे पार्थ! भूतों का यह क्रम बार–बार उत्पन्न होकर अवश हो जाता है। अर्थात् किसी भूतों की इच्छा हो या न हो रात्रि होते ही यह सृष्टि लीन हो जाती है और पुनः ब्रह्मदेव का दिन होने पर जन्म होता है।

अभ्यास प्रश्न :–

निम्नलिखत प्रश्नों के एक या दो वाक्यों में उत्तर दीजिए –

(क). काल कितने प्रकार का है।

(ख). सूक्ष्मकाल किसे कहते हैं।

(ग). मूर्तकाल किसे कहते हैं।

(घ). अमूर्तकाल क्या होता है।

(ङ). सावन दिन किसे कहते हैं।

1.3.2 उपखाण्ड दो–ब्रह्म आयुर्मान एवं कल्पमान की अवधारणा –

ब्रह्मा की आयु दिव्य वर्षों के अनुसार 100 वर्ष की होती है। इस समय ब्रह्मा की आधी आयु बीत चुकी है। शेष आधी आयु का यह प्रथम कल्प है। इस कल्प की सन्धियों सहित आयु बीत चुकी है। सातवें मन्वन्तर वैवस्वत के 27वें महायुग बीत चुके हैं। तथा 28वें महायुग का सत्ययुग बीत चुका है। इसलिए काल गणना के अनुसार इतनी संख्याओं को एकत्र कर लेना चाहिए। ब्रह्मा की आयु का परिमाण सौ वर्ष माना गया है। यह आयु दिव्य वर्षों में अंकित है। यहाँ मानव की आयु का आकलन भी 100 वर्ष का है, परन्तु यह सौर वर्षों में है। देवताओं की आयु दिव्य वर्षों में होती है। और एक दिव्य वर्ष 360 सौर वर्षों का होता है। एक ब्राह्म वर्ष 360 ब्राह्म दिनों का और एक ब्राह्म दिन दो कल्प अर्थात् 2000 महायुगों का होता है। इस गणना के अनुसार ब्रह्मा के 50 वर्ष बीत चुके हैं और इक्यावनवें वर्ष का पहला दिन कल्प का आरम्भ हो चुका है। जिसके सन्धियों सहित 6 मनु 27 महायुग और अट्ठाईसवें महायुग का सत्ययुग बीत चुका है। इस प्रकार इसको जानना चाहिए। क्योंकि सूर्यसिद्धान्त की रचना मयासुर द्वारा सत्ययुग के अन्त में की गई है। चूँकि पूर्व में इसी अधिकार के द्वितीय श्लोक में कहा गया है कि–

अल्पावशिष्टे तु कृते मयो नाम महासुरः।
रहस्यं परमं पुण्यं जिज्ञासुर्ज्ञानमुत्तमम्।।
वेदाङ्गमग्रयमखिलं ज्योतिषां गतिकारणम्।

आराधयन्विवस्वन्तं तपस्तेपे सुदुष्करम्।।

इस गणना के अनुसार वर्तमान कल्प के आरम्भ से 28वें महायुग के सत्ययुग के अन्त तक का समय इस प्रकार से निकालना चाहिए–

कल्प की आदि सन्धि = सौरवर्षों में गणना

6 मन्वन्तर = 6×30,37,20,00 = 1,7,28,000

6 मन्वन्तर की 6 सन्धियाँ = 1,84,03,200 (6 × 17,28000 = 1,03,68,000)

सातवें मन्वन्तर के 27 महयुग = 27×4320000 = 11,66,40,000

28 वें महायुग का सत्ययुग = 17,28,000

कल्प के आरम्भ से वर्तमान महायुग के सत्ययुग के अन्त तक का समय=197954000

वर्तमान समय में 1979 वि. में कलियुग के 5023 वर्ष बीत चुके हैं। इसलिए कल्प वर्षों में त्रेता के 129600 सौरवर्ष, द्वापर के 864000 सौरवर्ष तथा कलियुग के 5023 वर्ष और जोड़ देने चाहिए। जिसका कुलमान कल्प के आरम्भ से वर्तमान समय तक 1972949023 सौर वर्ष हुए। यज्ञ के संकल्प के मन्त्र में समय की गणना इसी प्रकार से की गई है। जिसका समय सम्बन्धी भाग इस प्रकार है।

प्रवर्तमानस्याद्य ब्रह्मणोऽह्नि द्वितीये परार्धे श्रीश्वेतवाराह कल्पे वैवस्वत मन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे कलियुगे कलिप्रथमचरणे बौद्धावतारे वर्तमानेऽस्मिन् वर्तमानसम्वत्सरे अमुकनाम वत्सरेऽमुकायने अमुकऋतौ अमुकमासे अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकवासरे अमुकनक्षत्रे इत्यादि उल्लेख प्राप्त होता है।

यथा सूर्यसिद्धान्तानुसार ब्रह्मा का आयुप्रमाण–

परमायुशतं तस्य तयाऽहोरात्रसंख्यया
आयुषोऽर्धमितं तस्य शेष कल्पोऽयमादिमः।
कल्पादस्माच्च मनवः षड् व्यतीतावस्ससंधयः
वैवस्वतस्य च मनोः युगानां त्रिघनो गतः।
अष्टाविंशाद्युगादस्माद्यतमेकं कृतं युगम्।
अतः कालं प्रसंख्याय संख्यामेकत्र पिण्डयेत्।।

आर्यभट्टानुसार कल्प के आरम्भ से कलियुग के आरम्भ तक की कालगणना–

= 6 मनु + 27 चतुर्युग + $\frac{1}{4}$ चतुर्युग

= 6 × 72 + 27 + $\frac{1}{4}$ चतुर्युग

= 432 + 27 + $\frac{1}{4}$ चतुर्युग

= $459\frac{1}{4}$ × 432000 सौर वर्ष

= (460 –$\frac{1}{4}$) × 43,20000 सौर वर्ष

= 1987200,000 – 1080000 सौर वर्ष

= 1986120,000 सौर वर्ष इसमें यदि 5023 सौर वर्ष और जमा कर देने पर 1979 वि. में कल्प के आरम्भ में जितने सौर वर्ष बीते हैं वह निकल आयेंगे। ब्रह्मगुप्त और भास्कराचार्य ने आर्यभट्ट के इस मत को स्वीकार नहीं किया है। उनके मत के अनुसार कल्प के आरम्भ से अब तक की सौर वर्षों की संख्या वही आती है जो सूर्य सिद्धान्त में आती है। अतः यहाँ पर काल गणना में सूर्य सिद्धान्त को प्राथमिकता दी गई है।

अभ्यास प्रश्न :–

निम्नलिखत प्रश्नों के उत्तर दीजिए –

(क). एक रेणु का परिमाप कितना होता है।

(ख). त्रुटी सैकेण्ड का कौन सा भाग होता है।

(ग). लव किसे कहते हैं।

(घ). लीक्षक क्या होता है।

(ङ). एक बार श्वास लेने में कितना समय लगता है।

1.3.3 उपखण्ड तीन–नवविध कालमान की अवधारणा–

भारतीय काल विज्ञान के शास्त्रों में ऋषि प्रणीत भिन्न–भिन्न खण्डों में काल विभाजन किया गया है। आधुनिक काल के विशेषज्ञ पाश्चात्य काल को आधार

मानकर गणना किया है। ये काल विज्ञान में इस प्रकार का कहीं पर उल्लेख दृग्गोचर नहीं होता है। इसका कारण है कि वह आज भी काल की गहराई तक जाने वाली इस विधा से अवगत नहीं हैं। अथवा यदि इसके विषय में अवगत होंगे तो इस भय से आक्रान्त एवं काल के पृष्ठभाग में काल को आधुनिक दिखाने का जो उन्होंने प्रयास किया है उसमें उनकी अस्तेयता बुद्धिजीवियों के समक्ष प्रकट हो जाएगी। वस्तुतः हमारे पूर्वज ऋषियों ने क्यों भिन्न–भिन्न कालों के विषय में उल्लेख किया है। इसके पृष्ठभाग में भी मानव काल के हित का कारण है। चूँकि भारतीयों की सदा सर्वदा 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' की संस्कृति ही सर्वत्र प्रमुख कारण बनी है। यहाँ जो भी कोई खगोल एवं भूगोल से सम्बन्धित ऋषियों द्वारा किसी भी कार्य को किया जाता रहा है वह केवल मात्र मानव कल्याण के लिए होता रहा है। आकाशस्थ समस्त दृश्य और अदृश्यमान ज्योतिष पिण्ड प्रकाशित होते हुए इस भूगोलस्थ समस्त जड़–चेतन को रश्मियों के द्वारा निस्वार्थ भाव से ऊर्जा प्रदान कर रहे हैं। यह रश्मियों द्वारा प्रदत्त ऊर्जा का प्रत्येक पिण्ड के स्वरूप के अनुसार भिन्न है, जैसे सूर्य की रश्मियों द्वारा निःसृत ऊर्जा का स्वरूप शीतलता प्रदान करने वाला है। इसी क्रम में प्रत्येक पिण्ड द्वारा प्रदत्त ऊर्जा का स्वरूप भिन्न है। यही भिन्नता पृथक् पृथक् कालों को विभाजित करती है। इसी ऊर्जा को आधार मानकर हमारे ऋषियों द्वारा भिन्न–भिन्न कालों की कल्पना की गई और उस काल मानव समाज पर उपयोगिता को सिद्ध किया। यही सर्वसिद्धि भारतीय कालशास्त्र को प्रत्यक्षता के सिद्धान्त पर सिद्ध करती है। और यही कारण है कि भिन्न–भिन्न पिण्डों द्वारा प्रदत्त रश्मि प्रभाव वशात् मैदानी भूभाग एवं पर्वतीय भूभाग पर भी उन रश्मियों द्वारा प्रदत्त ऊर्जा के द्वारा वहाँ की भौतिकता पर भी प्रभाव पड़ता है। और इन्हीं ज्योतिष पिण्डों के प्रभाव से प्रभावित होकर ही प्रत्येक मानव की संरचना में भिन्नता है। यहाँ तक कि केवल बाह्य संरचना ही नहीं अपितु आन्तरिक संरचना में भी परिवर्तन देखा गया है। यही परिवर्तन मानव की अभिरुचि को प्रभावित करता है। आज

दिन तक कभी विश्व के किसी भी भूखण्डस्थ देशों के विषय में श्रवण में यह कभी नहीं आया कि अमुक देशस्थ ऋषि द्वारा यह खोज की गई। कोई नूतन आविष्कार किया गया। चूँकि इसका स्पष्ट कारण है कि वहाँ का समाज किसी भी क्षेत्र में विकसित नहीं था। भूतकाल में जो कुछ इस भूखण्ड के साथ हुआ क्या–क्या घटनाएँ नहीं घटित हुई आप सभी अवगत हैं। आज पश्चिमी देशों की स्थिति यह है कि प्रत्येक क्षेत्र में वह अपना अधिकार स्वीकार करते हैं। जबकि समस्त शोध काल विज्ञान से सम्बन्धित हो या खगोल या भूगोल से सम्बन्धित हो यह ऋषियों द्वारा इसी भूखण्ड की देन है। धातव्य यहाँ यह है कि यदि पाश्चात्य देशस्थ निवासी जन इतने भविष्य काल के प्रति जागरुक होते तो आज दिन तक केवल एक काल के विषय में चर्चा नहीं करते, तो वह हमारे यहाँ पर अनेकों प्रकार के काल की कल्पना भिन्न–भिन्न व्रत, त्यौहार, उत्सव को मानव कल्याण के साथ सम्बन्धित करते हुए नवविधकाल की कल्पना की गई होती, जो कि सार्थक सिद्ध होती है। यही सार्थकता भारत देश की संस्कृति को सर्वश्रेष्ठता प्रदान करती है। नौ प्रकार के कालों के विषय में हमारे ऋषियों द्वारा जो कल्पना की है वह निम्न प्रकार से है–1.ब्राह्ममान, 2. दिव्यमान, 3.पित्र्यमान, 4. प्राजापत्यमान, 5. गौरवमान, 6. सौरमान, 7. सावनमान, 8.चान्द्रमान, 9. नाक्षत्रमान।

1 ब्राह्ममान– ब्राह्ममान में ब्रह्मा की आयु के विषय में उल्लेख किया गया है। चूँकि सम्पूर्ण भूमण्डलस्थ उनकी आयु के आधार पर स्थित है। ब्रह्मा की आयु उनके मान से 100 वर्ष परिमाण की होती है। एक ब्राह्म अहोरात्र में दो कल्प होते हैं। इस प्रकार से 60 कल्प = 30 अहोरात्र और एक मास 720 कल्प या बारह ब्राह्म मास = 01 ब्राह्म वर्ष होता है। अतः ब्रह्मा की आयु 72000 कल्प की होती है। उक्त ब्रह्मा की आयु आधी बीत चुकी है। अर्थात् ब्रह्मा की 50 वर्ष बीत कर 51वें वर्ष का प्रथम दिवस कल्प चल रहा है। इस 51वें वर्ष के कल्प दिन भी 6 मन्वन्तर और 7वें मन्वन्तर के भी 27 महायुग व्यतीत हो चुके हैं। और

वर्तमान 28वें महायुग के भी सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग के 3044 सौर वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। यहाँ वर्तमान सम्वत्सर 2078 चल रहा है। इस सम्पूर्ण काल को एकत्र करने पर अर्थात् पिण्ड बनाने पर एक 19722949122 सौर वर्ष बनते है। यह कल्प से वर्तमान सम्वत् 2078 पर्यन्त का काल सौर वर्षों में वर्णित किया गया है।

2 दिव्यमान– देव–दानवों का छः–छः मास का एक दिन और रात होते हैं अर्थात् एक अहोरात्र एक मानव वर्ष तुल्य होता है। देवताओं का उत्तरायण होने पर दिवस और दानवों की रात्रि और दक्षिणायण देवताओं की रात्रि और दानवों का दिन होता है। इस प्रकार से 360 अहोरात्र का देवदानवों का एक वर्ष होता है और यही गणना मानव सौर वर्षों में 360 सौर वर्ष होंगें।

3 पित्र्यमान– 30 तिथियों का एक चान्द्रमास होता है। वह पितरों का एक अहोरात्र(दिन और रात) होता है। अर्थात् दो अमावस्यों के अन्तवर्ती काल को पितरों का अहोरात्र कहते हैं। अमास्यान्त और पूर्णिमान्त क्रम से पितरों के दिन और रात्रि का मध्यकाल होता है। अर्थात् कृष्णपक्ष में आधी अष्टमी व्यतीत होने पर पितरों का दिनारम्भ होता है और शुक्ल पक्ष में आधी अष्टमी के समय में दिन का अन्त और रात्रि का आरम्भकाल होता है।

4 प्राजापत्यमान– चार युगों का एक महायुग होता है और 71 महायुगों का एक मन्वन्तर होता है। और उस मन्वन्तर के अन्त में सत्ययुग सौर वर्ष 1728000 प्रमाण जलमग्न भूखण्ड उसकी सन्धि होती है।

5 गौरवमान– गौरवमान का अपरनाम वार्हस्पत्य मान है। गुरू की मध्यम राशि के भोगकाल के द्वारा गौरवमान या गौरववर्ष होते हैं। मेषादि द्वादश राशियों में भोग करने पर जो–जो वर्ष भोगकर पूर्ण होते हैं वह शुद्ध सम्वत्सर कहा जाता है और उनके अश्विन्यादि नाम होते हैं। गुरू की मध्यम गति भोग से गौरव सम्वत्सर होता है। संहिता में इन सम्वत्सरों का प्रभवादि 60 सम्वत्सरों का उल्लेख उल्लिखित है और शकादि सम्वत्सर से इनकी प्रवृति सिद्ध होती है।

इन्हीं 60 सम्वत्सरों के नामानुसार पंचांगों में फल लिखा जाता है जैसे कि वर्तमान सम्वत्सर 2078 राक्षस के नाम से चल रहा है तो चारों ओर हाहाकार, भय, मृत्यु, महामारी, भुखमरी, चोरबाजारी, लूट–खसीट का महौल और कोरोना जैसी महामारी से समस्त प्रजाजन आक्रान्त हैं। इन सम्वत्सरों की गणना सूर्यादि सिद्धान्त ग्रंथों में विजयादि के नाम से प्रारंभ होती है क्योंकि सृष्टिकाल में विजयादि के नाम से ही सम्वत्सरों की प्रवृति सिद्ध होती है। गुरु के द्वादश राशि भोगकाल से इन्हीं सम्वत्सरों की अश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष आदि नाम से जाना जाता है। गौरवादि कालमान के साथ सौर, चान्द्र, नाक्षत्र और सावन मान के साथ वार्हस्पत्य मान से नियन्त्रित होता है अन्यकालमान सर्वदा व्यवहार में प्रयोग नहीं होते।

6 सौरमान– वर्ष, अयन, ऋतु, युगमानादि के विषय में सौरमान से विचार किया जाता है सूर्य के एक अंश भोगकाल को सौरमान कहते है या एक अहोरात्र होता है। सौरमान से ही अहोरात्रमान, अयन, गोल, ऋतु संक्रान्ति पुण्यकाल आदि का निर्णय किया जाता है। सूर्य के एक अंश भोगकाल के समय को सौर दिन कहते हैं। इसी प्रकार से 30 अंश या एक राशि भोगकाल को एक सौरमास कहते है।

7 सावनमान– एक सूर्योदय से द्वितीय सूर्योदय के काल को सावनमान या सावनदिन कहा जाता है इसी प्रकार से 30 सूर्योदय अथवा 30 सावन दिनों का एक सावन मास होता है। 360 सावन दिनों का एक वर्ष होता है। रोग, सूतक जन्मादि और मरणादि, चन्द्रायण आदि व्रतों का निर्णय सावन मान से किया जाता है। सावन मान का कलनात्मक काल गणना में कल्प या युग से अहर्गण साधन करने में होता है। सावन दिनों से यज्ञकालादि का निर्णय किया जाता है जो कि व्यवहार में हैं।

8 चान्द्रमान– एक चान्द्रोदय से द्वितीय चन्द्रोदय तक के काल को चान्द्र दिवस अथवा एक चान्द्र अहोरात्र होता है। अमावस्या से अमावस्या पर्यन्त एक चन्द्रमास कहलाता है। मास, तिथि आदि का विचार चान्द्रमान से करना चाहिए। इसी

प्रकार से तिथि, करण, विवाह, क्षौरकर्म, सर्वकर्म यथा जातकर्म नामकारण, चुडाकरण, उपनयमादि, व्रत, उपवास, मात्रा आदि समस्त क्रियाओं का व्यवहार चान्द्रमान से होता है।

9 नाक्षत्रमान– एक नक्षत्र के प्रारम्भकाल से अग्रिम नक्षत्र प्रारम्भकाल तक का समय अथवा नक्षत्रारम्भ से नक्षत्रान्त तक के काल को नाक्षत्रमान कहते हैं। नाक्षत्रमान में घटि, पल, विपलादि के विषय में व्यवहार करना चाहिए और अहोरात्र आदि का निर्णय भी नाक्षत्रमान के द्वारा ही किया जाता है। यह उपयुक्त नवविध कालमानों में केवल अन्तिम चार सौर, सावन, चान्द्र और नाक्षत्रमान का ही व्यवहार में प्रयोग होता है।

अभ्यास प्रश्न :–

अधोलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए–

(क). राशि किसे कहते हैं।

(ख). एक राशि का मान कितना होता है।

(ग). नक्षत्र किसे कहते हैं।

(घ). एक अंश में कितनी कलायें होती हैं।

(ङ). भगण में कितने अंश होते हैं।

1.4 सारांश–

वेदशास्त्र का षड् अङ्गों में प्रधान विषय के रूप में गणना होने के फलस्वरूप ज्यौतिष को काल के रूप में व्यवस्थित किया गया इसका प्रमुख कारण रहा होगा कि ज्योतिष शास्त्र के माध्यम से हम सूर्यादि नवग्रहों द्वारा गति–स्थिति वशात् होने वाला परिवर्तन दिन–रात होना घटि, पल, विपल, राशि, अंश, कला, विकला का ज्ञान तथा अहोरात्र व्यवस्था होरा, नवांश, द्रेष्काणादि के ज्ञान का विस्तृत वर्णन ज्योतिषशास्त्र में उपलब्ध होता है। उपयुर्क्त समस्त विधियाँ पृथक–पृथक काल की सूचक हैं। वस्तुतः यदि गहराई से आकलन करें तो काल

की अवधारणा का समस्त विश्व में जो आकलन हुआ है वह भारतीय प्राचीन वैदिक का ही कहीं न कहीं आधार ग्रहण किया गया है इस प्रकार के उद्धरण किसी अन्य देश की संस्कृति में दृग्गोचर नहीं होती है यहाँ तक कि त्रुटिकाल से लेकर प्राण तक के काल की अवधारणा केवल भारतीय ज्यौतिषशास्त्र में दृग्गोचर होती है। गणनात्मक आधुनिक काल की अवधारणा का आरम्भ भी भारतीय काल से ग्रहण किया गया है ऐसे प्रमाण उपलब्ध होते हैं। जैसे सामान्य व्यवहार में एक घण्टा के लिए जहाँ आवर का उपयोग किया जाता है, वहीं संस्कृत में इसे होरा कहा जाता है चूँकि विश्व की सबसे प्राचीन भाषा एवं देवभाषा पृथ्वी पर जब आई होगी तो उस काल में न तो पश्चिमी सभ्यता विकसित हुई थी और न ही पश्चिम देशों के गणनात्मक काल की अवधारणा थी। वस्तुतः भारतीय ज्योतिष केवल व्यवहारिक काल के विषय में ही चर्चा नहीं करता अपितु अमूर्त काल के विषय में भी चर्चा करता है। चूँकि अमूर्तकाल व्यवहार में प्रयोग नहीं किया जाता अपितु काल का वह रूप है जिसमें शरीर का अन्त हो जाता है। और दूसरी ओर स्थूलकाल की भी चर्चा हुई है जिसे हम गणनात्मक काल घण्टा, मिनट, सेकेण्ड, दिन–रात, सप्ताह, मास पक्षादि वर्ष के विषय में विचार किया गया है। इस इकाई में आपने काल की अवधारणा के विषय में विस्तार से अध्ययन किया होगा।

1.5 परिभाषिक शब्दावली–

चतुर्धा दिवस = यहाँ चार दिवस, सौर दिन, सावन, नक्षत्र और चान्द्र।

पितरों का दिवस = एक अमावस्या के अन्त से दूसरी अमावस्या तक का समय ।

नवविध कालमान = नौ प्रकार के काल, ब्रह्म, दिव्य, पित्र, प्राजापत्य, गौरव, सौर, सावन, चान्द्र, नाक्षत्र।

त्रुटिकाल = कमल पत्र भेदन में सूचि द्वारा उपयोग काल त्रुटि होता है।

अनुभूतिप्रदं = विश्वास प्रद या विश्वसनीय।

शास्त्रमुत्तमम् = सभी शास्त्रों में श्रेष्ठ शास्त्र।

निगमान्निर्गतं = वेद से जिसका निर्गमन हुआ हो।

शिखा = चोटी।

वेदांगशात्राणाम् = वेद के अंगों में श्रेष्ठ शास्त्र।

विषभक्षणम् = विष को ग्रहण करने वाले।

श्रौतस्मार्त = श्रुति और स्मृतिशास्त्र।

पुरा = प्राचील काल में।

रूपस्कन्धत्रयम् = तीन प्रमुख स्कन्धों वाला शास्त्र सिद्धान्त, संहिता और होरा।

स्वर्णगर्भाज = स्वर्ण रूपी गोलाकार पिण्ड से उत्पन्न।

ज्ञात्वा = जानकर।

पृथिव्यां = पृथ्वी के ऊपर।

वेदास्तावद्यज्ञकर्मप्रवृता = यज्ञ कर्म की आवश्यकता हेतु वेदों में काल रूपि शास्त्र का उपयोग।

कालाश्रयेण = काल का आश्रय लेने के लिए।

कालबोधो = काल का बोधक सूचक शास्त्र।

क्रतुक्रियार्थं = यज्ञ क्रिया के हेत्वर्थ।

श्रुतयः = मनुस्मृति, याज्ञवल्कय स्मृति आदि।

क्रतवः = ऋतुएँ।

निरूक्ता = निरूक्तशास्त्र।

शब्दशास्त्रं मुखं = शब्दशास्त्र अर्थात् व्याकरण शास्त्र वेद का मुख।

चक्षुषी = ज्योतिष शास्त्र वेद का नेत्र रूप में।

श्रोत्रमुक्तं = कान कहा गया है वेद शास्त्र का।

कल्पः करौ = वेदशास्त्र के हाथ कल्पशास्त्र है।

अर्थार्जने = अर्थ की प्राप्ति हेतु।

आपदर्णवे पोतः = आपत्तिकाल में समुद्र में नौका।

नास्त्यपरः = नहीं है इसके समान कोई दूसरा शास्त्र।

1.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर :–

1.3 (क). आचार्य लगध, (ख). अथ कालज्ञानं प्रवक्ष्यामि, (ग). सुन–सुन कर सीखना, (घ). ज्योतिष, (ङ). गृहस्थ धर्म से सम्बन्धित।

1.3.1 उपखण्ड–1 (क). दो प्रकार का–स्थूल एवं सूक्ष्म, (ख). त्रुटि नामक काल, (ग). घटी, पल, विपल, प्रतिविपल, त्रुटि, (घ). त्रुटि से नीचे का जो काल है उसे अमूर्त काल कहा गया है अथवा अंतिम जो काल है उसे भी अमूर्त काल कहा गया है, (ङ). एक सूर्य उदय से दूसरे सूर्य उदय तक।

1.3.2 (क). 60 त्रुटि, (ख). 3,24000 वाँ भाग, (ग). साठ रेणु का एक लव, (घ). 60 लीक्षक का एक प्राण, (ङ). 04 सेकेण्ड।

1.3.3 (क). भचक्र के बारहवें भाग को राशि कहते हैं जिसका परिमाप 30^0 होता है, (ख). 30^0 अंश, (ग). न क्षरति इति नक्षत्रम्, जिसका कभी नाश नहीं होता हो, (घ). 60 कला, (ङ). 360^0 अंश।

1.7 उपयोगी पुस्तकें :–

(1) सूर्यसिद्धान्त – कपिलेश्वरशास्त्री कृत चौखम्बा प्रकाशन वाराणसी।
(2) आर्यभट्टीयम् – आर्यभट्ट, चौखम्बा संस्कृत सीरीज वाराणसी, नई दिल्ली।
(3) ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त – ब्रह्मगुप्त, भारतीय विद्या भवन, नई दिल्ली।
(4) सिद्धान्ततत्त्व विवेक– कमलाकर भट्ट रचित संस्कृत हिन्दी व्याख्या, चौखम्बा, वाराणसी।
(5) भारतीय कुण्डली विज्ञान – मीठालाल ओझा कृत भारतीय विद्याभवन, चौखम्बा, वाराणसी।
(6) भारतीय ज्योतिष – शंकर बालकृष्ण दीक्षित, भारतीय विद्या भवन, चौखम्बा, वाराणसी।

(7) भारतीय ज्योतिष – नेमिचन्दशास्त्री, ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली।

(8) जातकालंकार – गणेश दैवज्ञ, सत्यम् पब्लिकेशन, नई दिल्ली।

(9) भारतीय ज्योतिष विज्ञान – चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी।

1.8 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री :–

1. भारतीय ज्योतिष विज्ञान – चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी।
2. जातकालंकार – गणेश दैवज्ञ, सत्यम् पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
3. भारतीय ज्योतिष – नेमिचन्दशास्त्री, ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली।
4. भारतीय ज्योतिष – शंकर बालकृष्ण दीक्षित, भारतीय विद्या भवन, चौखम्बा, वाराणसी।
5. भारतीय कुण्डली विज्ञान – मीठालाल ओझा कृत भारतीय विद्याभवन, चौखम्बा, वाराणसी।
6. सिद्धान्ततत्त्व विवेक – कमलाकर भट्ट रचित संस्कृत हिन्दी व्याख्या, चौखम्बा, वाराणसी।
7. ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त – ब्रह्मगुप्त, भारतीय विद्या भवन, नई दिल्ली।
8. आर्यभट्टीयम् – आर्यभट्ट, चौखम्बा संस्कृत सीरीज वाराणसी, नई दिल्ली।
9. सूर्यसिद्धान्त – कपिलेश्वरशास्त्री कृत चौखम्बा प्रकाशन वाराणसी।

1.9 निबन्धात्मक प्रश्न :–

1. काल की अवधारणा के ऊपर विस्तृत निबन्ध लिखें।
2. काल कितने प्रकार का है ? उसका व्यवहार में क्या उपयोग है, स्पष्ट करें।
3. नवविधकालमान का उल्लेख करते हुए विवेचन करें।

4. काल को विभाजित करते हुए प्रत्येक काल का मानव व्यवहार में उपयोग सिद्ध करें।

5. काल की अवधारणा में भारतीय ज्योतिष की प्रासंगिकता को स्पष्ट करें।

इकाई–2कालपुरुष का रोगों से सम्बन्ध

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 मुख्य भाग खण्ड एक

2.3.1 कालपुरुष में राशि स्थापना एवं नक्षत्र विचार

2.3.2 नक्षत्रों का सामान्य स्वरूप

2.3.3 कालपुरुष में नक्षत्रस्थापना एवं रोगों की संभावना।

2.4 सारांश

2.5 पारिभाषिक शब्दावली

2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.7 सन्दर्भ ग्रंथों की सूची

2.8 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना :–

ज्योतिष शास्त्र काल विज्ञान शास्त्र है यहाँ तक कि आचार्य लगध मुनि अपने वेदांग ज्योतिष के प्रथम अध्याय के द्वितीय श्लोक में लिखते हैं कि अथ ''कालज्ञानं प्रवक्ष्यामि'' मैं काल ज्ञान के विषय में कहता हूँ। काल का सीधा सम्बन्ध सूर्य एवं ज्योतिष शास्त्र से है। सूर्य ज्योतिष जगत का प्रमुख ग्रह है तथा ग्रहों में राजा है। नर और नारायण की संज्ञा का आधार सूर्य है अर्थात् सूर्य स्वयं नारायण हैं। इसलिए काल के द्योतक सूर्य के बिना इस भूलोक में कुछ भी सम्भव नहीं है। विशेष करके काल शास्त्र का तो आधार है। यहाँ तक कि स्वयं सूर्य भगवान सूर्य सिद्धान्त में कहते हैं कि–न मे तेजः सह न कश्चिद् आख्यातुं नास्ति में क्षणः। अर्थात् सूर्य के साथ समन्वय स्थापित नहीं किया जा सकता इसलिए सूर्य ही स्वयं काल पुरुष है और सूर्यांश पुरुष के रूप में हम सभी यह दृग्गोचर सृष्टि हैं। यह संरचना का क्रम सृष्ट्यारम्भकाल से ही चला आ रहा है और काल रूपी मानव अपने शुभाशुभ कर्मप्रभाववश संचित, प्रारब्ध और क्रियमाण कर्मों के वशीभूत स्वस्थता अथवा अस्वस्थता प्राप्त करता है। इसी को सामान्य व्यवहार में लोगों ने कालचक्र कहा है। यही कालचक्र काल क्रमानुसार मानव के संचित, प्रारब्ध कर्मों के द्वारा एक विशेष कालखण्ड में मानव को उत्पन्न करता है और उस कालखण्ड में आकाशस्थ ग्रहों की गतिस्थिति, नक्षत्र वशात् उसके कर्मों के अनुसार मानव शुभ नक्षत्रों में अथवा अशुभ संज्ञक नक्षत्रों में जन्म प्राप्त करता है उसी के अनुसार उसके शरीर में स्वस्थता अथवा अस्वस्थता का योग निर्माण होता है। यह कौन–कौन से नक्षत्र हैं, राशियाँ हैं जिनके फलस्वरूप काल पुरुष रूपी मानव के शरीर में रोगों की संभावना बनती है यही इस इकाई का प्रस्तावित विषय है।

2.2 उद्देश्य :–

प्रस्तावित विषय काल पुरुष के शरीर में रोगों से सम्बन्ध किस प्रकार से सम्भव है। क्यों मानव के शरीर में रोग आते हैं क्या कारण है। रोगों का काल पुरुष के साथ क्या और कैसे सम्बन्ध होता है। यह संचित कर्म, प्रारब्ध और क्रियमाण कर्म क्या हैं कैसे घटित होते हैं। ऐसे कौन–कौन से नक्षत्र हैं जो इस प्रकार से काल पुरुष को सुखमय एवं दुखमय स्थिति में परिवर्तित करने में सक्षम है और किस प्रकार से इन आगुन्तक रोगों से छुटकारा पाया

जा सकता है इस प्रकार के सभी विषयों का जानना एवं पहिचानना ही इस इकाई का प्रमुख उद्देश्य है।

2.3 मुख्य भाग खण्ड एक :– वस्तुतः काल पुरुष ही काल का द्योतक है। काल पुरुष ही संवाहक है काल का, चूँकि काल शब्द की उत्पत्ति ''कल संख्याने'' धातु से हुई है। ''कालाधीनं जगत् सर्वम्'' की उक्ति सत्य सिद्ध होती है कि यह संसार काल के अधीन है। काल के विषय में आचार्य लगध मुनि जी ने कहा है कि ''अथ कालज्ञानं प्रवक्ष्यामि'' अर्थात् मैं काल ज्ञान के विषय में कहता हूँ। इसलिए काल का वाचक पुरुष है तो शुभाशुभ कर्म का कर्ता भी कालपुरुष ही होगा इसलिए मानव देह को ही शुभाशुभ कर्म भोगने होंगे। यदि हम शुभ कार्य करेंगे, चिन्तन एवं मनन् द्वेषरहित होगा तो निश्चित ही शुभ फलों की प्राप्ति होगी व्यक्ति का तन एवं मन भी स्वस्थ होगा। कालपुरुष के शरीर का सम्बन्ध दृश्य, अदृश्यरूप से त्रिविध कर्मों से है जिसमें संचित, प्रारब्ध और क्रियमाण। यह सम्पूर्ण संसार ही इन तीनों कर्मों के अधीन है। अतः रोगों की अवधारणा से पूर्व हमें संचित, प्रारब्ध और क्रियमाण कर्मों पर ध्यान देना चाहिए।

1. क्रियमाण कर्म :– मानव देह तीन प्रकार से कर्मों को करता हुआ अपना जीवन यापन करता है जिसमें कायिक, वाचिक और मानसिक प्रमुख हैं। शरीर के द्वारा कर्मों को अन्तिम रूप प्रदान करना कायिक कर्म कहलाता है। चूँकि शरीर ही कर्म का कर्ता है और कर्मफल का भोक्ता है। इसलिए मानव को यह निश्चित करना चाहिए कि वह जीवन में शुभ कर्म करें ताकि इस देह को कष्टों का सामना न करना पड़े चूँकि रोगों का आगमन शरीर में पापकर्म के ही प्रभाववश होता है। इसलिए शारीरिक एवं मानसिक चिन्तन भी सकारात्मक होना चाहिए क्योंकि ईश्वर की आराधना ध्यानादि समस्त प्रक्रिया मानसिक चिन्तन में होती है इसलिए मन के अनुसार किये गये कर्म कहीं ज्यादा प्रभावी होते हैं। वह चाहे शुभकर्म हों अथवा अशुभ कर्म हों दोनों के

ही प्रभाववश शरीर में निरोगता एवं अरोगता आती है। तृतीय क्रिययाण कर्म है वाचिक अर्थात् वाणी के द्वारा किसी भी के लिए नकारात्मकता का भाव रखना भी प्रभावकारी होता है। यह क्रियमाण कर्म व्यक्ति प्रतिक्षण किसी न किसी रूप में करता रहता है यही क्रियमाण कर्म हमारे संचित कर्मों में परिवर्तित हो जाते हैं।

2. संचित कर्म :– जन्म–जन्मान्तरों में किये गये शुभाशुभ कर्म ही संचित कर्म में परिवर्तित हो जाते हैं और यह आत्मा उन जन्म–जन्मान्तर में किये शुभाशुभ कर्मों को विभिन्न योनियों में भोगता हुआ अन्त में मानव देह मेंआता है और यही देह इन समस्त सुख–दुःखों से निवृत्ति प्रदान करती हुई मोक्ष की ओर ले जाती है परन्तु इसी शरीर में जन्म–जन्मान्तरों में कृत अशुभ कर्मों का प्रतिफल भी आप को रोग रूप में भोगना होगा जैसा कि कहा है–जन्म–जन्मान्तर कृतं शुभाशुभफलं व्याधिरूपेण जायते।

अतः क्रियमाण कर्मों का ही एक भाग जो अवशेष करने के उपरान्त शेष रह जाता है वही संचित कर्म हमें इस देह में शुभ और अशुभ कर्म प्रभाववश फल प्रदान करता है।

3. प्रारब्ध कर्म :– क्रियमाण कर्मों के द्वारा कृत शुभाशुभ संचित में परिवर्तित हो जाते हैं और यहीं संचित कर्मों का एक भाग भोगने से अवशेष रह जाता है वह प्रारब्ध कर्म बन जाता है और यह प्रारब्ध भी क्रियमाण कर्मों के द्वारा ही निर्मित कर्म है परन्तु यह कई जन्मों के उपरान्त इसका निर्माण होता हुआ इस जन्म में प्रारब्ध वशात् शुभाशुभ कर्मों के अनुसार सुख–दुःख, लाभ–हानि, रोग एवं अरोग्यता के विषय में विचार किया जाता है। उपर्युक्त त्रिविध कर्मों के विषय में क्रियमाण कर्मों का सम्बन्ध गोचर ग्रहों से है जिस प्रकार से व्यक्ति प्रतिक्षण चिन्तन, मनन एवं कर्मों को करता है ठीक उसी प्रकार से इस संसार में प्रतिक्षण प्रत्येक अणु से लेकर परमाणु तक क्रियशील है और क्रियाशीलता वश ही इस संसार में परिवर्तन होता है। अतः क्रियमाण कर्मों के

विषय में हमें गोचर पद्धति का प्रयोग करना चाहिए। संचितकर्मों का विचार ज्योतिष शास्त्र में विभिन्न प्रकार के योगों के माध्यम से जानने का प्रयास करना चाहिए और प्रारब्ध कर्मों का विश्लेषण विंशोत्तरी, अष्टोतरी, योगिनी आदि दशाओं के माध्यम से करना चाहिए। जिसमें सुख–दुःख, लाभ–हानि, आय–व्यय, रुजता, आरोग्यता इत्यादि समस्त विषयों को जानने के हेतु से दशा, अन्तर्दशा, प्रत्यन्तरदशा का प्रयोग करना चाहिए यदि ग्रहों की स्थिति जन्मकुण्डली में ठीक होगी तो निश्चित रूप से आपको शुभफलों की प्रति उस ग्रह की दशा आने पर होगी और ग्रहों में प्रतिकूलता होगी तो उस ग्रह की दशा, अन्तर्दशा में रोगादि समस्त कष्टों का सामना करना होगा।

2.3.1 कालपुरुष में राशि स्थापना एवं नक्षत्र विचार :– वस्तुतः काल पुरुष ही समस्त शुभाशुभ कर्मों के प्रतिफल का भोक्ता है अतः यह विचार किस प्रकार से होगा इसके लिए आपको ग्रहों के स्वरूप, नक्षत्रों के स्वरूप तथा राशियों के स्वरूप का ठीक प्रकार से ज्ञान होना चाहिए। चूँकि ''यत् पिण्डे तत् ब्रह्माण्डे'' वैदिक ऋषियों का उद्घोष वाक्य है वह सर्तथा सार्थक सिद्ध होता है क्योंकि जो इस संसार में दृश्य और अदृश्यमान स्वरूप अणु से लेकर परमाणु तक विद्यमान है वह सभी इसी शरीर के मध्य में स्थित है। इस विषय में भगवान श्री कृष्ण जी द्वारा भी इस शरीर और ब्रह्माण्ड की स्थिति के विषय में श्रीमद्भगवद्गीता में वर्णित उपदेश है अतः सर्वप्रथम इस शरीर में राशि में नक्षत्रों का विचार करना चाहिए। शरीर के जिस अंग का प्रतिनिधित्व जो राशि करती है उस राशि में आपकी जन्मकुण्डली में शुभ ग्रह बैठा है अथवा अशुभ ग्रह स्थित है उसी ग्रह की गति स्थिति के आधार पर हमें जातक के भूत–भविष्य एवं वर्तमान की स्थिति के विषय में आकलन करना चाहिए। इसी को आधार मानकर सर्वप्रथम शारीरिक संरचना में राशि स्थापना करना आवश्यक होगा। काल पुरुष के शरीर में मेषादि बारह राशियों का स्थापना क्रम निम्न प्रकार से है यथा–

मेष राशि मस्तक पर, वृष, मुख, मिथुन–हाथ भुजा, कर्क–हृदय, सिंह–पेट, कन्या–कमर, तुला–नाभि से उपस्थ पर्यन्त, वृश्चिक–उपस्थ (गुप्तांग), धनु– जांघ, मकर जानु, कुम्भ पिंडली, मीन–पैर इस प्रकार से काल पुरुष के शरीर में राशियों की स्थापना करके यह विचार करना चाहिए कि जिस राशि में शुभ या अशुभ जो ग्रह स्थित है उसी के अनुसार उस अंग के विषय में रोग्य एवं अरोग्यता का विचार करना चाहिए। यथा–

शीर्षास्यबाहुहृदयं जठरं कटिबस्तिमेहनोरुयुगम्।
जानू जंघे चरणौ कालस्यांगानि राशयोऽजाद्याः।।

इसी प्रकार से राशियों का विचार करने के उपरान्त और अधिक सूक्ष्मता पूर्वक विचार करने हेतु हमें नक्षत्रों की स्थापना के विषय में विचार करना चाहिए। यथा–

कालांगानि वरांगमाननमुरो हृत्क्रोडवासोभृतो,
वस्तिर्व्यåजनमूरुजानुयुगले जंघे ततोऽङ्घ्रिद्वयम्।
मेषाश्विप्रथमानवर्क्षचरणाश्चक्रस्थिता राशयो,
राशिक्षेत्रगृहर्क्षभानि भवनं चैकार्थसम्प्रत्ययाः।।

काल पुरुष के शरीर में 27 नक्षत्रों के विषय में इस प्रकार से स्थापना करनी चाहिए– आश्विनी, भरणी और कृत्तिका का प्रथम चरण के संयोग से मेषराशि का निर्माण होता है इसलिए मस्तक और सिर के सम्पूर्ण भाग पर अश्वनी, भरणी और कृतिका के एक भाग का अधिकार क्षेत्र है। इसी प्रकार से कृत्तिका के अन्तिम तीन चरण और रोहिणी और मृगशीर्ष के दो चरण अर्थात् नक्षत्र का आधा भाग कुल आठ भाग मुख पर रहते हैं। मिथुन राशि हाथ और भुजाओं पर रहती है इसलिए मृगशीर्ष के अन्तिम दो चरण, आद्रा नक्षत्र और पुनर्वसु के तीन चरणों का योग हाथों और भुजाओं में रहता है। कर्क राशि हृदय का नेतृत्व करती है और हृदय पर पुनर्वसु का एक चरण, पुष्य नक्षत्र और आश्लेषा नक्षत्र का प्रतिनिधित्व आपके हृदय पर रहता है।

मघा, पूर्वाफाल्गुनी और उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र का एक चरण से सिंह राशि का निर्माण होता है। सम्पूर्ण पेट पर इन नक्षत्रों का प्रतिनिधित्व है। कमर में कन्या राशि का नेतृत्व है इसलिए कमर में उत्तराफाल्गुनी के अन्तिम तीन चरण, हस्त नक्षत्र और चित्रा नक्षत्र के पहले दो चरणों का योगदान कमर में हैं। तुला राशि का नेतृत्व नाभि से उपस्थ पर्यन्त है इसमें चित्रा नक्षत्र के अन्तिम दो चरण, स्वाति नक्षत्र और विशाखा नक्षत्र के प्रथम तीन चरणों का प्रतिनिधित्व नाभि ओर उपस्थ के मध्य में है। गुप्तांगों में वृश्चिक राशि का नेतृत्व है और वहाँ पर विशाखा का अन्तिम चरण और अनुराधा और ज्येष्ठा नक्षत्र का अधिकार क्षेत्र है। धनुराशि का नेतृत्व जंघा पर है और वहां पर नक्षत्रों में मूल, पूर्वाषाढ़ा और उत्तराषढ़ा को प्रथम चरण जंघा पर स्थित है। मकर राशि जानु का नेतृकरती है नक्षत्रों में उत्तराषाढ़ा के तीन अन्तिम चरण और श्रवण और धनिष्ठा के प्रथम दो चरणों का नेतृत्व जानुभाग पर रहता है। कुम्भ राशि शरीर के पीडलीभाग में स्थित है वहां पर धनिष्ठा के अन्तिम दो चरण शतभिषा और पूर्वाभाद्रपदा के प्रथम तीन चरणों का कार्यक्षेत्र पीडलीयों का भाग है। मीन राशि का स्थान पैरों में है और पैरों पर पूर्वाभाद्रपदा का अन्तिम चरण और उत्तराभाद्रपदा तथा रेवती के संयोग से मीन राशि का निर्माण होता है और यह सभी नक्षत्र पैरों का नेतृत्व करते हैं। उपर्युक्त प्रकार से हमें सर्वप्रथम राशि और नक्षत्रों की स्थापना करनी चाहिए उसके उपरान्त हमें रोगों के विषय में जानकारी प्राप्त करनी चाहिए। जिस राशि और नक्षत्र में पाप ग्रहों की स्थिति होगी शरीर के उस भाग में रोगों की सम्भावना बनेगी इसलिए जब तक राशि और नक्षत्रों के विषय में गहनता पूर्वक अध्ययन नहीं कर लेते तब तक रोगों के विषय में जान पाना असम्भव होगा।

अभ्यास प्रश्न

निम्न प्रश्नों के उत्तर एक या दो वाक्यों में दें :–

(क). कालपुरुष किसे कहा है।

(ख). कालपुरुष के पैर में कौन सी राशि होती है।

(ग). कालपुरुष के जानु में कौन सा नक्षत्र होता है।

(घ). नाभि एवं उपस्थ के मध्य कौन–कौन नक्षत्र होते हैं।

(ङ) हृदय का नेतृत्व कौन सी राशि करती है।

2.3.2 नक्षत्रों का सामान्य स्वरूप :–

''नक्षरति'' इति नक्षत्रम्'' अर्थात् जिनका क्षरण न हो नाश नहीं हो उसे नक्षत्र कहते हैं। खगोल में सबसे बड़े तारे परन्तु अत्यधिक दूरी पर स्थित होने के कारण यह अतिलघु दिखाई पड़ते हैं। भचक्र में तारों का ऐसा समूह परिधि रूप में शनि की कक्षा के उपरान्त चारों ओर 360^0 अंशात्मक घेरे में व्याप्त हैं।

भारतीय ज्योतिषशास्त्र को काल का नियामक शास्त्र कहा है षड्ंगों में प्रधान विषय तथा नेत्र की संज्ञा से उद्बोधित है। खगोल में असंख्य पिण्ड है और सूर्यादि नवग्रहों से भी कहीं अत्यधिक विशाल एवं तेजवान है परन्तु वह सभी हमारी भूभाग को प्रभावित नहीं कर पाते, कारण है कि उनकी कक्षायें हैं अपने मार्ग हैं। ठीक इसी प्रकार से पृथ्वी के सापेक्ष सूर्यादि नव ग्रह तथा 27 अश्वनी आदि नक्षत्रों का योगदान रहता है इन्हीं अकाशस्थ पिण्डों के प्रभाव से हम प्रभावित होते हैं।

फलित ज्योतिष के ग्रंथों में ''अभिजित्'' नामक 28वां नक्षत्र भी दो नक्षत्रों के योग से जाना जाता है जिसमें उत्तराषाढ़ा के उपरान्त और श्रवण से पूर्व आता है। यह नक्षत्र मध्यमान से 19 घटी का होता है। जबकि अन्य सभी नक्षत्र मध्यमान से 60 घटी के होते हैं। यह उत्तराषाढ़ा नक्षत्र की अन्तिम 15 घटी और श्रवण की प्रारम्भिक 04 घटी के संयोग से कुल 19 घटी का रहता है यह नक्षत्र प्रायः जब कभी किसी कार्य विशेष को लेकर मुहूर्त की आवश्यकता रहती है तो इसका सामान्य व्यवहार में प्रयोग किया जाता है।

परन्तु जिस प्रकार से अन्य नक्षत्रों का सामान्य व्यवहार में प्रयोग रहता है वैसा इसका उपयोग नहीं रहता है और रोग विचार में भी कोई अहम् भूमिका नहीं है। रोग विचार में 27 नक्षत्रों के आधार पर ही विचार किया जाता है। यहां पर हम किस नक्षत्र में रोग होने पर कितने समय तक रहता है इसके विषय में विस्तृत रूप से अध्ययन करेंगे।

1. अश्वनी :– यह नक्षत्र अर्धांग (पैरालाईसिस) वात, अनिद्रा, मतिभ्रम जैसे रोगों से सम्बन्ध रखता है। इसमें रोग होने प रवह 1,9, या 25 दिन तक रहता है इसलिए अश्वनी नक्षत्र में यदि उक्त रोग होते हैं तो इसी प्रकार से विचार करना चाहिए।
2. भरणी :– यह नक्षत्र, अत्यधिक ज्वर का होना, वेदना और शिथिलता का द्योतक है। कभी–कभी मूर्छित भी व्यक्ति हो जाता है। इसमें रोग होने पर 11,29 या 30 दिनों तक चलता है। यम का नक्षत्र होने पर कभी–कभार मृत्युदायक भी बन जाता है।
3. कृत्तिका :–इस नक्षत्र में निम्न रोगों का सामना करना पड़ता है इसमें दाह, उदरशूल, वेदना, अनिद्रा एवं नेत्ररोग से सम्बन्धित हैं। इसमें रोग होने पर वह 9,10 या लगभग 21 दिनों तक जातक पीड़ित रहता है।
4. रोहिणी :–इस नक्षत्र में सिर दर्द, उन्माद, प्रलाप तथा कुक्षि में शूल होना इन रोगों से सम्बन्ध रखता है। इसमें उत्पन्न रोग 3,7,9 या 10 दिन तक चलता है।
5. मृगशीर्ष :–यह नक्षत्र चर्मरोग एवं एलर्जी से सम्बन्धित है इसमें उक्त रोग होने पर 3,5,9 दिनों तक रहता है।
6. आर्द्रा :–इस नक्षत्र में जातक को वायुविकार, स्नायुविकार एवं कफरोगों की उत्पत्ति होती है। इसमें उत्पन्न रोग लगभग 10 दिन अथवा एक मास तक रहता है।

7. पुनर्वसु :–इस नक्षत्र में कमरदर्द, सिरदर्द एवं गुर्दे के रोगों की संभावना रहती है इसमें उत्पन्न रोग लगभग 07 दिन अथवा 09 दिन तक रहता है।
8. पुष्य :–यह नक्षत्र ज्वर (बुखार) दर्द एवं आकस्मिक पीड़ादायक है। इसमें उत्पन्न रोग एक सप्ताह तक रहता है।
9. आश्लेषा :–यह नक्षत्र शरीर के सभी अंगों को पीड़ा देने वाला मृत्युतुल्यकष्ट, विषरोग एवं सर्पदंश आदि से सम्बन्धित है। इसमें उत्पन्न रोग 9,20 या 30 दिन तक रहता है। यह नक्षत्र मृत्युदायक होता है।
10. मघा :– मघा नक्षत्र वायुविकार से सम्बन्ध रखता है। इसमें उत्पन्न रोग 20–30 या लगभग 45 दिनों तक चलता है और इसमें अत्पन्न रोग ठीक होने के पश्चात् पुनः दोबारा होने की भी सम्भावना रहती है।
11. पूर्वाफाल्गुनी :–यह नक्षत्र, शरीर में कर्णरोग, शिरोरोग ज्वर तथा अत्यधिक वेदना से सम्बन्ध रखता है इसमें उत्पन्न रोग 8 दिन या 15 दिन अथवा लगभग 30 दिनों तक चलता है। पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र में उत्पन्न रोग कभी–कभी वर्ष भर रह जाता है।
12. उत्तराफाल्गुनी :–यह नक्षत्र शरीर में ज्वर का प्रकोप पैदा करना, हड्डियों का टूटना तथा समस्त अंगों में पीड़ा–प्रदायक है। इसमें उत्पन्न रोग लगभग 7,15 या 27 दिनों तक रहता है।
13. हस्त :–यह नक्षत्र उदर विकास, मन्दाग्नि एवं उदर में पीड़ा अथवा शूल से सम्बन्धित है इसमें उत्पन्न रोग 7,8,9 या 15 दिनों तक रहता है। कभी–कभी इस रोग की पुनरावृत्ति भी होने की सम्पूर्ण सम्भावना रहती है।

14. चित्रा :–यह नक्षत्र अत्यन्त कष्टदायक तथा अचानक घटित होने वाली घटनाओं से सम्बन्धित है। इसमें उत्पन्न रोग 8,11 या लगभग 15 दिनों तक रहता है। कभी–कभी इस नक्षत्र में उत्पन्न रोग के द्वारा मृत्यु भी हो जाती है।
15. स्वाति :–यह नक्षत्र उन जटिल रोगों से सम्बन्धित है जिनका निदान या उपचार नहीं हो पता। इसमें पैदा हुआ रोग एक मास, दो मास, पांच मास अथवा दस मास तक रहता है।
16. विशाखा :–यह नक्षत्र वातव्याधि अर्थात् वायुजन्य रोगों से पीड़ा प्रदायक, मेदोरोग, कुक्षिशूल तथा सर्वांगपीड़ा से सम्बन्धित है। इसमें उत्पन्न रोग 8,10,20 या 30 दिन तक रहता है।
17. अनुराधा :–यह नक्षत्र अत्यधिक तीव्रज्वर, सिर दर्द एवं संक्रमित रोगों से सम्बन्ध रखता है। इसमें उत्पन्न रोग 6,10 या 28 दिनों तक रहता है।
18. ज्येष्ठा :– यह नक्षत्र शरीर में कम्पकम्पी, विकलता एवं वक्षरोगों से सम्बन्धित जैसे छाती जाम होना, पीलिया या अन्य कफ जन्य रोग दमा, खांसी इत्यादि का प्रदायक है। इसमें उत्पन्न रोग 15,29 या 30 दिन तक चलता है। और कभी–कभी इसमें उत्पन्न रोग के कारण मृत्यु भी हो जाती है।
19. मूल :–यह नक्षत्र पेट से सम्बन्धित रोगों से है इसमें प्रायः उदररोग, मुखरोग एवं नेत्ररोगों से सम्बन्ध रखता है। इसमें उत्पन्न रोग 9,15 या 20 दिनों तक चलता है। और कभी–कभी यह रोग को दोबारा भी होने की सम्भावना को बढ़ा देती है।
20. पूर्वाषाढ़ा :–यह नक्षत्र प्रमेह, मधुमेह, धातुक्षय, दुर्बलता एवं गुप्तरोगों से सम्बन्धित है। इसमें उत्पन्न रोग 15,20 दिन या लगभग कभी–कभार 2,3 या 6 मास तक रहता है और कभी–कभी रोग की पुनरावृत्ति भी होती है।

21. उत्तराषाढ़ा :–यह नक्षत्र उदरशूल, कटिशूल या जोड़ों के दर्द से सम्बन्धित है। इसमें उत्पन्न रोग लगभग 20 दिन अथवा 45 दिनों तक रहता है।
22. श्रवण :– यह नक्षत्र अतिसार, हैजा, मूत्रकृच्छ एवं संग्रहणी रोगों से सम्बन्ध रखता है। इसमें उत्पन्न रोग लगभग 13 दिन या एक सप्ताह अथवा 15 दिनों तक चलता है और कभी–कभी वह रोग लम्बे समय तक रहता है।
23. धनिष्ठा :–यह नक्षत्र अमाशय, बस्ती (नाभि और मूत्रस्थान के मध्य का भाग) मधुमेह एवं गुर्दे के रोगों से सम्बन्ध रखता है। इसमें उत्पन्न रोग लगभग 13 दिन या एक सप्ताह अथवा पक्ष पर्यन्त रहता है और कभी–कभी यह दीर्घकाल तक भी रहता है।
24. शतभिषा :–इस नक्षत्र में प्रायः हृदयरोग, ज्वरपीड़ा, सन्निपात एवं बेचैनी पैदा होती है। इसमें उत्पन्न रोग होने पर तीन दिन, दस दिन या 21 दिन अथवा लगभग 40 दिनों तक रहता है।
25. पूर्वाभाद्रपदा :–यह नक्षत्र उल्टी या वमन, घबड़ाहट, शूल होना, रक्तचाप एवं मानसिक रोगों से सम्बन्धित है। इसमें उत्पन्न रोग दो दिन या दस दिन अथवा लगभग तीन मास तक रहता है।
26. उत्तराभाद्रपदा :–यह दान्तों में रोग पैदा करना, वातरोग एवं गैस तथा ज्वरपीड़ा से सम्बन्धित है। इसमें उत्पन्न रोग सात दिन, दस दिन अथवा पैंतालिस दिनों तक रहता है।
27. रेवती :–यह नक्षत्र मानसिक रोग, अभिचारजन्य रोग एवं वातरोगों को उत्पन्न करने वाला है। इस नक्षत्र में उत्पन्न होने पर रोग दस दिन या अट्ठाईस दिन अथवा लगभग अड़तालिस दिनों तक रहता है।

अभ्यास प्रश्न :–

निम्न प्रश्नों के उत्तर हाँ या नहीं में दीजिए :–

(क). भचक्र का कुल मान 3200 अंशात्मक है।

(ख). नक्षत्रों की संख्या 27 है।

(ग). अभिजित् का कुल मान 18 घटी है।

(घ). अभिजित् नक्षत्र उत्तराषाढ़ा एवं श्रवण के योग से निर्मित होता है।

(ङ). 19 घटी का मानयुक्त नक्षत्र अभिजित् है।

2.3.3 कालपुरुष में नक्षत्र स्थापना एवं रोगों की सम्भावना :–

रोगों के सम्बन्ध में यदि सूक्ष्मता पूर्वक विचार करें तो जिस प्रकार से मृत्यु का पूरक जीवन है और जीवन का मृत्यु है ठीक इसी प्रकार से मानव अपने शुभाशुभ कर्मप्रभाववश शुभाशुभफल का नियन्ता है और इन शुभाशुभ कर्मों का प्रभाव मानव के देह में प्रत्यक्षीकरण होता है। इसलिए कर्मों का भोग करने के हेतु से मानव का रोगों के साथ सम्बन्ध कर्मप्रभाव वश होता है। इन रोगों का आगमन शरीर में कब होगा यह ज्ञान आपको ज्योतिषशास्त्र के माध्यम से ज्ञात होगा। चूँकि ज्योतिषशास्त्र सूचकशास्त्र है। इसलिए शरीर में रोगों का आगमन जन्मजात होगा अथवा जन्म के बाद होगा और किन–किन ग्रह, नक्षत्र एवं राशियों के आधारभूत रोगोत्पत्ति होने की सम्भावना है इस विषय में सूक्ष्मतापूर्वक ग्रह, नक्षत्र एवं राशियों के विषय में जानना और कालपुरुष के कौन से भाग में किन–किन नक्षत्रवश, राशिवश और ग्रहवश यह स्थिति होने वाली है इस विषय में आकलन करना चाहिए। चूँकि रोगों का शरीर में आगमन कब होगा किन–किन स्थितियों एवं परिस्थितियों में होगा इसके लिए ज्योतिष शास्त्र त्रिविध कर्मों के माध्यम से विचार किया जाता है। मानव देह को होने वाले रोगों में जन्मजात रोग तथा वंशानुक्रम से प्राप्त रोग संचितकर्मों का परिणाम है। जब महामारी, संक्रमण या अन्य दुर्घटनावश होने वाले रोग या शरीर में अंग, भंग होना इन समस्त विषयों का विचार प्रारब्ध कर्मों के द्वारा करना चाहिए। अनुचित आहार एवं नियमित दिनचर्या द्वारा पैदा होने

वाले रोगों के विषय में क्रियमाण कर्मों के माध्यम से जानना चाहिए। ज्योतिष शास्त्र इन त्रिविध कर्मों के विषय में जानने के लिए तीन प्रकार की विधियों का प्रयोग करता है। जिसमें संचित कर्मों के द्वारा प्राप्त होने वाले फल के विषय में आधान कुण्डली एवं जन्म कुण्डली के योगों द्वारा किया जाता है। प्रारब्ध कर्मवशात् होने वाले। फल का विचार दशाओं के माध्यम से और क्रियमाण कर्मों का विचार गोचर पद्धति के द्वारा किया जाता है। यही कारण है कि अंधापन, कानापन, गूंगापन, बहिरापन, लंगड़ा एवं लूलापनादि जन्मजात रोगों के विषय में होराशास्त्र के आचार्यों ने गर्भाधान एवं जन्मकुण्डली के योगों को महत्व प्रदान किया चूँकि उपर्युक्त सभी रोग प्रायशः जन्मजात ही होते हैं। इन जन्मजात रोगों का विचार दशा, अन्तर्दशा एवं गोचर से विचार नहीं किया जाता क्योंकि यह रोग जन्मजात कहलाते हैं। और जन्मजात रोगों का विचार प्रारब्ध कर्म के माध्यम से किया जाता है। प्रारब्ध संचित कर्म का ही एक प्रतिभाग है। अतः होराशास्त्र के आचार्यों द्वारा प्रारब्धवश प्राप्त होने वाले रोगों के विषय में जानने के लिए योग एवं दशा का आश्रम लिया है। अतः जन्मजात रोगों में विशेष करके लगड़ापन, लूलापन, कानापन, बहिरापन, अन्धापन महामारी, संक्रमण, दुर्घटना, अंग–भंग होना इत्यादि समस्त रोगों का विचार प्रारब्धकर्मवश किया जाता है और प्रारब्ध कर्म का विचार योग और दशा अन्तर्दशा के माध्यम से किया जाता है।

योग एवं दशा का कारण है कि प्रारब्धकर्मवशात् जो कि जातक जन्म–जन्मान्तरों से करता आ रहा है और वही योग के रूप में परिणत हो गया अतः योग जातक की कुण्डली में जन्मजात निहित है परन्तु वह कब घटित होगा इस विषय में विचार करने हेतु हमारे आचार्यों द्वारा दशा अन्तरदशा का आश्रय लिया गया। चूँकि यह रोग शरीर में त्रिदोषों के कारण पनपते हैं इसलिए वात–पित–कफ से उत्पन्न रोगों से शारीरिक एवं मानसिक विकलता के विषय में ज्ञान करने हेतु दशा–अन्तर्दशा का आश्रय लेना चाहिए

तथा अंसतुलित खान–पान, अनियमित दिनचर्या, महामारी एवं संक्रमणजन्य रोगों को क्रियमाणकर्मों का फल माना जाता है।

चूँकि यह क्रियमाण कर्म जातक जन्म–जन्मान्तर में किये गये कर्मों के द्वारा संचित एवं प्रारब्ध कर्मों के प्रभाववश ही करता है। अर्थात् कहने का तात्पर्य यह है कि जातक के इस जन्म में शुभाशुभ कर्म करने के पृष्ठभाग में संचित और प्रारब्ध कर्मों का अहम योगदान रहता है। इसलिए संचित और प्रारब्ध कर्मों के प्रभाव का यत्नपूर्वक त्याग करते हुए क्रियमाण कर्मों के माध्यम से शुभकर्मों का संचय करना चाहिए ताकि पुनः जन्म होने की स्थिति में राजयोगादि का, सुख–समृद्धि पद–प्रतिष्ठादि का उपभोग करने का अवसर प्राप्त हो सके।

महामारी, संक्रमण, अनियमित दिनचर्चा, अनुचित आहार–विहार से उत्पन्न रोगों के विषय में विचार करते समय दशा के साथ–साथ गोचर का भी विचार करना चाहिए। चूँकि संक्रमणजन्य रोग एवं महामारी आदि रोगों में समष्टिगत ग्रह–गोचरीय स्थिति के द्वारा आकलन करना चाहिए परन्तु ऐसा दृष्टि में आया है कि महामारी या संक्रमित रोगों के प्रभाव से जब कोई क्षेत्र विशेष प्रभावित होता है तो इन रोगों के माध्यम से कुछ लोग ही प्रभावित होते हैं अथवा काल के ग्रास में समा जाते हैं। ऐसा क्यों होता है यह चिन्तन का विषय है। ऐसे में समष्टिगत फल के साथ–साथ हमें व्यष्टिगत फल के विषय में प्रत्येक प्रभावित जातक के विषय में दशा और अन्तर्दशा तथा गोचर के साथ सम्बन्ध स्थापित करते हुए विचार करना चाहिए।

ग्रह एवं रोगों की सम्भावना :– यह सुनिश्चित है कि सूर्यादि ग्रह ब्रह्माण्ड एवं व्यक्ति के जीवन को, उनकी क्षमताओं को, तथा उनके स्वास्थ्य तथा आहार–विहार एवं मानसिक विचारों को प्रतिक्षण अपनी जीवन्त रश्मियों के माध्यम से प्रभावित करते रहते हैं। उदाहरण स्वरूप ऋतुओं एवं जलवायु परिवर्तन, वायु मण्डलीय दबाव, भूकम्प एवं ज्वार–भाटा, की क्रिया–प्रक्रिया में

साक्षात् सूर्य तथा चन्द्रमा की कलाओं का सीधा सम्बन्ध रहता है। जल की प्रत्येक बूँद इस प्रकार से प्रभावित होती है जैसे ज्वारभाटा की लहरें चन्द्रमा के आकर्षण और विकर्षण वश ऊपर से नीचे अनवरत उठती और बैठती रहती है।

आधुनिक ज्ञान–विज्ञान के शोध से यह ज्ञात हुआ है कि रक्त प्राणधारियों के शरीर में केवल श्वास–प्रश्वास के माध्यम से शरीर में प्रवाही पदार्थ ही नहीं अपितु रक्त में पाये जाने वाले लवण और जो लवण समुद्र के जल में घुले हैं उन लवणों में समानता पाई गई है और लगभग एक अनुपात में उनकी स्थिति है। मानव देह में लगभग 80 प्रतिशत सोडियम, 04 प्रतिशत कैल्शियम एवं 04 प्रतिशत पोटेशियम पाया जाता है। मैग्नीशियम की प्रतिशतक मात्रा निश्चित रूप से भिन्न पाई जाती है। इन सभी लवणों की समुद्र एवं मानवरक्त में समानता होने के फलस्वरूप यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगा कि जैसे चन्द्र प्रभावश समुद्र के भीतर ज्वार–भाटे की स्थिति उत्पन्न होती है ठीक इसी प्रकार से चन्द्रमा रक्त प्रणाली में व्यवधान डालकर हमारे तन एवं मन में उतार–चढ़ाव पैदा करती है। जिन्हें मनोविज्ञान की भाषा में अवेग, संवेग या उद्वेग कहा जाता है। चूँकि चन्द्रमा हमारा समीपस्थ ग्रह है अन्यग्रह अत्यन्त दूर स्थित हैं। इसलिए अन्य ग्रहों की अपेक्षा चन्द्रमा का प्रभाव आकर्षण और विकर्षणवश अत्यधिक प्राप्त होता है। चूँकि सूर्यबिम्ब चन्द्रबिम्ब की अपेक्षा बड़ा है परन्तु हमारे से अत्यधिक दूर होने के फलस्वरूप सूर्यरश्मियां उतना खिंचाव नहीं डाल पाती जितना चन्द्रबिम्ब। चन्द्रमा की ऊपर उठने की शक्ति का आभास इस प्रकार लगाया जा सकता है कि जब चन्द्रमा पूर्णिमा में खमध्यासन्न होता है तो उस समय खिंचाव के कारण पदार्थ का भार 18,42, 440वां भाग घट जाता है। यहाँ तक कि खमध्यासन्न पूर्णमासीकालिक चन्द्रमा के प्रभाववश समुद्र में चल रहे एक 4000 वजनी जहाज का भार एक पौण्ड कम हो जाता है। तथापि वर्तमान में इस प्रकार

वजन मापने की कोई इकाई विकसित नहीं हो सकी है अर्थात् किसी यन्त्र का निर्माण नहीं उपलब्ध है परन्तु इस प्रकार की स्थिति में ज्वार–भाटा, वायुमण्डल में संक्षोभ एवं भूकम्प जैसी घटनाओं को घटित होने के लिए पर्याप्त है। चन्द्रमा का यही आकर्षण एवं विकर्षण हमारे शरीर में रक्त संचार प्रणाली में व्यवधान पैदा करता है। और हम सामान्य की अपेक्षा असामान्य व्यवहार करने लग पड़ते हैं।

रोगोत्पत्ति के कारण :– वस्तुतः रोग शरीर में अपना घर किस प्रकार से बनाते हैं इसके लिए स्वयं मानव ही इसका निर्माणकर्ता हैं क्योंकि मानव यह जानते हुए भी कि यह अनैतिक कार्य है इसके करने के उपरान्त कहीं न कहीं शुभाशुभ कर्म का भोग आपको प्राप्त मानव शरीर को ही भोगना पड़ेगा चूँकि चौरासी लाख योनियों में केवल मानव योनि है जिसके बल पर हम अन्य योनियों में जन्म लेने से अपने आप को बचा सकते हैं क्योंकि केवल मानव योनि के द्वारा ही हम अपने पूर्वजन्मकृत कर्मों एवं वर्तमान क्रियमाण कर्मों के द्वारा अपने शरीर की रक्षा एवं सुरक्षा कर सकने में समर्थ हो सकते हैं। चूँकि प्रश्नमार्ग एवं प्रो. शुकदेव रचित रोग एवं ज्योतिष जैसे ग्रंथों में भी इस प्रकार के उद्धरण प्राप्त होते हैं कि–''जन्मान्तरकृतं कर्म व्याधिरूपेण जायते''।

यहाँ तक कि आयुर्वेद का सिद्धान्त भी यही कहता है कि रोगोत्पत्ति का कारण कर्मप्रकोप एवं दोष प्रकोप है। और कारण इसके विषय में मिथ्या–आहार–विहार है जिसके कारण रोग होते हैं। यहाँ ध्यातव्य है कि जब ऋतु के अनुसार आहार–विहार किया जाय और ऋतु परिवर्तन एवं मौसम के अनुसार यदि आहार–विहार करें और मौसम भी रोगोत्पत्ति का नहीं हो और ऐसे में यदि रोग हो जाये तो ऐसे रोग के उत्पन्न होने का कारण कर्मजन्य मानना चाहिए। यथा–''कर्मजाः व्याधयः केचिद् दोषजाः सन्ति चापरे'' ऐसा प्रमाणिक उद्धरण आचार्य चरक् द्वारा अध्याय 40 में चरक संहिता में उद्धरित

है। आयुर्वेद कर्मजन्य कर्म के द्वारा जो रोग है वह संचित कर्म है। जिसके एक भाग को प्रारब्ध करते हैं और मिथ्या आहार–विहार क्रियमाण कर्म है। इस कर्म प्रकोप एवं दोष प्रकोप दोनों के मूल में अनुचित कर्म ही मूल कारण है। इसलिए ज्योतिष के अठारह आचार्यों द्वारा यह कहा गया कि वह अनुचित कर्म इस जन्म के हों अथवा जन्मान्तरों में किये गये हों रोगोत्पत्ति का प्रमुख कारण माना है।

पूर्वजन्म में कृत् अशुभ कर्म द्वारा किये गये पापकर्म का फल जातक को इस जन्म में कुष्ठरोग, मूत्रकृच्छ, संग्रहणी, क्षय, प्रमेह, अश्मरी, कास, अतिसार एवं भगन्दर आदि रोगों को देने वाला होता है ऐसा उल्लेख शतातपीय तन्त्र में उपलब्ध होता है। इसीक्रम में पूर्वजन्म में कृत् पापकर्म द्वारा प्राप्त रोगों के विषय में त्रिशठाचार्य के अनुसार उदररोग, गुप्तरोग, उन्माद, अपस्मार, पंगुता, कर्णरोग, वाक्दोष प्रमेह, भगन्दर, प्रदर, वातव्याधि, कुष्ठ, क्षय, अन्धता, मुखरोग, नासा रोग, अर्श, विपची व्रण, बल्मीक, रक्तार्बुद, विसर्प, देहकम्प, पक्षाघात, गलगण्ड, नपुंसकता एवं दन्तरोगों का होना निश्चित है। आयुर्वेद रोगोत्पत्ति के विषय में कारण आहार एवं विहार की अनियमितता को रोगों का कारण मानता है। यदि मानव आहार–विहार के ऊपर समुचित नियन्त्रण रखें तो स्वस्थ एवं दीर्घजीवी हो सकता है। परन्तु ज्योतिष शास्त्र की इस विषय में भिन्न मान्यता है। क्योंकि कई बार ऐसा भी देखा गया है कि कई लोग अनियमित जीवन व्यतीत करते हुए खान–पान के समस्त नियमों का उल्लंघन करते हुए भी स्वस्थ एवं दीर्घायु होते हुए देखे गये हैं तथा इसी क्रम में ऐसा भी देखा गया है कि कुछ लोग सदाचार का पालन करते हुए और आहार–विहार का निरन्तर नियमानुसार उपयोग करते हुए भी रोगों के शिकार हो जाते हैं। इस विषय में सुप्रसिद्ध उद्धरण के रूप में आचार्य शंकर एवं स्वामी विवेकानन्द का नाम साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। जिनकी मधुमेह के कारण असमायिक मृत्यु हो गई।

रोगोत्पत्ति के विषय में एक बात और ध्यान देने योग्य है कि यदि आहार–विहार को ही रोग का कारण मान लिया जाए तो अनुवांशिक रोग, संक्रमित रोग, महामारी जन्य रोग एवं आकस्मिक रोगों की उत्पत्ति के विषय में ठीक ज्ञान नहीं किया जा सकता चूँकि अनुंवाशिक रोग, महामारीजन्य रोग तो आहार–विहार से नहीं उत्पन्न होते इसलिए कहीं न कहीं ज्योतिषशास्त्र का मत संचित, प्रारब्ध एवं क्रियमाण कर्मों का सटीक उद्धरण है तथापि इस विषय में आयुर्वेद रोगोत्पत्ति का कारण क्या–क्या हो सकता है इस विषय को अन्तिम निष्कर्ष में यह मानता है कि ''कभी पूर्वार्जित कर्मों के प्रभाव से और कभी–कभी दोषों के प्रकोप से और कभी–कभी इन दोनों के मिले–जुले असर के कारण शारीरिक एवं मानसिक रोग होते हैं।

ज्योतिषशास्त्र के अनुसार प्रत्येक छोटा या बड़ा रोग या अनुवांशिक या महामारी जन्यरोग जन्म–जन्मान्तरकृत पापकर्मों के प्रभाव से पैदा होते हैं यहाँ तक की आहार–विहार में भी कारण ग्रहगोचरीय स्थिति ही कार्य करती है। ज्योतिषशास्त्र के जन्मकाल, प्रश्नकाल एवं गोचर में ग्रहों की प्रतिकूलता के विषय में जानकारी प्राप्त की जा सकती है। इसी सिद्धान्त के आधार पर अमुक जातक को अमुक रोग होना है इस विषय में वर्षों पूर्व यह जानकारी प्रदान की जा सकती है कि व्यक्ति को कब–कब और कौन सा रोग होगा और रोग का परिणाम क्या होगा। यथा–

कर्मप्रकोपेण कदाचिदेके दोषप्रकोपेण भवन्ति चान्ये।
तथापरे प्राणिषु कर्मदोषप्रकोपजाः कायमनो विकाराः।।

वस्तुतः ज्योतिषशास्त्र भी कर्म को प्रधानता प्रदान करता है। इसलिए जातक या होराशास्त्र में प्रथम अध्याय में पूर्व में ही जन्म–जन्मान्तरों में किये गये पापकर्म द्वारा ही दोषजन्य रोगों की उत्पत्ति होती है ऐसा उल्लेख प्राप्त होता है। यथा–

होरेत्यहोरात्र – विकल्पमेके वांछन्ति पूर्वापरवर्णलोपात्।
कर्मार्ज्जितं पूर्वभवे सदादि यत्तस्य पक्तिं समभिव्यनक्ति।।

संसार में 84 लाख योनियों का भोग होता है उसके उपरान्त मानव देह की प्राप्ति होती है और यह मानव देह भी पूर्वार्जित शुभाशुभ कर्मप्रभाववश ही हमें प्राप्त होता है कि जीवन में सुख–सौभाग्य एवं भाग्य की अभिवृद्धि होगी अथवा नहीं। इसी मानव देह में जातक अपने जन्म–जन्मान्तर किये गये समस्त शुभाशुभ कर्मों से मुक्ति प्राप्त कर सकता है। अन्य योनियां तो केवल भोगने हेतु है उन योनियों में जीव केवल पशुता का जीवन जीता है। इसलिए जीवन में सुख–या दुःख का आगमन कब होगा, किस दशा में होगा, गोचर में ग्रहों की स्थिति क्या रहने वाली है यह सब ज्योतिषशास्त्र के माध्यम से पूर्व में ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

अभ्यास प्रश्न

निम्न प्रश्नों के उत्तर दीजिए–

(क). संसार में कुल कितनी योनियों का उल्लेख प्राप्त होता है।

(ख). शुभाशुभ कर्मों का प्रभाव कहाँ प्रत्यक्षीकरण होता है।

(ग). ज्योतिष की दूसरी संज्ञा क्या है।

(घ). मानवदेह में सोडियम की मात्रा कितनी होती है।

(ङ) समुद्र के जल में सोडियम की मात्र का प्रतिशत क्या है।

2.4 सारांश :–

वस्तुतः ज्योतिष सूचकशास्त्र है इस शास्त्र के द्वारा केवल भाग्य के विषय में ही नहीं अपितु जीवन में प्रतिदिन एवं प्रतिक्षण घटित होने वाली समस्त घटनाओं के विषय में जाना जा सकता है। यह शास्त्र मानव द्वारा किये गये पूर्व जन्मों में शुभाशुभ कर्मों को आधार मानकर फलादेश करता है। और संसार में ऐसा कोई अन्य शास्त्र या कोई विधि या उपविधि नहीं है जिसके माध्यम से आप घटना घटित होने से पूर्व उसके विषय में जान सकें। घटनाओं की पूर्व में जानकारी प्राप्त करने का आधार जातक की जन्मकुण्डली

है। क्योंकि जातक जब पृथ्वी पर जन्म लेता है तो खगोल में जो ग्रहों की स्थिति होगी वहीं जातक के शुभाशुभ कर्मों का आधार होता है इस इकाई में आप रोगों के विषय में ज्ञान ग्रहण करेंगे रोग कब आयेगा, कौन सी राशि कौन से नक्षत्र के संयोग से रोगोत्पत्ति होनी संभव है। कौन–कौन से नक्षत्र में कौन सा रोग होना है यह सम्पूर्ण ज्ञान आप ने इस इकाई में अध्ययन किया।

2.5 पारिभाषिक शब्दावली :–

क्रियमाण कर्म – वर्तमान काल में किया जाने वाला कर्म।

प्रारब्ध कर्म– संचित का एक भाग जो जन्म–जन्मान्तर से प्राप्त हुआ है।

संचित कर्म– वर्तमान कर्म के उपरान्त संचय होना।

अहोरात्र– दिन एवं रात्रि।

होरा– अहोरात्र के आदि और अन्तिम अक्षर लोप करने पर शेषहोरा जिसका अर्थ है एक घण्टा।

पूर्वार्जित– पूर्व जन्मों में अर्जित किये गये कर्म।

पूर्वभवे– पूर्व में जो हो चुका है।

तस्य– उसके

पक्तिं– क्रमशः, क्रम पूर्वक एक–एक करके।

समभिव्यनक्ति– एक समान भाव से भोग होता है।

कर्मप्रकोपेन– अनुचित कर्म के कोप द्वारा प्राप्त रोगादि दोष।

दोषप्रकोपेन– दोष की उत्पत्ति से प्रकुपित।

नक्षत्र– नक्षरति इति नक्षत्र जिसका कभी नाश न हो।

प्रकोपजाः– प्रकोप के द्वारा उत्पन्न दोष।

कायमानो–	शरीर एवं मन।
विकाराः–	विकार पैदा होना।
व्याधिरूपेण–	रोग रूप में।
जायते–	होते हैं।
जन्मजात–	जन्म के साथ उत्पन्न रोगादि।
आगन्तुक–	आने वाले रोग।
त्रिदोष–	वात–पित–कफ।
संक्रमणजन्य–	संक्रमण से प्राप्त होने वाले रोग।
अनुवांशिक रोग–	वंशानुगत प्राप्त रोग।

2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर :–

(क). समय का सूचक, चूँकि काल का आभास मानव को होता है इसलिए कालपुरुष की संज्ञा दी गई।

(ख). मीन राशि।

(ग). उत्तराषाढ़ा के अन्तिम तीन चरण, श्रवण के चार चरण और धनिष्ठा के प्रथम दो चरण।

(घ). विशाखा, अनुराधा और ज्येष्ठा।

(ङ). हृदय का नेतृत्व कर्क राशि।

2-3-2 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर :–

(क). नहीं, (ख). हाँ, (ग). नहीं, (घ). हाँ, (ङ). हाँ।

2.3.3 अभ्यास प्रश्न :–

(क). 84 लाख, (ख). संचित एवं प्रारब्ध कर्म, (ग). वेदांग, ज्योतिपुंज प्रकाश आदि, (घ). 80 प्रतिशत, (ङ) 80 प्रतिशत।

2.7 सन्दर्भ ग्रंथों की सूची :–

1. प्रश्नमार्ग चौखम्बा संस्कृत सीरीज प्रकाशन, वाराणसी।

2. रोग और ज्योतिष, शुकदेव चतुर्वेदी रचित।
3. शातातपीय तन्त्र, मोतीलाल वाराणसी, मुम्बई, दिल्ली।
4. वीरसिंहावलोक गंगाविष्णु कृष्णदास–बम्बई।
5. वाग्भट एवं माधवनिदान, गंगाविष्णु कृष्णदास, बम्बई।
6. सुश्रुत संहिता, मोतीलाल वाराणसी, नई दिल्ली।
7. लघुजातक, मोतीलाल वाराणसी, नई दिल्ली।
8. जातकपारिजात, चौखम्बा प्रकाशन, नई दिल्ली।
9. बृहज्जातक सत्यम् पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
10. लघुपाराशरी सत्यम पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
11. सारावली मोतीलाल वाराणसी, मुम्बई, कोलकाता, दिल्ली।
12. बृहत्पाराशरहोराशास्त्रम् सत्यम् पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
13. फलदीपिका रोगनिर्णय अध्याय–चौखम्बा सीरीज, वाराणसी।
14. ग्दावली, गंगादास कृष्णदास अकादमी, बम्बई।
15. सर्वार्थ चिन्तामणि– चौखम्बा पब्लिकेशन, नई दिल्ली।

2.8 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री :–

1. सर्वार्थ चिन्तामणि– चौखम्बा पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
2. ग्दावली, गंगादास कृष्णदास अकादमी, बम्बई।
3. सारावली मोतीलाल वाराणसी, मुम्बई, कोलकाता, दिल्ली।
4. सुश्रुत संहिता, मोतीलाल वाराणसी, नई दिल्ली।
5. वाग्भट एवं माधवनिदान, गंगाविष्णु कृष्णदास, बम्बई।
6. वीरसिंहावलोक गंगाविष्णु कृष्णदास–बम्बई।
7. शातातपीय तन्त्र, मोतीलाल वाराणसी, मुम्बई, दिल्ली।
8. रोग और ज्योतिष, शुकदेव चतुर्वेदी रचित।
9. प्रश्नमार्ग चौखम्बा संस्कृत सीरीज प्रकाशन, वाराणसी।

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न :–

(क). कालपुरुष के शरीर में राशिस्थापना का उद्देश्य स्पष्ट करें।

(ख). कालपुरुष के शरीर में नक्षत्रों की स्थापना करके उसका उद्देश्य स्पष्ट करें।

(ग). नक्षत्रों के सामान्य स्वरूप का परिचय दें।

(घ) कालपुरुष का रोगों से सम्बन्ध सिद्ध करें कैसे रोगों की सम्भावना व्यक्त की जा सकती है।

(ङ). रोगों का पूर्व में किस प्रकार से ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। उदाहरण देकर स्पष्ट करें।

इकाई – 03 नेत्र रोग

इकाई की रूपरेखा –

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्‌देश्य
1.3 मुख्य भाग खण्ड एक
 1.3.1 उपखण्ड एक – नेत्र से सम्बन्धित रोग
 1.3.2 उपखण्ड दो – जन्मजात नेत्र रोगों के ज्योतिषीय योग
 1.3.3 उपखण्ड तीन – आगन्तुक नेत्र रोगों के ज्योतिषीय योग
 1.3.4 उपखण्ड चार –अन्य नेत्र रोंगों के ज्योतिषीय योग।
1.4 सारांश
1.5 पारिभाषिक शब्दावली
1.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.7 सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची
1.8 साहायक उपयोगी सामग्री
1.9 निबन्धत्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना–

पंचमहाभूतों से निर्मित इस संसार के समस्त जड़–चेतन पदार्थो में मानव शरीर प्रवृफति की अद्भुत संरचना है। पंचमहाभूतों (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश) से संगठित शरीर में पंचज्ञानेन्द्रियों (कर्ण, त्वचा, नेत्र, जिह्ना, नाक) का स्थान सर्वोपरि है। इन्हीं पाँच ज्ञानन्द्रियों में नेत्र वह इन्द्रिय है, जो भौतिक जगत का बोध कराने का कार्य करती है। यह संसार की समस्त जानकारी दृष्टि द्वारा संग्रहित कर मस्तिष्क में पहुंचाती है। आयुर्वेद के अनुसार पंचमहाभूत नेत्र रचना के आधार हैं। जिसमें आंखों का माँसल भाग पृथ्वी से, एक भाग अग्नि से, काला भाग–वायु से सफेद भाग जल से तथा रिक्त भाग व अश्रुत वाहक नलियां आकाश तत्व से बनी हैं।

आयुर्वेद की त्रिप्रकृति वात कफ और पित्त मिल कर नेत्र के कार्यों का सम्पादन करते हैं। इनमें वात प्रकृति नेत्रों की गति को नियंत्रित करती है और देखे गये विषय को मस्तिष्क तक पहुंचाती है, इसमें पहला कार्य व्यान तथा दूसरा कार्य प्राण वायु करती है। पित्त प्रकृति देखने की क्रिया को करती है। जिसे आलोचक पित्त कहा जाता है। तथा कफ प्रकृति को स्वच्छ रखने का कार्य करती है। नेत्रों में पंचमहभूतों व वात–पित्त–कफ प्रवृफति में जब विवृफतियां आती तो वह नेत्र रोग का कारण बन जाती हैं।

आचार्य सुश्रुत ने नेत्रों में रोगों के प्रकार 76 माने हैं तथा आचार्य माध्व ने 78 प्रकार के नेत्र रोगों का वर्णन किया। इन नेत्र रोगों के अनेक प्रकार के कारणों की जानकारी व रोगों के समय के विषय में ज्योतिषशास्त्र की महती भूमिका है। त्रिस्कन्धत्मक ज्योतिषशास्त्रा के होरा स्कन्ध में मनुष्यों को होने वाले रोगों का विचार किया है। इस इकाई में आप ज्योतिषशास्त्र के होरा स्कन्ध में वर्णित नेत्र रोगों के विषय में अध्ययन करेंगे।

1.2 उद्देश्य –

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप

1. नेत्रों की बनावट के विषय में जान पाएंगे।
2. आधुनिक चिकित्साशास्त्र के अनुसार नेत्रों से सम्बन्धित रोगों के विषय में ज्ञान प्राप्त करेंगे।
3. जन्मजात नेत्र रोगों के ज्योतीषीय योग बताने में समर्थ होंगे।
4. आगन्तुक नेत्रा रोगों के ज्योतीषीय योग जान पाएंगे।
5. नेत्र रोगों से सम्बन्ति अनेक ज्योतीषीय योगों के विषय में ज्ञान प्राप्त करेंगे।

1.3.1 नेत्र से सम्बन्धित रोग

नेत्रों की बनावट –नेत्र मानव शरीर का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। नेत्रों का कार्य देखना तथा देखे हुए संदेश को मस्तिष्क तक पहुँचाना होता है। शरीर का यह अंग अत्यन्त कोमल होता है। आँख का बाहरी आवरण स्क्लेरा तथा

कोर्निया का बना होता है, यह नेत्र गोलक को दोनों ओर से ढँकता है। स्क्लेरा सफेद परत होती है, इसी कारण आँख का रंग सफेद होता है। स्क्लेरा व कोर्निया, आँख के नाजुक भाग की रक्षा करते हैं, वहीं कोर्निया प्रकाश की किरणों को रेटिना पर केन्द्रित करता है। नेत्र गोलक को घुमाने वाली पेशियाँ स्क्लेरा से जुड़ी होती हैं। नेत्र का अगला भाग मध्य परत कहलाता है, इसमें कोरोयड, सिलियरी बॉडी व आइरिस होते हैं। कोरोयड कत्थई रंग की परत होती है, यह प्रकाश की ज्यादा किरणें अंदर जाने से रोकती है। इसी के पास सिलियरी बॉडी होती है, इसके सिकुड़ने, फैलने से लेंस का आकार बदलता है, ये स्रावी कोशिकाओं से बने होते हैं। इन कोशिकाओं से एक तरह का पदार्थ निकलता है जो लेंस तथा कॉर्निया के बीच में भरा रहता है। सलियरी बॉडी से जुड़ा हुआ गोलाकार आइरिस होता है, यह रंगीन होता है और आँखों का रंग इसी से निर्धारित होता है। यह लेंस व कोर्निया के बीच होता है, इसके बीच के गोलन को पुतली कहते हैं। तीव्र प्रकाश में पुतलियाँ छोटी तथा कम व दूर के प्रकाश में बड़ी हो जाती हैं। सके बाद का अंग रेटिना होता है, यह तंत्रिका तंतुओं का बना होता है, यह आगे पतला तथा पीछे मोटा होता है। इसमें दो प्रकार की रॉड्स तथा कोन आकार की कोशिकाएँ होती हैं। रॉड कोशिकाएँ मंद प्रकाश को देखने में तथा कोन्स कोशिकाएँ तेज प्रकाश को देखने का काम करती हैं साथ ही ये रंग का निर्धारण भी करती हैं।

नेत्रों के रोग –आधुनिक चिकित्साशास्त्र के अनुसार प्रमुख नेत्र रोग निम्नलिखित है –

रतौंधी (रात का अंधापन) – रात्रि में दिखई न देना रात का अन्धापन कहलाता है। यह जन्मजात भी होता है तथा यह रेटिना को प्रभावित करने वाली अपक्षयी बीमारी से भी विकसित हो सकता है। तथा इसका इलाज नहीं किया जा सकता है।

वर्ण अन्धता (कलर ब्लाइंडनेस) –विशिष्ट रंग देखने में कठिनाई होना कलर ब्लाइंडनेस कहलाता है। आमतौर पर प्राथमिक रंग जैसे लाल, हरा और नीला। कलर ब्लाइंडनेस रेटिना में स्थित रंग–संवेदनशील कोशिकाओं की अनुपस्थिति या • राबी के कारण होता है। अधिकतर, यह अनुवांशिक होता है, लेकिन यह उम्र, आंखों की बीमारियों, आंखों के आघात या कुछ दवाओं के कारण भी हो सकता है।

मोतियाबिंद –मोतियाबिंद आंखों के लेंस में एक दर्द रहित वाला क्षेत्रा है जो धुंध्ली दृष्टि का कारण बनता है। एक स्वस्थ लेंस कांच की तरह साफ होता है। प्रकाश इसके माध्यम से रेटिना तक जाता है और हमारी आंखों के पीछे चित्रा बनते हैं। मोतियाबिंद के कारण प्रकाश इतनी आसानी से नहीं जा सकता। इसलिए रोगी ठीक से नहीं देख सकता है।

उम्र से संबंधित नेत्रा रोग– उम्र के साथ भी नेत्रों में विकार उत्पन्न होते हैं। उम्र के साथ धीरे–धीरे मैक्युला नष्ट हो जाता है तथा रेटिना का मध्य भाग

जो फोकस में मदद करता है, कमजोर पड जाता है। यह रोग धुंधली दृष्टि का कारण बनता है। 60 वर्ष से अध्कि उम्र के लोगों में यह स्थिति सबसे आम है, जिससे अंधापन और दृष्टि कमजोर होती है।

निकट दृष्टि दोष– इस रोग में दूर की वस्तुएं धुंधली दिखाई देती हैं, जबकि करीबी वस्तुएं स्पष्ट होती हैं। यह अपवर्तक त्राुटियों की स्थितियों में से एक है, जो तब होता है जब प्रकाश हमारे रेटिना पर ठीक से केंद्रित नहीं होता है।

दूरदर्शिता –इस स्थिति में पास की वस्तुएं दूर की वस्तुओं की तुलना में अधिक धुंधली दिखाई देती हैं। निकट वस्तुओं पर ध्यान केंद्रित करने में कठिनाई होती है। उम्र के साथ इसकी व्यापकता बढ़ जाती है। इस स्थिति में कॉर्निया असामान्य रूप से सपाट हो जाता है और प्रकाश को रेटिना पर तेजी से ध्यान केंद्रित करने की अनुमति नहीं देता है। प्रेस्बायोपिया

मधुमेह नेत्र समस्या –यह डायबिटीज की एक जटिलता है जो आंखों को प्रभावित करती है। यह लंबे समय से डायबिटीज वाले किसी भी व्यक्ति में विकसित हो सकता है।

ज्योतिष शास्त्र में नेत्र रोग विचार – ज्योतिष शास्त्र के प्रायः सभी होरा ग्रन्थों में नेत्र रोगों के विषय में वर्णन प्राप्त होता है। प्रो. शुकदेव चतुर्वेदी द्वारा रचित **''ज्योतिष शास्त्र में रोग विचार''** के अनुसार नेत्र रोग मुख्यतया तीन प्रकार के होते हैं–û. जन्मजात, ü. आगन्तुक एवं ý. सामान्य। जन्म से ही अन्धा, काणा भेंगा होना अथवा अन्य विकार जन्मजात नेत्र रोग है। चोट अथवा दुर्घटना आदि के कारण नेत्र में विकार उत्पन्न होना आगन्तुक है तथा आयु के साथ साथ अथवा वृद्धावस्था होने पर दृष्टि कमजोर हो जाना सामान्य नेत्ररोग कहलाता है। आगन्तुक नेत्र रोग मनुष्य या अन्य जीवों के द्वारा चोट पहुंचाने से अथवा चेचक आदि अन्य रोगों के परिणाम स्वरूप होते हैं। तथा सामान्य नेत्र रोग वे कहलाते हैं जो आयु के साथ–साथ वृद्धावस्था में होते हैं। ज्योतिष शास्त्र के ग्रंथों में अन्धत्व, आँख फटना, काणत्व, रतौंधी, भेंगापन, एवं अन्य नेत्र रोगों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है।

होरा शास्त्र के अनुसार समस्त ग्रहों को प्रकाशित करने वाले भगवान् सूर्य नेत्रों के कारक है तथा चन्द्रमा एवं शुक्र सहयोगी ग्रह है। अतः सूर्य चन्द्र एवं शुक्र इन तीनों ग्रहों से नेत्रा तथा उसमें होने वाले विकारों का विचार किया जाता है। जन्माङ्ग में भाव से दायें नेत्र का तथा द्वादश भाव से बायें नेत्र का विचार किया जाता है। इन भावों के अतिरिक्त षष्ठ एवं अष्टम भाव जो कि रोगों के प्रतिनिधि भाव हैं, से भी नेत्ररोगों का विचार किया जाता है । अतः किसी भी व्यत्तिफ के नेत्राों या नेत्रा रोगों का विचार करते समय उक्त चारों भावों का भी गम्भीरतापूर्वक अध्ययन करना आवश्यक है।

अति लघूत्तरीय प्रश्न –

1- आँख का बाहरी आवरण किस का बना होता है? स्क्लेरा तथा कोर्निया
2- विशिष्ट रंग देखने में कठिनाई होना कौन सा रोग है? वर्णान्धता
3- ''ज्योतिष शास्त्र में रोग विचार'' ग्रन्थ के अनुसार नेत्र रोग मुख्यतया कितने प्रकार के होते हैं? 3
4- जन्माड्.ग में किस भाव से दायें नेत्र का विचार किया जाता है। द्वितीय
5- होरा शास्त्र के अनुसार नेत्रों का कारक ग्रह कौन सा है। सूर्य

1.3.2 जन्मजात नेत्र रोगों के ज्योतिषीय योग

ज्योतिषशास्त्र एवं आयुर्वेद के अनुसार व्याधियां दो प्रकार की होती हैं – जन्मजात तथा आगन्तुक। नेत्र रोग भी जन्मजात एवं आगन्तुक के भेद से दो प्रकार के होते है। जन्म से ही व्यक्ति के नेत्रों में कोई विकार जन्मजात नेत्र रोग होता है। इसे जन्मान्धता भी कहते है। जातक ग्रन्थों में जन्मान्ध के सूचक अनेक योग कहे गये हैं। उनमें से कुछ योगों का विचार आधन कुण्डली के द्वारा तथा कुछ का जन्मकुंडली के द्वारा किया जाता है। आधान कुंडली में निम्नलिखित योगों में से कोई एक योग हो तो गर्भस्थ जातक जन्मान्ध होता है –

1. सूर्य, शुक्र एवं लग्नेश के साथ द्वितीयेश षष्ठ, अष्टम अथवा द्वादश भाव में हों।
2. लग्नेश में ग्रहणकालीन सूर्य हो तथा मंगल एवं शनि त्रिकोण में हों।
3. सूर्य एवं शुक्र के साथ लग्नेश त्रिक स्थान में हो।
4. सिंह लग्न में सूर्य एवं चन्द्रमा हो तथा उन पर मंगल एवं शनि की दृष्टि हो ।
5. व्यय भाव में सूर्य एवं चन्द्रमा दोनों हों।
6. एक साथ स्थित सूर्य एवं चन्द्रमा से द्वितीयेश मंगल 8वें स्थान में हो तथा छठे या ûüवें भाव में हो।
7. लग्न से दूसरे स्थान में मंगल, 6 ठे चन्द्रमा 8वे सूर्य तथा 12 वे स्थान में शनि हो ।

काणत्व योग

एक नेत्र का ना होना अर्थात एक नेत्र से ना दिखाई देना काणत्व कहलाता है। कुछ जातक ऐसे होते हैं, जो जन्म से ऐ नेत्र से दृष्टिहीन होते हैं। जन्म से काणत्व के योगों का विचार भी आधान कुण्डली एवं जन्मकुंडली से किया जाता है। आधान कुण्डली में निम्नलिखित योगों में कोई एक योग हो तो गर्भस्थ शिशु एक आँख से काना होता है

1. यदि व्यय भाव में क्षीण चन्द्रमा हो तो बायें नेत्र से तथा उस भाव में सूर्य हो तो दाहिने नेत्र से दृष्टिहीन होता है।

2. षष्ठ भाव में पाप ग्रह हो तो बायी आँख से तथा अष्टम भाव में पाप ग्रह हो तो जातक दाहिनी आंख से काणा होता है ।

जन्म कुण्डली में निम्नलिखित योगों में से कोई योग हो तो जातक एक नेत्र से दृष्टिहीन होता है ।

1. व्यय भाव में मंगल हो तो बायीं आँख से तथा शनि हो तो दाहिनी आँख से दृष्टिहीन होता है।
2. सिंह राशि में सप्तम स्थान में चन्द्रमा हो और उस पर मंगल की दृष्टि हो तो जातक एक नेत्र से दृष्टिहीन होता है। ।
3. कर्क राशि में सप्तम स्थान में सूर्य हो तथा उस पर मंगल की दृष्टि हो तो जातक एक नेत्र से दृष्टिहीन होता है।

लघूत्तरीय प्रश्न –

1. नेत्र रोग कितने प्रकार के हैं? नेत्र रोग जन्मजात एवं आगन्तुक के भेद से दो प्रकार के होते है।
2. काणत्व क्या है? एक नेत्र का ना होना अर्थात एक नेत्रा से न दिखाई देना काणत्व कहलाता है।
3. जन्म से काणत्व के योगों का विचार किस कुण्डली से किया जाता है। आधन कुण्डली एवं जन्मकुंडली से
4. व्यय भाव में मंगल हो तो जातक किस आँख से काणा होता है? बायीं आँख
5. यदि व्यय भाव में सूर्य हो तो जातक किस आँख से दृष्टिहीन होता है। दाहिने नेत्र

1.3.3 आगन्तुक नेत्र रोगों के ज्योतिषीय योग

आगन्तुक नेत्र रोग वें होते हैं जो जन्म के पश्चात चोट लगने, बिमारी के कारण अन्यथा किसि और कारणों से होते हैं। अंधत्व, काणत्व, रतौंधी, भेंगापन आदि अनेक रोगों के योगा होरा ग्रन्थों में वर्णित हैं, जो इस प्रकार हैं –

अंधापन और उसका योग

देखने की शक्तिा या दृष्टि का नष्ट हो जाना अन्धापन कहलाता है। जातक ग्रन्थों में इस रोग का विस्तारपूर्वक विचार किया गया है तथा जन्मान्ध्ता एवं बाद में होने वाले अन्धेपन के योग बतलाये गये हैं। जन्मान्धता के योगों का विचार जन्मजात रोगों के प्रसंग में पहले किया जा चुका है। अतः यहाँ जन्म के बाद होने वाले अन्ध्पन के योगों का विचार किया जा रहा है। अंधेपन के ज्योतिषीय योग निम्नलिखित हैं –

1. कुम्भ राशि में लग्न में मंगल हो ।
2. शुक्र एवं लग्नेश के साथ द्वितीय एवं द्वादशेश त्रिक स्थान में हो ।

3. शुक्र एवं दो पापग्रहों के साथ चन्द्रमा द्वितीय स्थान में हो
4. चन्द्रमा त्रिक स्थान में हो तथा उस पर पापग्रहों की दृष्टि हो ।
5. सिंह लग्न में सूर्य एवं चन्द्रमा हो तथा उन पर मंगल एवं शनि की दृष्टि हो।
6. सूर्य अष्टम, चन्द्रमा षष्ठ हो, मंगल द्वितीय में तथा शनि द्वादश स्थान में हो।
7. सूर्य एवं चन्द्रमा दोनों द्वादश भाव में हों।
8. षष्ठ एवं अष्टम स्थान में पाप ग्रह हों।
9. राहु लग्न में हो तथा सूर्य सप्तम स्थान में हो।
10. द्वितीय एवं द्वादश स्थान में क्रमशः सूर्य एवं चन्द्रमा हो तथा षष्ठ एवं अष्टम भाव में पाप ग्रह हों।
11. षष्ठ में चन्द्रमा अष्टम में सूर्य, नवम में शनि तथा द्वितीय स्थान में मंगल हो ।
12. मंगल द्वितीयेश होकर सूर्य एवं चन्द्रमा से स्थान में हो तथा शनि 6, 8 अथवा 12 स्थान में हो
13. शनि एवं मंगल के साथ चन्द्रमा 6, 8 अथवा 12 भाव में हो।
14. द्वितीयेश एवं लग्नेश त्रिक स्थान में हो।
15. द्वितीयेश एवं लग्नेश त्रिक स्थान में हो।
16. द्वितीयेश एवं द्वादशेश ये दोनों शक्र एवं लग्नेश के साथ त्रिकस्थान
17. शुक्र एवं पापग्रह के साथ चन्द्रमा द्वितीय स्थान में हो।
18. सूर्य एवं चन्द्रमा पापग्रहों के मध्य में हो।
19. सूर्य एवं चन्द्रमा से 7वें स्थान में मंगल हो तथा बुध पृष्ठोदय राशि में हो।
20. चतुर्थ एवं पंचम स्थान में पापग्रह हों तथा चंद्रमा 6, 8 अथवा 12 स्थान में हो ।
21. सूर्य एवं चंद्रमा दोनों तृतीय या केन्द्र में हो।
22. पापग्रह की राशि में मंगल हो ।
23. शनि की राशि में सप्तम भाव में सूर्य हो ।
24. शुभग्रह 6, 8 एवं 12 वें स्थान में हों तथा उन पर पाप ग्रहों की दृष्टि हो।
25. सिंह लग्न में शनि हो ।
26. शनि द्वादश में, चन्द्रमा द्वितीय में तथा सूर्य अष्टम स्थान में हो।
27. लग्न से पंचम स्थान पर सूर्य एवं राहु की दृष्टि हो।
28. शुक्र से पंचम स्थान पर सूर्य एवं राहु की दृष्टि हो ।
29. चतुर्थ स्थान में शनि हो तथा उस पर पापग्रहों की दृष्टि हो ।

आंख का फटना एवं उसके योग –

जन्म से सुन्दर एवं स्वस्थ नेत्र वाले जातक की जन्म के बाद किसि कारण वश चोट लगने से या अन्य दुर्घटना में आँख फूट जाती है। यह घटना उन जातकों के जीवन में घटती है, जिनकी कुण्डली में निम्नलिति योगों में से कोई एक हो –

1. शनि या मंगल 12 वें स्थान में हो तो आँख फूट जाती है। इस स्थान में शनि के होने पर दाहिनी आंख तथा मंगल के होने पर बायीं आँख फूटती है।
2. सूर्य एवं चन्द्रमा 12 वें स्थान में हो तो आँख फूट जाती है। इस स्थान में रवि होने पर दाहिनी तथा चन्द्रमा होने पर बायीं आँख फूटती है ।
3. मंगल एवं शनि के साथ चन्द्रमा अष्टम स्थान में हो तो पित्त–श्लेष्मा (मोतियाबिन्द) के प्रभाव से दाहिना नेत्र नष्ट हो जाता है।
4. मंगल एवं शनि के साथ चन्द्रमा षष्ठ स्थान में हो तो उत्तफ विकार से बायाँ नेत्र नष्ट हो जाता है।
5. शनि के साथ चन्द्रमा 8 वें स्थान में हो तो वातश्लेष्मा के विकार से दाहिना नेत्र नष्ट हो जाता है ।
6. शनि के साथ चन्द्रमा 12 वें स्थान में हो तो उस विकार से बायाँ नेत्रा नष्ट होता है।
7. तीन पापग्रहों के साथ चन्द्रमा शुक्र की राशि में हो तथा उस पर शुभग्रहों की दृष्टि न हो तो दोनों आंखें फूट जाती हैं।
8. लग्नेश एवं द्वितीयेश त्रिक स्थान में हो तो आँखें फूट जाती हैं।
9. सूर्य एवं चन्द्रमा सिंह लग्न में हो तथा उन पर मंगल एवं शनि की दृष्टि हो तो आँखें फूट जाती है।
10. द्वादश भाव में स्थित मंगल हो तो बायीं आँख नष्ट होती है।
11. द्वितीय स्थान में स्थित शनि हो तो दाहिनी आंख नष्ट होती है।
12. द्वितीयेश, षष्ठेश एवं दशमेश शुक्र के साथ लग्न में हो तो राजकोप या राज दण्ड से आँख फूट जाती है।
13. शुक्र एवं मंगल नीच नवांश में पाप ग्रहों के साथ हो तो राजकोप से आँख फूट जाती है। अर्थात् राजदण्ड के रूप में आंख निकाल दी जाती है।
14. दशम एवं पष्ठ स्थान के नवांश लग्नेश के साथ विक स्थान में हो तो राज दण्ड से आँखें फूट जाती है।
15. पंचमेश एवं पठेश के साथ शुक्र लग्न में हो तो राजाज्ञा से आँख फोड़ दी जाती हैं।
16. षष्ठेश एवं दशमेश लग्न में शुक्र एवं द्वितीयेश के साथ हों, तो राजाज्ञा से आँख फोड़ दी जाती है।

उक्त योगों में राजदण्ड के रूप में आंख नष्ट करने योग बताए गए है, जो वर्तमान समय में प्रासंगिक नहीं है। आधुनिक युग में यह दण्ड समाप्त हो चुका है। अतः ज्योतिष शास्त्र के विभिन्न ग्रंथों में जो राजकोप या राजदण्ड द्वारा नेत्र नाश के योग बतलाये गये हैं, इन योगों का आधुनिक काल की परिस्थिति के अनुसार फलादेश करना चाहिए।

काण्व एवं उसके योग

दोनों में से किसी एक आँख से दृष्टिहीन होना काणापन कहलाता

है। यह जन्मजात भी होता है तथा जन्म के बाद भी चोट लगने अथवा अन्य किसि कारण से भी। जन्मजात काणत्व के योगो का वर्णन पहले ही किया जा चुका है। यहाँ जन्म के बाद काणत्व होने के योगों का विचार किया जा रहा है।

नेत्र के प्रतिनिधि ग्रह एवं भाव पर मंगल एवं अन्य पाप ग्रहों के प्रभाववश काणत्व योग बनता है। जातक ग्रन्थों में आँखें फूटने के योगों के साथ–साथ कानेपन के योग भी बतलाये गये हैं, जो इस प्रकार हैं –

1. द्वादश भाव में क्षीण चन्द्रमा हो तथा उस पर शुभ ग्रह की दृष्टि न हो तो बाँये नेत्र से दृष्टिहीन होता है ।
2. द्वादश भाव में सूर्य हो और उस पर शुभ ग्रह की दृष्टि न हो तो दाहिने नेत्र से दृष्टिहीन होता है।
3. लग्न में स्थित मंगल या चन्द्रमा को गुरु एवं शुक्र देखते हों तो मनुष्य एक नेत्र से दृष्टिहीन होता है ।
4. सिंह राशि में सप्तम स्थान में चन्द्रमा हो तथा उस पर मंगल की दृष्टि हो तो मनुष्य काना होता है। अ
5. कर्क राशि में सप्तम में सूर्य हो तथा उस पर मंगल की दृष्टि हो तो मनुष्य काणा होता है।
6. चन्द्रमा एवं शुक्र दोनों 12 वें स्थान में हो मनुष्य एक नेत्र से दृष्टिहीन होता है ।।
7. चन्द्रमा एवं शुक्र दोनों ＊ वें स्थान में हा मनुष्य एक नेत्र से दृष्टिहीन होता है।

पति एवं पत्नी दोनों के काना होने का योग –

जिस स्त्री या पुरुष की कुण्डली में निम्नलिखित योग हों वे पति–पत्नी दोनों ही काने होते हैं। यहयोग इस प्रकार है – सूर्य एवं चन्द्रमा में से कोई एक षष्ठभाव में तथा दूसरा द्वादश भाव में स्थित हो तथा उन पर शुभग्रहों की दृष्टि न हो तो इस योग में उत्पन्न व्यक्ति तथा उसकी पत्नी दोनों काने होते हैं। यदि यह योग स्त्राी की कुण्डली में हो तो वह स्वयं तथा उसका पति दोनों काने होते हैं।

रतौंधी एवं उसके योग –

सूर्यास्त के पश्चात सूर्य के प्रकाश के आभाव में दिखई ना देना रतौंधी अथवा रात्रि अन्धता कहलाता है। सूर्य को छोड़कर अन्य नेत्र कारक ग्रह (चन्द्रमा एवं शुक्र) दुःस्थानों में हो या उन पर पापग्रहों का प्रभाव हो तो रतौंधी का योग बनता है। होरा ग्रन्थों में इस रोग के योग इस प्रकार कहे गए हैं –

1. चन्द्रमा के साथ शुक्र षष्ठ, अष्टम या व्यय स्थान में स्थित हो।
2. शुक्र, चन्द्रमा एवं द्वितीयेश एक साथ हों तथा उन पर पापग्रहों की दृष्टि हो ।

3. शुक्र, चन्द्रमा एवं द्वितीयेश ये तीनों लग्न में हों।

रिक्त स्थान की पूर्ति–

1. आगन्तुक नेत्र रोग वें होते हैं जो ....के पश्चात होते हैं। जन्म
2. मंगल 12 वें स्थान में हो तो ....आँख फूट जाती है। बायीं आँख
3. दोनों में से किसी एक आँख से दृष्टिहीन होना .... कहलाता है। काणापन
4. द्वादश भाव में सूर्य हो और उस पर शुभ ग्रह की दृष्टि न हो तो नेत्र से दृष्टिहीन होता है। दाहिने
5. सूर्यास्त के पश्चात सूर्य के प्रकाश के आभाव में दिखई ना देना ....कहलाता है। रतौंधी अथवा रात्रि अन्धता

1.3.4 अन्य नेत्ररोग के योग –

दृष्टि का कमजोर होना, आँखों में दर्द होना, पानी बहना, आंखों में जलन रहना, भैगापन, आँख में सूजन रहना, आंखों का लाल रहना आदि भी एक प्रकार के नेत्र के विकार ही हैं। इस प्रकार के रोगों के ग्रहयोग इस प्रकार हैं –

1. सूर्य एवं चन्द्रमा दोनों वक्रीग्रह की राशि में हों तथा उन पर पाप ग्रह की दृष्टि हो तो जातक भेंगा होता है।
2. सूर्य एवं चन्द्रमा वक्री ग्रह की राशि में त्रिक स्थान में हों तो जातक भेंगा होता है।
3. पाप ग्रह के साथ सूर्य 12 वें स्थान या त्रिकोण में हो तो जातक ऐंचाताना होता है
4. द्वितीय या द्वादश स्थान में पापग्रह के साथ शुक्र हो तो जातक चिमधा (अधखुली आँखों वाला) होता है।
5. लग्न में सूर्य एवं चन्द्रमा हो तथा इन पर शुभ एवं पाप दोनों ग्रहों की दृष्टि हो तो जातक बुद–बुद लोचन (पलक पीटने वाला) होता है।
6. कर्क लग्न में सूर्य हो तो जातक बुद–बुद लोचन होता है।
7. लग्न में स्थित सूर्य एवं चन्द्रमा को मंगल एवं बुध देखते हों तो आँख में विकार होता है।
8. षष्ठेश वक्री ग्रह की राशि में हो तो आँखों में पीडा होती है ।
9. लग्नेश मंगल या बुध की राशि में हो तथा उस पर मंगल या बुध की दृष्टि हो तो नेत्र में पीड़ा होती है ।
10. अष्टमेश एवं लग्नेश षष्ठस्थान में हो तो बायें नेत्र में रोग होता है
11. षष्ठ या अष्ठम स्थान में शुक्र हो तो दाहिने नेत्र में रोग होता है ।
12. धनेश पर शुभ ग्रहों की दृष्टि हो तथा लग्नेश पाप ग्रहों के साथ हो तो दृष्टि कमजोर हो जाती है।
13. शनि, मंगल या गुलिक के साथ द्वितीयेश हो तो आँखों में दर्द होता है ।

14. द्वितीय स्थान में पाप ग्रह हों तथा उन पर शनि का दृष्टि हो तो नेत्र रोग से दृष्टि नष्ट हो जाती है।
15. द्वितीय भाव के नवांश का स्वामी पाप ग्रह की राशि में हो तो किसी रोग से दृष्टि नष्ट हो जाती है।
16. लग्न या अष्टम स्थान में स्थित शुक्र पर क्रूर ग्रहों की दृष्टि हो तो रोने से नेत्र रोग होता है।
17. लग्न में शयनावस्था का मंगल हो तो नेत्र रोग होता है।
18. द्वितीयेश एवं शुक्र साथ–साथ हो तो नेत्र रोग होता है ।
19. शुक्र से 6, 8 या 12 वें स्थान में द्वितीयेश हो तो नेत्र रोग होता है।
20. त्रिकोण में सूर्य हो तथा उस पर पाप ग्रह की दृष्टि हो तो ज्योति नष्ट हो जाती है।
21. लग्न में सूर्य हो तो दृष्टि कमजोर हो जाती है ।
22. अष्टम स्थान में सूर्य हो तो दृष्टि कमजोर हो जाती है।
23. सूर्य–शुक्र एवं मंगल तीनों एक साथ हो तो नेत्र रोग होता है ।
24. चन्द्रमा एवं मंगल त्रिाक स्थान में हों तो गिर जाने से नेत्र में चोट लग जाती है।
25. गुरु एवं चन्द्रमा त्रिकस्थानों में हों तो जलने या धुएँ से आँखें खराब हो जाती है।
26. द्वितीय या द्वादश स्थान में शनि मंगल से युत या दृष्ट सूर्य एवं चन्द्रमा हो तो नेत्र रोग होता है।
27. द्वितीयेश शनि मंगल एवं गुलिक के साथ हो तो नेत्रा रोग होता है।
28. द्वितीय स्थान में अनेक पाण्ग्रह हों तथा उस पर शनि की दृष्टि हो तो नेत्रा रोग होता है
29. शनि, मंगल, चन्द्रमा एवं सूर्य में बलवान होकर क्रमशः द्वितीय, पृष्ठ, अष्टम एवं व्यय स्थान में हो तो वायुविकार से नेत्रा रोग होता है।
30. द्वितीयेश त्रिाक स्थान में हो तथा उस पर शुभ ग्रहों की दृष्टि हो तो वृद्धावस्था के कारण नेत्र रोग होता है।
31. द्वितीयेश या व्ययेश सूर्य हो और उस पर शनि एवं गुलिक की दृष्टि हो तो कफ एवं पित्त के विकार से नेत्र रोग होता है।

इस प्रकार ज्योतिषीय ग्रन्थों में वर्णित योगों के आधार पर नेत्र से सम्बन्धित रोगों का विचार करना चाहिए।

बहुविकल्पीय प्रश्न –

1. सूर्य एवं चन्द्रमा दोनों वक्री ग्रह की राशि में हों तथा उन पर पाप ग्रह की दृष्टि हो तो जातक होता है –
   (क) अन्धा (ख) गूंगा
   (ग) भेंगा (घ) बहरा
2. लग्न में स्थित सूर्य एवं चन्द्रमा पर किन ग्रहों की दृष्टि से आँख में विकार होता है–

   (क) शनि एवं बुध (ख) मंगल एवं बुध

(ग) गुरू एवं बुध (घ) मंगल एवं शुक्र

3. अष्टमेश एवं लग्नेश षष्ठस्थान में हो तो किस नेत्र में रोग होता है
   (क) दांय (ख) बायें
   (ग) दोनों में (घ) किसि में भी नहीं

4. द्वितीय भाव के नवांश का स्वामी पाप ग्रह की राशि में हो तो दृष्टि नष्ट हो जाती है–
   (क) चोट से (ख) आग से
   (ग) पानी से (घ) रोग से
5. गुरु एवं चन्द्रमा त्रिकस्थानों में हों तो आँखें खराब हो जाती है।
   (क) चोट से (ख) जलने या धुएँ स
   (ग) दुर्घटना से (घ) रोग से

1.4 सारांश

नेत्र मानव शरीर का सर्वाधिक महवपूर्ण अंग है। यह ईश्वर द्वारा प्रदत्त वह उपहार है, जिसके द्वारा हम सुन्दर विश्व को देखने में समर्थ होते है अतः नेत्रों की देखभाल एवं सुरक्षा परम आवश्यक है। आयुर्वेद में नेत्र से सम्बन्धित 78 प्रकार के नेत्र रोगों का वर्णन प्राप्त होता है। आधुनिक चिकित्सा शास्त्रा में नेत्रों की बनावट एवं रतौंधी, वर्ण अन्धता, मोतियाबिंद, निकट दृष्टि दोष, दूरदर्शिता तथा उम्र से संबंधित अनेक नेत्र रोगों के विषय में विचार किया गया है।

भगवान वेदपुरूष के नेत्र स्वरूप ज्योतिषशास्त्र में विविध व्याधियों के विषय में अत्यन्त गम्भीरता से विचार किया गया है। इन व्याधियों के अन्तर्गत विविध नेत्र रोगों के अनेक योगों का विस्तार से वर्णन सविस्तार प्राप्त होता है।

नेत्र रोग मुख्यतया तीन प्रकार के होते हैं–1. जन्मजात, 2. आगन्तुक एवं 3. सामान्य। जन्म से ही दृष्टि रहित होना, एक नेत्र से रहित होना अथवा किसि प्रकार का नेत्र विकार जन्मजात रोग है। जन्म के बाद चोट अथवा किन्ही अन्य कारणों से नेत्र विकार उत्पन्न होना अगन्तुक तथा वृद्धावस्था में साधारणतया दृष्टि का कमजोर होना सामान्य रोग है।

ज्योतिषशास्त्र के अनुसार सूर्य नेत्रों का कारक ग्रह है तथा चन्द्रमा एवं शुक्र सहयोगी ग्रह है। अतः सूर्य चन्द्र एवं शुक्र इन तीनों ग्रहों से नेत्रा तथा उसमें होने वाले विकारों का विचार किया जाता है। जन्माङ्ग में द्वितीय भाव से दायें नेत्र का तथा द्वादश भाव से बायें नेत्र का विचार किया जाता है। इन भावों के अतिरिक्त षष्ठ एवं अष्टम भाव जो कि रोगों के प्रतिनिधि भाव हैं, से भी नेत्ररोगों का विचार किया जाता है। अतः उक्त भावों एवं ग्रहों के सम्बन्ध से निर्मित योग नेत्र से सम्बन्धित विकारों के कारण है, जिनका आपने इस इकाई में विस्तार से अध्ययन किया।

1.5 पारिभाषिक शब्दावली

1. मधुमेह – चयापचय रोगों का समूह जौ व्यक्ति में उच्च रत्तफ शर्करा के उत्पादन के कारण होता है।
2. भेंगा – तीरछी नजर से देखने वाला
3. काणा – एक आंख से रहित
4. रतौंधी – रात्रि को ना दिखाई देने वाला रोग

1.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अति लघूत्तरीय प्रश्न –

1. स्क्लेरा तथा कोर्निया 2- वर्णान्धता 3. तीन 4- द्वितीय 5- सूर्य

लघूत्तरीय प्रश्न –

6. एक नेत्र का ना होना अर्थात एक नेत्रा से न दिखाई देना काणत्व कहलाता है।
7. आधन कुण्डली एवं जन्मकुंडली से
8. नेत्र रोग जन्मजात एवं आगन्तुक के भेद से दो प्रकार के होते है।
9. बायीं आँख
10. दाहिने नेत्र

रिक्त स्थान की पूर्ति–

1. जन्म 2. बायीं आँख 3. काणापन 4. दाहिने 5. रतौंधी अथवा रात्रि अन्धता

बहुविकल्पीय प्रश्न –

1. (ग) 2. (ख) 3. (ख) 4. (घ) 5. (ख)

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची

- ज्योतिष शास्त्र में रोग विचार – प्रो0 शुकदेव चतुर्वेदी, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली 1984
- जातकांलकारः – श्रीगणेशदैवज्ञविरचित, डा. सुरेशचन्द्रमिश्रः, रंजन पब्लिकेशन्स 16, अन्सारी रोड, दरियागंज नई दिल्ली–110002, संशोध्ति संस्करण– 2009
- जातकपारिजातः –लेखक दैवज्ञवैद्यनाथ, व्याख्याकार प. कपिलेश्वरशास्त्राी, चौखम्बा संस्कृत संस्थान वाराणसी–2004।
- ताजिकनीलकण्ठी – नीलकण्ठविरचित, केदारदतदतजोशी, मोतीलाल–बनारसीदास बंगलो रोड, दिल्ली – 110007
- प्रश्नमार्गः – व्याख्याकार – प्रो. शुकदेव चतुर्वेदी, रंजन पब्लिकेशन

दिल्ली, 1978

- फलदीपिका – मन्त्रोश्वरविरचित, व्याख्याकारः – गोपेशकुमार ओझा, मोतीलालबनारसीदास बंगलो रोड, दिल्ली – 110007 द्वितीय संस्करण–1975 ।
- बृहज्जातकम् – वराहमिहिरविरचित, भट्टोत्पलीटीकासहित पं सीतारामझा सावित्री ठाकुर प्रकाशन, रथयात्रा चौराहा वाराणसी सन् – 2006 ।
- बृहत्पाराशरहोराशास्त्राम् – पाराशर, प. पद्मननाभ शर्मा,चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी
- मानसागरी – व्याख्याकार – श्रीमधुकान्तझा, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी संस्करण – 2045 ।
- लघुजातकम् – वराहमिहिरविरचित, टीकाकार–कमलाकान्तपाण्डेय, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, प्रथम संस्करण – 2009।
- सारावली – कल्याणवर्माविरचित, डा. सुरकान्त झा, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी वाराणसी प्रथम संस्करण वि. सं.– 2061 ।

1.8 साहायक उपयोगी सामग्री

- उत्तरकालामृतम् – कालिदास, ज्योतिर्विद् जगन्नाथ भसीन, रंजन पब्लिकेषन्स 16, अन्सारी रोड, दरियागंज नई दिल्ली–110002, 2009।
- ग्रह और नक्षत्र – डा. बी.डी. अवस्थी, राजकमलप्रकाषन प्राइवेट लिमिटेड, फैजबाजार, दिल्ली।
- ज्योतिर्विज्ञानम् – श्रीधूलिपाल, सम्पूर्णानन्द संस्कृतविश्वविष्वविद्यालय वाराणसी –1806 ।
- लघुपाराशरीसमीक्षा – प्रो. शुकदेव चतुर्वेदी, श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रिय– संस्कृतविद्यापीठ नव देहली –16 प्रथमसंस्करण –2005।

1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. आखों की संरचना एवं रोगें का विस्तार से वर्णन कीजिए।
2. जन्मजात नेत्र रोगों के ज्योतिषीय योग लिखिए।
3. अंधापन एवं उसके ज्योतिषीय योगों का उल्लेख कीजिए।
4. काण्त्व तथा उसके ज्योतिषीय योगों की चर्चा कीजिए।
5. होरा शास्त्र के अनुसार आंख फटने के योग लिखिए।

इकाई 04– मुख रोग

इकाई की रूपरेखा –

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 मुख्य भाग खण्ड एक
1.3.1 उपखण्ड एक – मुख रोग से सम्बन्धित ग्रह, राशि एवं भाव, जिव्हा के रोग
1.3.2 उपखण्ड दो – मूकत्व एवं उसके योग
1.3.3 उपखण्ड तीन – दन्त रोग, तालु रोग एवं उसके योग
1.3.4 उपखण्ड चार – अन्य मुख रोग
4.4 सारांश
4.5 पारिभाषिक शब्दावली
4.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.7 सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची
4.8 साहायक उपयोगी सामग्री
4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

मानव शरीर के महत्त्वपूर्ण अंगों में मुख अन्यतम अंग है। मुख के माध्यम से ही जीवनरक्षा हेतु अन्न का ग्रहण किया जाता है। पंच ज्ञानेन्द्रियों में से एक जीव्हा जो हमें ग्रहण किए गए भोज्य पदार्थों के विविध रसों का आस्वादन करवाती है, मुख का अन्यतम भाग है। जिव्हा, दांत, तथा तालु मुख के अन्दर के अंग है, जिनमें व्याधियां होती है। इन में से किसि एक भी अंग में यदि विकार उत्पन्न हो जाए तो भोजन करने में असमर्थता हो सकती है अथवा भोजन का रसास्वाद प्राप्त नहीं होगा। आयुर्वेद के अनुसार रोगों का प्रमुख कारण मिथ्या भोजन एवं जीवनचर्या है। भोजन का ग्रहण मुख से किया जाता है अतः मुख व्याधियों का द्वार है। मुख सम्प्रेषण का भी साधन है। अतः मुख के अंगों में यदि किसि प्रकार का रोग हो तो बोलने में भी असमर्थता अथवा विकार उत्पन्न हो सकता है। जिव्हारोग, मूकत्व, हकलाहट, तुतलाहट, आदि वाग्विकार, दन्तरोग, तालु रोग, मुख से दुर्गन्धि आना आदि ये सब मुख रोग कहलाते हैं। ज्योतिषशास्त्र के होरा ग्रन्थों में इन अंगों से के रोगों सम्बन्धित ग्रह राशि एवं भाव तथा अनेक योगों का वर्णन किया गया है। इस इकाई में आप उक्त रोगों का परिचय प्राप्त करेंगें तथा ज्योतिषीय योगों के विषय में पढ़ेगे।

4.2 उद्देश्य –

इस इकाई के निम्नलिखित उद्देश्य है – इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप

1. मुख रोग से सम्बन्धित ग्रह राशि एवं भावों को जानेगे।
2. जिव्हा के रोग एवं उसके ग्रहयोगों के विषय में ज्ञान प्राप्त करेंगे।
3. मूकत्व , उसके प्रकार एवं ज्योतिषीय योगों को बताने में समर्थ होंगे।
4. दन्तरोग एवं तालुरोग के ग्रहयोगों को जान पाएंगे।
5. अन्य मुख रोगों के विषय में ज्योतिषीय दृष्टि से ज्ञान प्राप्त करेंगे।

4.3.1 मुख रोग से सम्बन्धित ग्रह, राशि एवं भाव तथा जिव्हा के रोग –

आपने पिछली इकाइयों में पढ़ा कि रोगों का विचार ग्रह राशि एवं भावों के माध्यम से किया जाता है। ज्योतिषशास्त्र में कालपुरूष की कल्पना की गई है। उस काल पुरूष के विभिन्न अंगों में राशियों का विन्यास किया गया है। जातक की कुण्डली में जो राशि पापग्रहाक्रान्त हो, उस राशि से सम्बन्धित अंग में रोग होने की सम्भावना होती है। कालपुरूष के विभिन्न अंगों में मुख का प्रतिनिधित्व वृष राशि करती है। द्वितीय भाव मुख• रोगों का प्रतिनिधि भाव है तथा बुध इन रोगों का प्रतिनिधि ग्रह है। लग्न एवं पष्ठ भाव सहायक भाव होते हैं तथा गुरु सहायक ग्रह माना गया है। अतः द्वितीय पष्ठ एवं लग्न इन तीनों भावों, इनके स्वामियों तथा बुध एवं गुरु से उक्त रोगों का विचार किया जाता है। उक्त भावों पर पाप ग्रहों का प्रभाव, उक्त भावों के स्वामी तथा बुध गुरु का दुःस्थान में बैठना, पापग्रहों से दृष्टयुत

होना या निर्बल होना विविध प्रकार के मुख रोगों का सूचक होता है।

जिव्हारोग, मूकत्व, हकलाहट, तुतलाहट, आदि वाग्विकार, दन्तरोग, तालु रोग आदि मुख से सम्बन्धित रोग है, जिनका विचार ज्योतिषशास्त्रीय ग्रन्थों में किया गया है।

जिव्हा के रोग –

जीभ के विभिन्न प्रकार के रोग शरीर में होने वाले कई प्रकार के रोगों के कारण ही उत्पन्न होते हैं। जीभ के अधिकतर रोग पाचन क्रिया खराब होने के कारण या शरीर के अन्य गड़बड़ी के कारण होते हैं। जीभ के कई रोग तो जीभ के जल जाने के कारण भी होते हैं। स्थानिक संक्रमण से बैक्टीरिया वायरस या फंगस के कारण तथा कृत्रिम दांत लगवाने पर ठीक प्रकार से दांत न लगने पर, चोट लगने के कारण, जीभ जल जाने के कारण, तम्बाकू, ऐल्कोहल का सेवन करने के कारण, रसायन से मुख साफ करते समय मुख के रोग के कारण, बेचौनी और अवसाद के कारण, वृद्धावस्था, पूर्ण पोषण न मिलने के कारण, फ्लोरिक एसिड व विटामिन–बी की कमी के कारण, खून की कमी के कारण, एच, आई. वी संक्रमण के कारण, त्वचा के रोग या जीभ के कैंसर रोग के कारण जीभ के रोग होते हैं।

जीभ के कई प्रकार के रोगों में अधिकतर जीभ की नोक और किनारी लाल और सूजी हुई रहती है, जीभ पर सफेद चकत्ते हो जाते हैं, जीभ पर तेज जलन होती है, जीभ पर मोटा लेप चढ़ा रहता है। कई बार तो शरीर में खून की कमी के कारण जीभ का रंग हल्का हो जाता है तथा जीभ पर दरारें पड़ जाती है।

जीभ पर छोटी–छोटी फुसियां होने पर जीभ लाल हो जाती, हल्की फूल जाती है और उसमें दर्द होता है एवं कभी–कभी जीभ फटी हुई दिखाई देती है। जीभ का रंग परिवर्तन भी एक प्रकार का विकार है। यह रंग शारीरिक रोग के अनुसार बदलता रहता है। ऐसे में जीभ कभी लाल, सफेद, नीला, हरा, बादामी, काला आदि हो सकता है।

ज्योतिषशास्त्र के अनुसार जीभ में• छाले होना या जीभ का कट जाना आदि जिह्वा रोगों का विचार मुख्य रूप से बुध एवं द्वितीयेश से किया जाता है। जिस व्यक्ति की कुण्डली में निम्नलिखित योगों में से कोई योग हो, उसे जिह्वा रोग होते है –

1. बुध षष्ठ भाव का स्वामी हो तो जीभ पर छाले हो जाते हैं।
2. द्वितीयेश एवं राहु त्रिकस्थान में हो तो उसकी दशा में बुध की अन्तर्दशा आने पर जीभ कट जाती है या जिह्वा रोग होता है।
3. राहु की आक्रान्त राशि के स्वामी के साथ द्वितीयेश त्रिक स्थान में हो तो उसकी महादशा में बुध की अन्तर्दशा आने पर जीभ कटती है या जिह्वा रोग होता है।

अति लघूत्तरीय प्रश्न

1. कालपुरूष के विभिन्न अंगों में मुख का प्रतिनिधित्व कौन सी राशि करती है। वृष
2. मुख रोगों का प्रतिनिधि भाव कौन सा है। द्वितीय भाव
3. बुध षष्ठ भाव का स्वामी हो तो हो कौन सा रोग होता हैं। जीभ के छाले
4. जिह्वा रोगों का विचार मुख्य रूप से किस भाव के स्वामी से किया जाता है। द्वितीयेश
5. मुख के रोगों का प्रतिनिधि ग्रह कौन सा है। बुध

4.3.2 मूकत्व एवं उसके योग

यदि कोई वाकबाधा पूर्ण रूप से या सीमा से अधिक किसी को बोलने में असमर्थ करे तो उसे मूकत्व अथवा गूंगापन (muteness) कहा जाता है। इस रोग में जातक बोलने पूर्ण रूप से असमर्थ होता है अथवा केवल आवाज निकाल सकता है, शब्दों का उच्चारण नहीं कर पाता। आयुर्वेद के अनुसार बोलने की नाडी में जब वादी भर जाती है तो आवाज बन्द हो जाती है।

मूकत्व दो प्रकार का होता है –1. जन्मजात एवं 2. आगन्तुक। जन्म से ही गूँगा होना जन्मजात मुकत्व कहलाता है तथा जन्म के बाद किसी बीमारी या अन्य कारण से गूँगा होना आगन्तुक मूकत्व कहा जाता है।

जम्नजात मूकत्व –जन्म से ही गूगा होने के योगों का विचार आधन कुंडली द्वारा किया जाना है। यदि आधन कुंडली में वृष राशि में चन्द्रमा हो तथा सब पापग्रह भाव सन्धि में स्थित हो तो गर्भस्थ शिशु गूगा होता है। इस योग में चन्द्रमा पर शुभग्रहों की दृष्टि हो तो बालक जन्म से 1 या 2 साल में बोलने लगता है। जन्मकुण्डली में निम्नलिखित योगों में से कोई एक योग हो तो गुंगे बालक का जन्म होता है –

1. कर्क, वृश्चिक या मीन राशि में स्थित बुध को अमावस्या का चन्द्रमा देखता हो।
2. पष्ठंश एवं बुध– ये दोनों लग्न में हों ।
3. षष्ठेश एवं गुरु ये दोनों लग्न में हों ।
4. धनेश एवं गुरु– ये दोनों त्रिक स्थान में हों।

आगन्तुक मूकत्व– जातक ग्रन्थों में गूंगापन के अनेक योग बतलाये गये हैं। जिस व्यक्ति की कुण्डली में निम्नलिखित योगों में से कोई एक योग हो, जन्म के पष्चात् रोग अथवा किन्ही अन्य कारणों से गूंगा होता है –

1. द्वितीयेश गुरु के साथ त्रिक स्थान में हो ।
2. द्वितीयेश एवं गुरु अष्टम स्थान में हो ।
3. कर्क, वृश्चिक या मीन राशि में स्थित बुध को अमावस्या का चन्द्रमा

देखता हो।
4. षष्ठेश एवं बुध लग्न में हों।
5. षष्ठेश एवं गुरु लग्न में हों।
6. कर्क, वृश्चिक, या मीन राशि में स्थित बुध पर चन्द्रमा की दृष्टि हो, चतुर्थ मे सूर्य हो तथा षष्ठस्थान में पापग्रह हो।
7. शुक्ल पक्ष का चन्द्रमा मंगल के साथ लग्न में हो।
8. द्वितीयेश चतुर्थेश के साथ त्रिक स्थान में हो।

वाक बाधा –

(speech impediment)वाक बाधा किसी मनुष्य की ऐसी स्थिति को कहते हैं जिसमें उसे आसानी से अथवा साधारण रूप से बातचीत करने में कठिनाई आए। इसमें हकलाना, तुतलाना मुख्य वाक बाधाएँ हैं।

हकलाना (स्टैमरिन्ग या स्टटरिन्ग) हकलाना मानव वाक–शक्ति में एक प्रकार की वाक बाधा होती है जिसमें बोलने वाले न चाह कर भी शब्दों की ध्वनियाँ दोहराता है, उन्हें खींचता है और कभी–कभी अटककर आवाज निकालने में असमर्थ हो जाता है। हकलाना का समस्या अधिकतर उनमें होती है, जिनपर किसी बात का दबाव या किसी विषय को लेकर तनाव की स्थिति से डर पैदा हो गया हो या मनोस्थिति बिगड़ गई हो। हकलाने वाला व्यक्ति रुकरुक कर अटक कर या एक ही शब्द को बार–बार बोलता है। इसका मरीज मानसिक रूप से दबाव महसूस करता हुआ जल्दी–जल्दी बोलता है। बोलते समय आंखें भींचता है व उसके होंठ बोलते समय कांपते और जबड़े हिलते हैं। यह रोग द्वितीयेश एवं बुध के निर्बल होने तथा द्वितीय भाव पर पाप ग्रहों का प्रभाव होने से होता है। जिस व्यक्ति की कुण्डली में निम्नलिखित कोई एक योग हो वह हकलाता है –

1. द्वितीयेश निर्बल होकर क्रूर ग्रह के नवांश में हो ।
2. द्वितीय भाव में पाप ग्रह या पापग्रहों का नवांश हो तथा उस पर पाप ग्रह की दृष्टि हो ।
3. नवमेश शुक्र हो ।
4. निर्बल बुध द्वितीय स्थान में हो तथा उस पर पाप ग्रहों की दृष्टि हो ।
5. द्वितीयेश निर्बल एवं पापग्रहों से दृष्ट हो।

तुतलाना– तुतलाने में शब्दों या अक्षर का सही उच्चारण करने में परेशानी होती है। इसमें व्यक्ति के मुंह से कुछ शब्द स्पष्ट नहीं उच्चारण के साथ नहीं निकलते । तुतलाकर बोलने वाले लोग कुछ शब्द जैसे 'र' को 'ड' या 'ल', 'क' को 'त' बोलते है। तुतलाने की समस्या का कारण जीभ का निचला भाग ज्यादा चिपका होना व जीभ मोटी होना होता है, इसके अन्य कारम तालू का कटा होना, न्यूरोलॉजिकल समस्याएं जैसे सेरेब्रल पाल्सी, बोलने के अंगों की मांसपेशियों को नियंत्रित करने में असमर्थता, बोलने के अंगों में बाधा पहुंचना, जीभ और होंठों को चलाने में कठिनाई आदि भी कारण हो

सकते है। यह समस्या आनुवांशिक भी हो सकती है। यह रोग बुध, चन्द्रमा एवं द्वितीय भाव पर शनि का प्रभाव होने के कारण होता है । इस रोग के योग इस प्रकार हैं।

1. सप्तमेश से द्वितीय स्थान में केतु हो।
2. बुध शनि की राशि में हो तथा उस पर शनि की दृष्टि हो ।
3. चन्द्रमा शनि के साथ हो।

लघूत्तरीय प्रश्न

1. मूकत्व रोग के प्रकार कौन – कौन से है। 1. जन्मजात एवं 2. आगन्तुक।
2. आगन्तुक मूकत्व किसे कहा जाता है। जन्म के बाद किसी बीमारी या अन्य कारण से गूँगा होना
3. जन्म से ही गूगा होने के योगों का विचार किसके द्वारा किया जाता है। किया जाना है। आधन कुंडली द्वारा
4. चन्द्रमा पर शुभग्रहों की दृष्टि हो तो जातक कब बोलने लगता है। जन्म से 1 या 2 साल में
5. तुतलाना रोग किसके प्रभाव से होता है। बुध, चन्द्रमा एवं द्वितीय भाव पर शनि के प्रभाव से

4.3.3 दन्तरोग एवं उसके के योग

दंत क्षरण– दंत क्षरण, जिसे दंत–अस्थिक्षय या छिद्र भी कहा जाता है, एक बीमारी है जिसमें जीवाण्विक प्रक्रियाएं दांत की सख्त संरचना (दन्तबल्क, दन्त–ऊतक और दंतमूल) को क्षतिग्रस्त कर देती हैं। ये ऊतक क्रमशः टूटने लगते हैं, जिससे दन्त–क्षय (छिद्र, दातों में छिद्र) उत्पन्न हो जाते हैं। प्रारंभ में यह एक छोटे खड़ियामय क्षेत्र के रूप में प्रतीत होता है, जो अंततः एक बड़े छिद्र के रूप में विकसित हो जाता है। दन्त–क्षय अम्ल–उत्पन्न करने वाले एक विशिष्ट प्रकार के जीवाणुओं के कारण होता है, जो कि किण्वन–योग्य कार्बोहाइड्रेट्स, ग्लूकोज (हसनबवेम) आदि की उपस्थिति में दांतों को क्षति पहुंचाते हैं।

कैन्सर – सामान्यतः दांतों में इंफेक्शन या कीड़े की शुरुआत ऊपरी सतह से होती है जिसे इनेमल कहा जाता है और धीरे–धीरे दूसरी परत (डेन्टीन) एवं फिर तीसरी सतह (पल्प) में प्रवेश कर जाता है। पहली दो परतों में ज्यादा दर्द या बीमारी का आभास नहीं होता किन्तु जब दांत की अंदरूनी परत में इंफेक्शन पहुंच जाता है, तो गंभीर दर्द का एहसास होता है। परिणामस्वरूप धीरे–धीरे दांत की जड़ के नीचे मवाद पड़ जाती है और एक छोटी गांठ का रूप धारण कर लेती है। इसे ग्रेनोलोमा कहते हैं। यदि अब भी इस रोग का यदि समय से उपचार न किया जाए, तो यह सिस्ट या फिर ट्यूमर (कैंसर) में परिवर्तित हो जाता है।

पायरिया– पायरिया मसूड़ों की बीमारी है जो कि बैक्टीरिया के कारण होता है। जब प्रारंभिक समय में मसूड़ों के सूजन और संक्रमण का इलाज नहीं होता है, तब यह पायरिया का रूप ले लेता है। दांत और दातों को सहारा देने वाली हड्डियों में इंफेक्शन, मसूड़ों से फैलता है। पायरिया से ग्रस्त व्यक्ति के मसूड़े और हड्डियां अपने आप को दांतों से दूर खींचने लगते है, जिससे दांत और मसूड़ों के बीच खाली जगह बन जाती है। बाद में इस जगह में दांत का मैल भरने लगता है। नरम ऊतकों में सूजन आ जाने के कारण प्लैक पॉकेट में ही फंस जाता है। लगातार हो रही सूजन और लालिमा धीरे–धीरे दांत के चारों तरफ ऊतकों और हड्डियों को क्षतिग्रस्त करने लगती है। मसूढ़ों से खून आना, दो दांतों के बीच की दूरी बढ़ना, दांतों का टूट कर गिरना (दांतों के छोटे–छोटे टुकड़े), मसूढ़ों का लाल होना, मसूढ़ों का सॉफ्ट होना या फिर मसूढ़ों में सूजन होना। चबा कर खाने में परेशानी होना, सांसों से बदबू आना आदि इस रोग के लक्षण है।

जातक ग्रन्थों में इन रोगों के निम्नलिखित ग्रह योग बतलाये गये हैं –

1. पष्ठ भाव में राहु या केतु हो तो दांतों में पीड़ा होती है।
2. लग्न में मेष, वृष या धनु राशि हो और उस पर पापग्रह की दृष्टि हो तो पाइरिया होता है।
3. व्यय स्थान में चन्द्रमा, त्रिकोण में शनि तथा सप्तम या अष्टम में सूर्य हो ।
4. व्यय स्थान में शुक्र, त्रिकोण में शनि तथा सप्तम में सूर्य हो ।
5. द्वितीयेश राहु के साथ त्रिाक स्थान में हो तो उसकी दशा– अन्तर्दशा में दन्तरोग होता है।
6. लग्न में गुरु एवं राहु हों।
7. सप्तम स्थान में पापग्रह हों तथा उस पर शुभ ग्रहों की दृष्टि न हो।
8. सप्तम स्थान में चन्द्रमा, शनि एवं सूर्य हों तो दाँत टूट जाते हैं।
9. धनेश एवं षष्ठेश पाप ग्रहों के साथ हो ।
10. राहु लग्न या पंचम स्थान में हो।
11. शुक्र एवं शनि अष्टम में, पाप ग्रह षष्ठ में तथा पष्टेश सप्तम में हो।
12. षष्ठेश मंगल की राशि में, लग्नेश एवं मंगल लग्न में हो और उन पर शनि की दृष्टि हो ।

तालु रोग एवं उसके योग –

मुह के अन्दर उपरी भाग को तालु कहते है। आयुर्वेद में इसे गलकोष कहा जाता है। नाक, कान, मुह, फेंफडे आदि की नलियों का योग गलकोष में होता है। गलकोष के दांय अथवा बांय भाग में सूजन होना, गलकोष से सफेद कफ निकलना, गलकोष का सूख जाना, कठोर वस्तु खाने से तालु में चोट लग जाना आदि गला बैठ जाना आदि तालु के विकार है।

मुंह के घाव– श्लेष्मल झिल्ली या होंठों पर या मुंह के आस–पास स्थित उपकला में दरार के कारण मुंह के भीतर दिखाई देने वाले एक खुले घाव

का नाम है। इनसे जुड़े कारणों की बहुतायत के साथ मुंह के छालों के विविध प्रकार होते हैं, जिनमें निम्नलिखित कारण शामिल हैं: भौतिक या रासायनिक चोट, सूक्ष्मजीवों से संक्रमण, चिकित्सीय स्थितियां या औषधियां, कैंसरयुक्त और गैर–विशिष्ट प्रक्रियायें. एक बार निर्मित हो जाने पर, जलन तथाध्या द्वितीयक संक्रमण के द्वारा छाला बना रहता है। मुंह के छाले के दो आम प्रकार एफ्थस छाले और बुखार के छाले या फीवर ब्लिस्टर्स हैं। होंठों के आस–पास बुखार के छाले हर्पस सिम्प्लेक्स वायरस के कारण होते हैं।

फलित ज्योतिष के ग्रन्थों में बुध एवं द्वितीयेश से तालु का विचार किया जाता है। इसका प्रतिनिधि भाव द्वितीय भाव माना गया । अतः बुध एवं द्वितीयेश का रोग स्थान में बैठना, पापग्रहों से प्रभावित होना या द्वितीय स्थान पर पापग्रहों का प्रभाव होने से तालु रोग होते हैं। जातक ग्रन्थों में इस रोग के सूचक निम्नलिखित दो योग मिलते हैं । जिसकी कुण्डली में निम्नलिखित योगों में से कोई योग हो उसे तालु रोग होते हैं

1. द्वितीयेश एवं बुध षष्ठ स्थान में राहु या केतु के साथ हों।
2. द्वितीयेश एवं बुध पष्ठ स्थान में हो और वे राहु या केतु की आक्रान्त के स्वामी के साथ हो।

सत्य/असत्य प्रश्न

1. दन्त–क्षय अम्ल–उत्पन्न करने वाले एक विशिष्ट प्रकार के जीवाणुओं के कारण होता है। सत्य/असत्य
2. पायरिया जीभ की बीमारी है जो कि बैक्टीरिया के कारण होता है।सत्य/असत्य
3. पष्ठ भाव में राहु या केतु हो तो दांतों में पीड़ा होती है। सत्य/असत्य
4. द्वितीयेश एवं बुध षष्ठ स्थान में राहु या केतु के साथ हों तो दन्त रोग होता है। सत्य/असत्य
5. बुध एवं द्वितीयेश से तालु का विचार किया जाता है। सत्य/असत्य

4.3.4 अन्य मुख रोगों के योग –

जिह्वा दन्त, तालु एवं वाणी सम्बन्धी विकारों के अलावा मुख में छाले होना, सूजन आना, बदबू आना आदि मुख• के अन्य रोग होते हैं। मुख• का विचार द्वितीय भाव, द्वितीयेश एवं बुध से किया जाता है। अतः यदि द्वितीयेश या बुध त्रिक स्थान में हो, लग्न में हो, पापग्रहों से युत या दृष्ट हो, द्वितीय भाव में पापग्रह हो तो मुख रोग होता है। छाले, घाव आदि का प्रतिनिधि ग्रह मंगल होता है। यदि मंगल का द्वितीयेश, बुध या द्वितीय भाव पर प्रभाव हो तो मुख में छाले होते हैं। गन्ध के प्रतिनिधि ग्रह चन्द्रमा एवं शुक्र होते हैं । यदि ये लग्न में हों तथा द्वितीयेश या बुध दुःस्थान में हो तो मुँह में बदबू आने का योग बनता है। जातक ग्रन्थों में विविध मुख रोगों के निम्नलिखित योग बतलाये गये हैं|

1. लग्नेश एवं मंगल बुध की राशि में हों तथा उनपर बुध की दृष्टि हो तो मुँह में छाले होते हैं।
2. षष्ठस्थान में राहु या केतु हो तो मुख रोग होता है।
3. द्वितीय त्रिक स्थान में हो तथा पापग्रह से युत या दृष्ट हो तो मुख• रोग होता है।
4. द्वितीय स्थान में पापग्रह हो तो मुख रोग होता है।
5. मंगल की राशि में बुध के साथ लग्नेश हो तो मुँह में छाले होते है।
6. द्वितीय स्थान में सूर्य एवं मंगल हों तो मुँह में छाले होते हैं।
7. गुरु या शुक्र षष्ठेश होकर लग्न में हो तथा उस पर क्रूर ग्रहों की दृष्टि हो तो मुँह में सूजन आ जाती है।
   लग्न में मेष राशि में चन्द्रमा हो तथा उस पर पापग्रहों की दृष्टि हो तो मुँह से बदबू आती है।
8. मेष लग्न में चन्द्रमा एवं शुक्र हो तथा पष्ठ स्थान में बुध हो तो मुँह से दुर्गन्ध आती है।
9. मेष या कर्क राशि में शुक्र हो तो मुख से दुर्गन्ध आती है ।
10. लग्न में चन्द्रमा हो तथा बुध षष्ठेश हो तो मुख से बदबू आती है।

बहुविकल्पीय प्रश्न –

1. मुख• का विचार किस भाव से किया जाता है –

   (क) प्रथम भाव (ख) तृतीय भाव

   (ग) द्वादश (घ) द्वितीय भाव घ

2. छाले, घाव आदि का प्रतिनिधि ग्रह होता है –

   (क) मंगल (ख) बुध

   (ग) सूर्य (घ) चन्द्र

3. गन्ध के प्रतिनिधि ग्रह होते हैं ।

   (क) सूर्य एवं शुक्र (ख) चन्द्रमा एवं शुक्र

   (ग) चन्द्रमा एवं गुरू (घ) चन्द्रमा एवं शनि

4. षष्ठस्थान में राहु या केतु हो तो होता है –

   (क) दन्त रोग (ख) जीव्हा रोग

   (ग) मुख रोग (घ) तालु रोग

5. द्वितीय स्थान में सूर्य एवं मंगल हों तो कौन सा रोग होता है–

(क) मुँह में छाले (ख) दन्त रोग

(ग) जीव्हा रोग (घ) तालु रोग

4.4 सारांश

मानव शरीर के विभिन्न अंगों में मुख वह अंग है, जिसके द्वारा हम जीवनोपयोगी भोजन तथा जल ग्रहण करते है। ज्योतिशास्त्र के अनुसार मुख का विचार मुख्य रूप से द्वितीय भाव से तथा गौण रूप से लग्न एवं पष्ठ भाव से किया जाता है। बुध इन रोगों का प्रतिनिधि ग्रह है तथा गुरु सहायक ग्रह माना गया है। कालपुरूष के विभिन्न अंगों में प्रतिनिधित्व वृष राशि करती है। अतः उक्त भाव, राशि तथा ग्रहों के पीडित होने पर मुख रोग होते है। जिव्हारोग, मूकत्व, हकलाहट, तुतलाहट, आदि वाग्विकार, दन्तरोग, तालु रोग आदि मुख से सम्बन्धित रोग है, जिनका विचार ज्योतिषशास्त्रीय ग्रन्थों में प्राप्त होता है। ज्योतिषशास्त्र के अनुसार जीभ में• छाले होना या जीभ का कट जाना आदि जिह्वा रोग, जन्म से ही गूँगा होना जन्मजात मुकत्व पूर्ण रूप से या सीमा से अधिक किसी को बोलने में असमथर्ता वाकबाधा, हकलाना तथा तुतलाना वाक् विकार, दंत क्षरण , कैन्सर, पायरिया आदि दन्त रोग, मुह के अन्दर उपरी भाग में होने वाले तालु रोग, मुंह के घाव सूजन आना, बदबू आना आदि मुख• के अन्य रोग होते हैं जिनके योग ज्योतिषशस्त्र के विभिन्न ग्रन्थों में प्रतिपादित किए गए है। इन सभी रोगों के विषय में तथा ज्योतिषीय योगों के विषय में आपने इस इकाई में विस्तार पूर्वक अध्ययन किया।

4.5 पारिभाषिक शब्दावली

वाग्विकार – वाणी से सम्बन्धित रोग

आक्रान्त – किसि के द्वारा गृहित

अटककर – रूक–रूक कर

दंत क्षरण – दांत का गिरना

गलकोष – तालु, मुख के अन्दर उपर वाल भाग

4.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अति लघूत्तरीय प्रश्न

1. वृष 2. द्वितीय भाव 3. जीभ के छाले 4. बुध 5. द्वितीयेश

लघूत्तरीय प्रश्न

1. 1. जन्मजात एवं 2. आगन्तुक।
2. बुध, चन्द्रमा एवं द्वितीय भाव पर शनि के प्रभाव से
3. आधन कुंडली द्वारा।

4. जन्म से 1 या 2 साल में।
5. जन्म के बाद किसी बीमारी या अन्य कारण से गूँगा होना।

सत्य असत्य प्रश्न

1. सत्य 2.सत्य 3. असत्य 4. सत्य 5.असत्य

बहुविकल्पीय प्रश्न –

1. घ 2. क 3. ख 4. ग 5. क

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची

- ज्योतिष शास्त्र में रोग विचार – प्रो0 शुकदेव चतुर्वेदी, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली 1984
- जातकांलकारः – श्रीगणेशदैवज्ञविरचित, डा. सुरेशचन्द्रमिश्रः, रंजन पब्लिकेशन्स 16, अन्सारी रोड, दरियागंज नई दिल्ली–110002, संशोध्ति संस्करण– 2009
- जातकपारिजातः –लेखक दैवज्ञवैद्यनाथ, व्याख्याकार प. कपिलेश्वरशास्त्राी, चौखम्बा संस्कृत संस्थान वाराणसी–2004।
- ताजिकनीलकण्ठी – नीलकण्ठविरचित, केदारदतदतजोशी, मोतीलाल–बनारसीदास बंगलो रोड, दिल्ली – 110007
- प्रश्नमार्गः – व्याख्याकार – प्रो. शुकदेव चतुर्वेदी, रंजन पब्लिकेशन दिल्ली, 1978
- फलदीपिका – मन्त्रोश्वरविरचित, व्याख्याकारः – गोपेशकुमार ओझा, मोतीलालबनारसीदास बंगलो रोड, दिल्ली – 110007 द्वितीय संस्करण– 1975 ।
- बृहज्जातकम् – वराहमिहिरविरचित, भट्टोत्पलीटीकासहित पं सीतारामझा सावित्राी ठाकुर प्रकाशन, रथयात्राा चौराहा वाराणसी सन् – 2006 ।
- बृहत्पाराशरहोराशास्त्राम् – पाराशर, प. पद्मननाभ शर्मा,चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी
- मानसागरी – व्याख्याकार – श्रीमध्ुकान्तझा, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी संस्करण – 2045 ।
- लघुजातकम् – वराहमिहिरविरचित, टीकाकार–कमलाकान्तपाण्डेय, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, प्रथम संस्करण – 2009।
- सारावली – कल्याणवर्माविरचित, डा. सुरकान्त झा, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी वाराणसी प्रथम संस्करण वि. सं.– 2061 ।

4.8 साहायक उपयोगी सामग्री

- उत्तरकालामृतम् – कालिदास, ज्योतिर्विद् जगन्नाथ भसीन, रंजन पब्लिकेषन्स 16, अन्सारी रोड, दरियागंज नई दिल्ली–110002, 2009।
- ग्रह और नक्षत्र – डा. बी.डी. अवस्थी, राजकमलप्रकाषन प्राइवेट लिमिटेड, फैजबाजार, दिल्ली।

- ज्योतिर्विज्ञानम् – श्रीधूलिपाल, सम्पूर्णानन्द संस्कृतविश्वविष्वविद्यालय वाराणसी –1806 ।
- लघुपाराशरी समीक्षा – प्रो. शुकदेव चतुर्वेदी, श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रिय– संस्कृतविद्यापीठ नव देहली –16 प्रथमसंस्करण –2005।

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. मुख के रोगों एवं प्रतिनिधि भाव, राशि तथा ग्रहों की विस्तृत व्याख्या कीजिए।
2. जिव्हा के रोग एवं उनके ज्योतिषीय योगों का वर्णन कीजिए।
3. मूकत्व के प्रकार एवं ग्रह योगों का प्रतिपादन कीजिए।
4. दन्त रोग एवं उनके ज्योतिषीय आधारों का वर्णन कीजिए।
5. तालु रोगों का वर्गीकरण कर उनके ग्रहयोग लिखिए।

इकाई 05– कर्ण रोग, नासिका रोग एवं गला रोग

इकाई की रूपरेखा –

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 मुख्य भाग –
1.3.1 उपखण्ड एक – जन्मजात एवं आगन्तुक कर्ण रोगों के योग
1.3.2 उपखण्ड दो – अन्य कर्णरोगों के योग
1.3.3 उपखण्ड तीन –नासिका रोगों योग
1.3.4 उपखण्ड चार – गले के रोग
5.4 सारांश
5.5 पारिभाषिक शब्दावली
5.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.7 सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची
5.8 साहायक उपयोगी सामग्री
5.9 निबन्धत्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

मानव व अन्य स्तनधारी प्राणियों मे कर्ण या कान श्रवण प्रणाली का मुख्य अंग है। कान वह अंग है जो ध्वनि का पता लगाता है, यह न केवल ध्वनि के लिए एक ग्राहक के रूप में कार्य करता है, अपितु शरीर के संतुलन और स्थिति के बोध में भी एक प्रमुख भूमिका निभाता है। श्रवण प्रणाली में किसि प्रकार का विकार कर्ण रोग कहलाता है।

कर्ण की भांति नासिका पंचज्ञानेन्द्रिय में से एक है। जिसका कार्य गन्ध ग्रहण करना तथा जीवनोपयोगी शुद्ध प्राणवायु ग्रहण करना है। नासिका में किसि प्रकार का दोष उत्पन्न हो जाने से व्यक्ति गन्ध ग्रहण करने में असमर्थ होता है, तथा शुद्ध प्राणवायु ग्रहण नहीं कर पाता जिसके परिणाम स्वरूप सम्पूर्ण शरीर में रोग होने की सम्भावना बढ़ जाती है।

कण्ठ मानव शरीर का वह भाग है, जिससे होते हुए जल, वायु तथा खाद्य पदार्थ शरीर में प्रवेश करते है। गले में रोग होने की स्थिति में उक्त पदार्थों को ग्रहण करने में कठिनाई होती है। इस प्रकार कान, नाक तथा कण्ठ में होने वाले रोगों के विषय में ज्ञान प्राप्त करना अत्यन्त आवश्यक है।

ज्योतिष शास्त्र में इन रोगों का विशद वर्णन किया गया है। ज्योतिष शास्त्र के अनुसार मानव शरीर के सम्पूर्ण अंगों के प्रतिनिधि नवग्रह, द्वादश राशियां तथा द्वादश भाव होते हैं। इन ग्रह राशि तथा भावों के सम्बन्ध से निर्मित योगों के द्वारा शरीर के अंग विशेष में होने वाले रोगों का ज्ञान किया जाता है। इस इकाई में कर्ण, नासिका तथा गले के रोगों का ज्योतिषशास्त्र के आधार पर सांगोपांग विवेचन किया गया है।

5.2 उद्देश्य –

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप –

1. जन्मजात कर्णरोग एवं अनके ज्योतिषीय योगों के विषय में ज्ञान प्राप्त करेंगे।
2. आगन्तुक कर्णरोगों के ज्योतीषीय योगों जान सकेंगे।
3. नासिका रोगों के ज्योतिषीय आधारों का वर्णन करनें में समर्थ होंगे।
4. गले के रोग एवं उससे सम्बन्धित रोगों का ज्ञान प्राप्त करेंगे।

5.3.1 जन्मजात तथा आगन्तुक कर्णरोग

कर्ण मानव शरीर का एक महत्त्वपूर्ण अंग है, जिसका कार्य ध्वनि ग्रहण करना तथा मानवीय कान के तीन भाग होते हैं– बाह्य कर्ण, मध्य कर्ण तथा आंतरिक कर्ण। बाहरी कान कर्णपाली से आवाज की तरंगें इकट्ठी करके कान के पर्दे तक पहुँचाती है।मध्य कान यूस्टेशियन ट्यूब द्वारा नाक की गुफा से जुड़ा रहता है। यह कान नाक और गले को जोड़ती है। आंतरिक कान या लैबरिंथ शंखनुमा संरचना होती है। इस शंख में द्रव भर रहता है।

यह आवाज के कम्पनों को तंत्रिकाओं के संकेतों में बदल देती है। ये संकेत आठवीं मस्तिष्क तंत्रिका द्वारा दिमाग तक पहुँचाती है।

इस श्रवण तन्त्र में किसि प्रकार का विकार उत्पन्न होना कर्ण रोग है। बहिःकर्ण में विद्रधि (फोड़ा), मध्यकर्ण की विद्रधि, कर्णमूल शोथ, बधिरता (टांसिल)कान बहना आदि सामान्य कर्ण रोग है।

ज्योतिष शास्त्र के अनुसार अन्य रोगों की भांति कर्णरोग भी प्रधानतया दो प्रकार के होते हैं –1 जन्मजात 2– आगन्तुक। जन्म से ही बहरा होना या अन्य सुनने से सम्बन्धित विकार जन्मजात कर्ण रोग है। जन्म के बाद बहरा होना, कम सुनाई देना, कान कटना, कान में दर्द होना या मवाद पड़ना आदि सब आगन्तुक कर्ण रोग होते हैं। ज्योतिषीय जातक ग्रंथों में उक्त सभी प्रकार के कर्णरोगों का विचार किया गया है। कान का प्रमुख प्रतिनिधि ग्रह शनि होता है। तथा बुध एवं शुक्र उसके सहायक ग्रह माने गये हैं । कुण्डली में तृतीय एवं एकादश भाव दोनों कानों के प्रतिनिधित्व करते हैं। तथा पंचम एवं नवम भाव उसके सहायक होते हैं। कुछ आचार्य द्वितीय भाव से ही आँख, कान, एवं गले का विचार करते हैं । इस प्रकार शनि बुध एवं शुक्र इन तीनों ग्रहों तथा द्वितीय, तृतीय, पंचम, नवम एवं एकादश भावों एवं उनके स्वामियों पर पाप प्रभाव से, उक्त ग्रह एवं उक्तभावों के स्वामियों के दुःस्थान में स्थित होने से अथवा इन सबके पापान्वित या निर्बल होने से कर्ण रोग होते हैं।

कर्ण रोगों का विचार करते समय इस बात पर विचार करना चाहिए कि आजकल जिस प्रकार मन्ददृष्टि वाला व्यत्तिफ उपनेत्र (चशमा) लगाकर दृष्टि दोष का समाधान कर लेता है, उसी प्रकार कम या ऊँचा सुनने वाला व्यक्ति भी सुनने का यन्त्र लगाकर स्पष्ट सुन सकता है। प्राचीन काल में इस प्रकार के साधनों के न होने से उनका विचार नहीं किया गया। किन्तु प्राचीन काल के महर्षियों एवं मनीषियों ने उपचार या साधन द्वारा उक्त रोगों के दूर हो जाने का उल्लख किया है। उसी के आधार पर कर्णरोगों के साध्य अथवा असाध्य होने का निर्णय करना चाहिए। यदि कर्णरोग कारक ग्रहों पर शुभ ग्रहों की दृष्टि हो? तो ये रोग चिकित्सा, उपचार या मशीन आदि के उपयोग से साध्य हो जाते हैं एसा विचार करना चाहिए। ज्योतिषशास्त्रीय ग्रन्थों के निम्नलिखत कर्णरोगों के योग प्राप्त होते है –

बहरापन

कान के रोगों में बहरापन मुख्य रोग है। ध्वनि ग्रहण करने में असमर्थता अथवा किसि प्रकार कठिनाई बहरापन कर्ण रोग है। व्यक्ति को सामान्य सुनने वाले व्यक्ति की तुलना–25 डेसिबल सुनने की सीमा रेखा (ध्वनि की तीव्रता को मापने के लिए इकाई) या दोनों कानों में सुनने में होने वाले क्षति को बधिरता कहा जाता है। श्रवण बाधित से पीड़ित व्यक्ति को सुनने में असमर्थता बहरापन हो सकता है। यदि व्यक्ति कुछ भी नहीं सुनता है, तो वह बहरेपन से पीड़ित हो सकता है। हल्के से लेकर गंभीर सुनने में होने

वाली परेशानी बहरापन के अन्तर्गत आते है। ज्योतिषशास्त्र में बहरापन से सम्बन्धित जन्मजात एवं आगन्तुक दो प्रकार के योग प्राप्त होते हैं।

जन्मजात बहिरापन एवं उसके योग

ज्योतिषशास्त्र के अनुसार जन्मजात भी हो सकता है तथा जन्म के बाद चोट अथवा किसि बिमारी के कारण में भी। होराग्रन्थों के अनुसार जन्मजात बहिरापन का विचार जन्मकुण्डली के द्वारा किया जाता है। जन्मकुण्डली में निम्नलिखित योगों में से कोई एक योग हो तो जातक जन्म से बहरा होता है –

1. पाप ग्रहों के साथ चन्द्रमा लग्न, तृतीय या एकादश भाव में हो तथा उस पर पापग्रहों की दृष्टि हो ।
2. पंचम एवं नवम भाव में पापग्रह हों और उन पर पाप ग्रहों की दृष्टि हो।
3. शनि से चतुर्थ में बुध तथा षष्ठेश त्रिक स्थान में हो।
4. रात्रि में जन्म हो, बुध षष्ठ भाव में तथा शुक्र दशम भाव में हो ।
5. पूर्णचन्द्र एवं शुक्र – ये दोनों अपने शत्रु ग्रहों के साथ हों।
6. षष्ठेश एवं बुध पर पाप ग्रहों की दृष्टि हो ।
7. षष्ठेश त्रिक स्थानों में हो तथा उन पर शनि की दृष्टि हो ।

आगन्तुक बहिरापन एवं उसके योग

कानों से सुनाई पड़ने की शक्ति का नष्ट हो जाना बहिरापन कहलाता है। कान के रोगों में बहिरापन मुख्य है। ज्योतिषशास्त्र में जन्म के बाद होने वाली बधिरता का विचार अनेक ग्रन्थों में किया गया है। जातक ग्रन्थों में बधिरता के सूचक अनेक योग बतलाये गये हैं। यहाँ उन ग्रह योगों का वर्णन किया जा रहा है, जिनमें उत्पन्न जातक जन्म के बाद बधिर हो जाता ह –

1. तृतीयेश पापग्रह एवं किसी शुष्क ग्रह
2. सूर्य, मंगल या शनि के साथ हो ।
3. तृतीयेश शुष्क ग्रह के साथ अपने शत्रु की राशि में हो।
4. शनि से चतुर्थ में बुध हो तथा षष्ठेश त्रिक स्थान में हो।
5. पूर्ण चन्द्रमा एवं शुक्र अपने शत्रु के साथ हो ।
6. षष्ठस्थान में बुध हो, दशम शुक्र हो तथा रात्रि में जन्म हो।
7. बुध एवं षष्ठेश पर पापग्रहों की दृष्टि हो।
8. तृतीय, एकादश एवं त्रिकोण स्थानों में पापग्रह हो तथा उन पर शुभ ग्रहों की दृष्टि न हो।
9. षष्ठेश त्रिकस्थान में हो तथा उस पर शनि की दृष्टि हो।

अति लघूत्तरीय प्रश्न –

1- मानवीय कान के कितने भाग होते हैं।

2- कान का प्रमुख प्रतिनिधि कौन सा ग्रह होता है।

3- कुण्डली में कौन से भाव दोनों कानों के प्रतिनिधित्व करते हैं।
4- कानों में सुनने में होने वाले क्षति को क्या कहा जाता है।
5. बुध एवं षष्ठेश पर किस की दृष्टि से कर्ण रोंग होता है।

5.3.2 अन्य कर्णरोगों के योग –

कम सुनाई देने के योग –कम सुनाई देना भी एक प्रकार का रोग है। यह किसी रोग के प्रभावश या वृद्धावस्था के कारण होता है। ज्योतिष शास्त्रा में इसके भी कुछ योग बतलाये गये हैं, जो इस प्रकार हैं –

1. बुध के साथ शुक्र द्वादश स्थान में हो तो बांये कान से कम सुनाई देता है।
2. नवम, एकादश, तृतीय एवं पंचम भाव में पापग्रह की दृष्टि न हो हो तथा उन पर शुभ ग्रहों की दृष्टि न हो।
3. द्वितीयेश एवं मंगलकृ ये दोनों लग्न में हों ।
4. मेष, वृष एवं कर्क राशियों को छोड़कर किसी भी अन्य राशि में लग्न में चन्द्रमा हो ।

कान कटने के योग –कुछ जातकों के कान लड़ाई–झगड़े या दुर्घटना में कट जाते हैं। कान कटने की यह घटना उन लोगों के जीवन में घटती है, जिनकी कुण्डली में निम्नलिखित योगों में से कोई एक योग हो –

1. सूर्य, शनि एवं चन्द्रमा तृतीय, पंचम, सप्तम या नवम स्थान में हो और उन पर शुभ ग्रहों की दृष्टि न हो।
2. चन्द्रमा से सप्तम में शनि हो तथा शुक्र एवं सूर्य दोनों लग्न में हों ।
3. नीच राशि में राहु के साथ शुक्र हो ।
4. कारकांश में केतु हो तथा उस पर पाप ग्रह की दृष्टि हो ।

कान में दर्द, मवाद पड़ना, बहना आदि के योग –

कान में दर्द होना, मवाद पड़ना, सड़ जाना एवं बहना आदि कर्णरोग कहलाते हैं। इन सब कर्ण रोगों का विचार मुख्यतया तृतीय भाव एवं तृतीयेश ग्रह पर पाप प्रभाव से किया जाता है। कुछ आचार्यों ने इन रोगों का विचार द्वितीय एवं एकादश भाव से भी किया है। जिस व्यत्तिफ की कुन्डली में अधेलिखित योगों में से कोई एक योग हो, उसके कान में कोई न कोई बीमारी होती है –

1. मंगल एवं गुलिक तृतीय भाव में हो तो कान में दर्द होता है।
2. तृतीय स्थान में पापग्रह हो तथा उस पर पापग्रह की दृष्टि हो तो कान में दर्द होता हैं।
3. तृतीयेश क्रूर ग्रहों की षष्ठ्यंश में हो तो कान खराब हो जाता है।
4. तृतीय भाव में शनि एवं गुलिक हो तो कान में मवाद पड़ जाता है।
5. लग्न में धनेश एवं मंगल हो कान से सम्बन्धित रोग होता है।
6. तृतीयेश की राशि का स्वामी जिस राशि तथा नवांश में हो उसका

स्वामी केन्द्र में हो और वह पाप ग्रह से दृष्ट या युत हो तो कर्णरोग होता है।

7. द्वितीय या द्वादश स्थान में शुक्र या मंगल हो तो कर्ण रोग होता है।
8. लाभेश पापग्रहों से दृष्ट एवं युक्त हो ता कर्ण रोग होता है।
9. तृतीय भाव में गुलिक के षष्ठ्यंष में मंगल हो कान में विकार होता है।

लघूत्तरीय प्रश्न –

1. कम सुनाई देने का कारण क्या है।
2. बुध के साथ शुक्र द्वादश स्थान में हो तो किस कान से कम सुनाई देता है।
3. किस स्थान में केतु होने तथा उस पर पाप ग्रह की दृष्टि से कर्ण रोग होता है। मंगल एवं गुलिक तृतीय भाव में हो तो कौन सा रोग होता है।
4. रोगों का विचार मुख्यतया तृतीय भाव एवं तृतीयेश ग्रह पर किसके प्रभाव से किया जाता है।

5.3.3 नासिका रोग एवं उसके योग –

नाक रीढ़धारी प्राणियों में पाया जाने वाला छिद्र है। इससे हवा शरीर में प्रवेश करती है जिसका उपयोग श्वसन क्रिया में होता है। नाक द्वारा सूँघकर किसी वस्तु की सुगंध को ज्ञात किया जा सकता है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के अनुसार नसिका के प्रमुख रोग निम्नलिखित है –

जुकाम – सबसे साधारण रोग जुकाम कहलाता है जो प्रत्येक व्यक्ति को ओर किसी–किसी को प्रत्येक दो या तीन महीने पर होता रहता है।

नकसीर – नकसीर का कारण नासासुरंगों में कहीं पर श्लेष्मल कला में व्रण (नसबमत) बनना होता है। इसमें कोई रक्तवाहिका फट जाती है। इसी से रक्त निकलता है। कभी–कभी रक्त की अधिक मात्रा निकलती है।

नासिका में अवरोध– मध्य फलक के टेढ़े होने अथवा पार्श्व में स्थित सीपी के समान अस्थियों (शुक्तिकायों) के बढ़ जाने से, नासारंध्रों में कभी–कभी अवरोध इतना बढ़ जाता है कि श्वास लेने में कठिनाई होती है।

ज्योतिषशास्त्र में नाक बहना, नाक से रक्त बहना, नाक कटना आदि नासिका के रोगों का विचार किया गया है। होराग्रन्थों के अनुसार चन्द्रमा एवं शुक्र जैसे जलीय ग्रह के होने से तथा लग्न या लग्नेश पर पापग्रहों का प्रभाव होने से नासा रोग होते हैं। ये रोग प्रायः प्राणघातक नहीं होते। अतः इन्हे क्षुद्र रोग माना गया है। जिस जातक की कुण्डली में अधेलिखित योगों में से कोई योग हो उसे किसी प्रकार का नासा रोग होता है –

1. मंगल, शुक्र एवं शनि ये तीनों एक स्थान में हो तो जातक को नाक बहने का रोग होता है।
2. पष्ठ स्थान में चन्द्रमा, अष्टम में शनि द्वादश में पापग्रह हो तथा

लग्नेश पापग्रह के नवांश में हो तो पीनस रोग होता है।

3. पष्ठ स्थान में शुक्र तथा लग्न में मंगल हो तो नाक कट जाती है।

सत्य/असत्य प्रश्न

1. नाक स्तनधारी प्राणियों में पाया जाने वाला छिद्र है। सत्य/असत्य
2. मंगल, शुक्र एवं शनि ये तीनों एक स्थान में हो तो जातक को नाक बहने का रोग होता है। सत्य/असत्य
3. नासा रोगों को क्षुद्र रोग माना गया है। सत्य/असत्य
4. तृतीय स्थान में शुक्र तथा लग्न में मंगल हो तो नाक कट जाती है। सत्य/असत्य

5.3.4 गले के रोग –

मानव शरीर में गला गर्दन के आगे के हिस्से को कहते हैं। मनुष्यों के गले में कई अंग होते हैं, जैसे – स्वरग्रंथि, श्वासनली, ग्रासनाल और कंठच्छद।

स्वरग्रन्थि – स्वरयंत्र अथवा स्वरग्रन्थि गले में मौजूद एक श्वसन अंग है जिसके प्रयोग से यह जीव भिन्न प्रकार की ध्वनियों में बोल पाते हैं। स्वरग्रंथि के अन्दर बहुत से स्वर–रज्जु (वोकल कार्ड) होते हैं। जब इन स्वर–रज्जुओं के ऊपर से हवा का तेज बहाव होता है तब इनकी कंपकंपी से अलग–अलग ध्वनियाँ पैदा होती है,

श्वास नलिका– मनुष्य, के शरीर में श्वास नलिकाया साँस की नली वह अंग है जो गले में स्थित स्वरयंत्र को फेफड़ों से जोड़ती है और मुंह से फेफड़ों तक हवा पहुँचाने के रास्ते का एक महत्वपूर्ण भाग है। श्वासनली की आन्तरिक सतह पर कुछ विशेष कोशिकाओं की परत होती है जिन से श्लेष्मा (उनबने) रिसता रहता है। साँस के साथ शरीर में प्रवेश हुए अधिकतर कीटाणु, धूल व अन्य हानिकारक कण इस श्लेष्मा से चिपक कर फँस जाते हैं और फेफड़ों तक नहीं पहुँच पाते। जिससे श्वास सम्बन्धि रोग होते है।

ग्रासनाल– ग्रासनाल या ग्रासनली लगभग 25 सेंटीमीटर लंबी एक संकरी पेशीय नली होती है जो मुख के पीछे गलकोष से आरंभ होती है, सीने से थोरेसिक डायफ्राम से गुजरती है और उदर स्थित हृदय द्वार पर जाकर समाप्त होती है। इसी नलिका से होकर भोजन आमाशय में पहुंच जाता है।

कंठच्छद– कंठच्छद कंठ (गले) के अन्दर पत्ती के आकार का एक प्रालम्ब (फ्लैप) है जो खाते समय खाए जा रहे पदार्थों को श्वास नलिका तथा फेफड़ों की ओर जाने से रोकती है। जब हम सांस लेते हैं तो यह खुल जाती है जिससे स्वरयंत्र में हवा जाने पाती है। जब हम कुछ निगल रहे होते हैं, तब यह बन्द हो जाती है जिससे श्वसन तंत्र में कोई अवांछित वस्तु

न जा सके।

इस प्रकार कण्ठ विभिन्न अंगों का संयोग है तथा शरीर के महत्त्वपूर्ण कार्यों का माध्यम है। चिकित्सा शास्त्र के अनुसार कण्ठ से सम्बन्धित रोग निम्नलिखित हैं –

कंठ संक्रमण – (लैरियेंगोट्राकियोब्रॉन्काइटिस) एक प्रकार का श्वसन संबंधी संक्रमण है जो ऊपरी वायु मार्ग (श्वसन तंत्र के) के जीवाणु संक्रमण द्वारा होता है। संक्रमण के चलते गले के भीतर सूजन हो जाती है। सूजन के कारण सामान्य श्वसन में बाधा उत्पन्न होती है तथा ''भौंकने वाली''खांसी, स्ट्रिडोर (तेज घरघराहट की ध्वनि), तथा स्वर बैठना, गला बैठना कंठ संक्रमण के मुख्य लक्षण हैं।

गलगण्ड– थायराइड ग्रंथि के आकार बढ़ने को घेंगा (गलगंड) रोग कहते है। थायराइड एक ग्रंथि होती है। जो तितली के आकार की होती है और गले में स्थित होती है। घेंगा (गलगंड) रोग आम तौर पर दर्दरहित रहता है। किंतु इस रोग में ग्रंथि का आकार बढ़ जाता है। तो व्यक्ति को सांस लेने में कठिनाई होने लगती है। इसके अलावा भोजन निगलने एव खांसी की समस्या उत्पन्न हो जाती है।घेंगा (गलगंड) रोग को अंग्रेजी में गोइटर के नाम से जाना जाता है। यह थायराइड ग्रंथि का असामान्य रूप से बढ़ने लगना। इससे गले में गठान उत्पन्न हो जाता है। यह रोग पुरुषो की अपेक्षा महिलाओं को अधिक होता है।

गले में सूजन– गले में सूजन गले के संक्रमण का लक्षण होता है। प्रदूषित एवं गन्दे जल या भोजन के सेवन से यह बीमारी हो सकती है। प्रदूषित वातावरण में साँस लेने से वायरस, और बैक्टेरिया के कारण भी गले में संक्रमण होता है। आयुर्वेद में रोग होने का कारण वात, पित्त कफ के असंतुलन को कहा गया है। जब शरीर में कफ और वात दूषित हो जाते हैं तब गले के संक्रमण की समस्या होती है।

होराग्रन्थों में गलगण्ड, गण्डमाला एवं गले के अन्य विकारों विषय में वर्णन प्राप्त होता है । ये रोग प्रायः सूर्य की दशा में शुक्र के अन्तर में या शुक्र की दशा में सूर्य के अन्तर में होते हैं। इन रोगों का विचार मुख्यतया तृतीय भाव से होता है। तृतीय स्थान में पापग्रह होने पर, तृतीयेश के पापग्रहों के साथ होने पर ये रोग होते हैं। ज्योतिषशास्त्रीय ग्रन्थों में इन रोगों के योग इस प्रकार हैं –

गलगण्ड एवं गण्डमाला के योग –निम्नलिखित योगों में उत्पन्न व्यक्ति को गलगण्ड या गण्डमाला रोग होता है–

1. सूर्य की महादशा में शुक्र की अन्तर्दशा हो ।
2. शुक्र की महादशा में सूर्य की अन्तर्दशा हो ।
3. सूर्य के साथ लग्नेश त्रिक् स्थान में हो।
4. सूर्य एवं मंगल षष्ठ या द्वादश स्थान में हो तथा उन पर शुभ ग्रहों

की दृष्टि न हो।

5. चन्द्रमा के साथ लग्नेश त्रिक स्थान में हो तो जलज गण्ड होता है।
6. लग्नेश, षष्ठेश एवं चन्द्रमा– ये तीनों त्रिक स्थान में हों तो जलज गण्ड होता हैं।
7. लग्न में मकर का नवांश हो और उस पर पाप ग्रहों की दृष्टि हो तो गले में गांठ होती है।

गले के अन्य रोगों के योग

अधेलिखित योगों में से किसी भी एक योग में उत्पन्न जातक के गले में रोग होता है–

1. तृतीय भाव में नीच राशिगत, शत्रु राशिगत या अस्तंगत ग्रह हो तथा उसे पाप ग्रह देखता हो तो कण्ठ में रोग होता है ।
2. तृतीय भाव में पापग्रह हो तथा वह गुलिक आदि के साथ हो तो कण्ठ में रोग होता है।
3. केन्द्र या त्रिकोण में राहु या केतु हो तो कण्ठ में रोग होता है ।
4. तृतीयेश बुध के साथ हो तो कण्ठ में रोग होता है ।
5. चन्द्रमा चतुर्थ भाव में चतुर्थभाव के नवांश के स्वामी एवं पापग्रह के साथ हो तो कण्ठ में रोग होता है ।

गले के रोग से मृत्यु का योग –जातक ग्रन्थों में अष्टम स्थान को आयु का स्थान माना गया है। यदि इस स्थान में नीच राशि गत गुरु स्थित हो तो गले के रोग से या गला घुट जाने से मृत्यु होती है।

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. निम्न में से कौन सा अंग गले में नहीं होता –

   (क) स्वरग्रंथि (ख) कंठच्छद

   (ग) तालु (घ) श्वासनली

2. थायराइड ग्रंथि के आकार बढ़ना रोग है –

   (क) गलगंड (ख) श्वास रोग

   (ग) हृदयघात (घ) शूल रोग

3. चन्द्रमा के साथ लग्नेश त्रिक स्थान में हो तो कौन सा गण्ड होता है।

   (क) जलज (ख) वातज

   (ग) पित्तज (घ) कफज

4. इन रोगों का विचार मुख्यतया किस भाव से होता है।

(क) द्वितीय (ख) तृतीय

(ग) चतुर्थ (घ) सप्तम

5. कण्ठ रोग प्रायः किस ग्रह की दशा–अन्तर्दशा में होते हैं।

(क) सूर्य एवं शुक्र (ख) सूर्य एवं बुध

(ग) सूर्य एवं मंगल (घ) मंगल एवं शुक्र

5.4 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद यह निष्कर्ष निकलता है कि, कान नाक एवं गला मानव शरीर के महत्त्वपूर्ण अंग है। कान का कार्य ध्वनि ग्रहण कर उसे मस्तिष्क तक पहुंचाना, नाक का कार्य स्वच्छ प्राणवायु शरीर में पहुंचाना एवं गन्ध ग्रहण करना तथा गले का कार्य श्वास नली, भोजननली आदि अंगों के मध्य समन्वय स्थापित करना। बहारापन, कम सुनाई देना, कान में दर्द, मवाद पड़ना, बहना आदि प्रमुख कर्ण रोग है, जिनका वर्णन होराग्रन्थों में प्राप्त होता है। कान का प्रतिनिधि ग्रह शनि है, तथा बुध एवं शुक्र उसके सहायक ग्रह हैं । तृतीय एवं एकादश भाव दोनों कानों के प्रतिनिधित्व करते हैं। तथा पंचम एवं नवम भाव उसके सहायक होते हैं। जुकाम नकसीर, नासिका में अवरोध आदि प्रमुख नासिका रोग है। होराग्रन्थों के अनुसार चन्द्रमा एवं शुक्र तथा लग्न या लग्नेश पर पापग्रहों का प्रभाव होने से नासा रोग होते हैं। कंठ संक्रमण गलगण्ड गले में सूजन गलगण्ड एवं गण्डमाला गले के रोग है। इन रोगों का विचार मुख्यतया तृतीय भाव से होता है। उक्त रोगों के अनेक योग ज्योतिषशास्त्रीय ग्रन्थों में प्राप्त होते है, जिनका अध्ययन आपने इस इकाई मे किया।

5.5 पारिभाषिक शब्दावली

स्तनधारी – बच्चे पैदा करने वाले जीव, जो अपने बच्चों को स्तनपान करवाते हैं।

ध्वनि – आवाज

संगोंपांग – अंगों तथा उपांगों सहित

विद्रधि – रक्त विकार, फोड़ा

डेसिबल – ध्वनि की तीव्रता को मापने के लिए इकाई।

रीढ़धारी – वह प्राणी जिनमें रीड की हड्‌डी होती है।

स्वर–रज्जु – आवाज सूत्र

5.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अतिलघूत्तरीय प्रश्न –

1. तीन 2. शनि 3. तृतीय एवं एकादश 4. बधिरता 5. पापग्रहों की दृष्टि से

लघूत्तरीय प्रश्न –

1. पाप ग्रहों के प्रभाव से
2. बांये कान से
3. कारकांश कुण्डली में
4. कान में दर्द का रोग
5. रोग के प्रभावश वृद्धावस्था

सत्य/असत्य प्रश्न

1. असत्य 2. सत्य 3. सत्य 4. असत्य

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. (ग) 2. (क) 3. (क) 4. (ख) 5. (क)

5.7 सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची

- ज्योतिष शास्त्र में रोग विचार – प्रो0 शुकदेव चतुर्वेदी, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली 1984
- जातकांलकारः – श्रीगणेशदैवज्ञविरचित, डा. सुरेशचन्द्रमिश्रः, रंजन पब्लिकेशन्स 16, अन्सारी रोड, दरियागंज नई दिल्ली–110002, संशोध्ति संस्करण– 2009
- जातकपारिजातः –लेखक दैवज्ञवैद्यनाथ, व्याख्याकार प. कपिलेश्वरशास्त्राी, चौखम्बा संस्कृत संस्थान वाराणसी–2004।
- ताजिकनीलकण्ठी – नीलकण्ठविरचित, केदारदतदतजोशी, मोतीलाल–बनारसीदास बंगलो रोड, दिल्ली – 110007
- प्रश्नमार्गः – व्याख्याकार – प्रो. शुकदेव चतुर्वेदी, रंजन पब्लिकेशन दिल्ली, 1978
- फलदीपिका – मन्त्रोश्वरविरचित, व्याख्याकारः – गोपेशकुमार ओझा, मोतीलालबनारसीदास बंगलो रोड, दिल्ली – 110007 द्वितीय संस्करण– 1975 ।
- बृहज्जातकम् – वराहमिहिरविरचित, भट्टोत्पलीटीकासहित पं सीतारामझा सावित्राी ठाकुर प्रकाशन, रथयात्राा चौराहा वाराणसी सन् – 2006 ।
- बृहत्पाराशरहोराशास्त्राम् – पाराशर, प. पद्मननाभ शर्मा,चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी
- मानसागरी – व्याख्याकार – श्रीमध्ुकान्तझा, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी संस्करण – 2045 ।
- लघुजातकम् – वराहमिहिरविरचित, टीकाकार–कमलाकान्तपाण्डेय, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, प्रथम संस्करण – 2009।

- सारावली – कल्याणवर्माविरचित, डा. सुरकान्त झा, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी वाराणसी प्रथम संस्करण वि. सं.– 2061 ।

5.8 साहायक उपयोगी सामग्री

- उत्तरकालामृतम् – कालिदास, ज्योतिर्विद् जगन्नाथ भसीन, रंजन पब्लिकेषन्स 16, अन्सारी रोड, दरियागंज नई दिल्ली–110002, 2009।
- ग्रह और नक्षत्र – डा. बी.डी. अवस्थी, राजकमलप्रकाषन प्राइवेट लिमिटेड, फैजबाजार, दिल्ली।
- ज्योतिर्विज्ञानम् – श्रीधूलिपाल, सम्पूर्णानन्द संस्कृतविश्वविष्वविद्यालय वाराणसी –1806 ।
- लघुपाराशरीसमीक्षा – प्रो. शुकदेव चतुर्वेदी, श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रिय– संस्कृतविद्यापीठ नव देहली –16 प्रथमसंस्करण –2005।

5.9 निबन्धत्मक प्रश्न

1. जन्मजात कर्ण रोगों की विस्तार से चर्चा कीजिए।
2. आगन्तुक कर्ण रोग एवं उनके ज्योतिषीय योगों का वर्णन कीजिए।
3. नासा रोग एवं ज्योतिष में वर्णित उनके ग्रहयोगों को प्रतिपादित कीजिए।
4. कर्णरोगों एवं उनके ज्योतिषीय आधारों पर प्रकाश डालिए।

खण्ड - द्वितीय
मध्यम अंग विचार

इकाई -01हृदय-रोग

इकाई की संरचना-

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 हृदय रोग
1.3.1ज्योतिष शास्त्र का संक्षिप्त परिचय एवं महत्व
ज्योतिष शास्त्रानुसार रोगविचार 1.3.2
1.3.2 ज्योतिषशास्त्र में हृदय रोग के कारक-
1.4 हृदयद एवं उनके प्रमुख ज्योतिषशास्त्रीय योगरोग के भे-
ज्योतिषशास्त्रानुसार हृदय रोग का निदान एवं उपचार 1.4.1
1.5 सारांश
1.6 पारिभाषिक शब्दाबली
1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची
1.9 सहायक पाठ्यसामग्री
1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना-

प्रस्तुत इकाई का शीर्षक **"हृदय रोग"** है। आप लोगो कीज्योतिषशास्त्र में रुचि है यह मेरा विश्वास है इसी कारण आप ज्योतिषशास्त्र के इस पाठ्यक्रम को पढ रहे हैं। ज्योतिष शास्त्र एक प्रत्यक्ष शास्त्र है जो कि समाज के प्रत्येक व्यक्ति के लिए आदि काल से ही अत्यंत उपयोगी रहा है। ज्योतिष शास्त्र के द्वारा काल ज्ञान, विभिन्न मुहूर्त, शुभाशुभ सूचनाओं, विभिन्न रोगों का परिज्ञान एवं ज्योतिष शास्त्र द्वारा उनका निराकरण किया जाता है। हम सभी जानते हैं की शरीर का सम्पूर्ण रूप से स्वस्थ रहना अत्यंत आवश्यक होता है क्योंकि मानव अपने जीवन में यश, कीर्ति, धार्मिक आदिक्रिया कलापों का सम्पादन, लेखन -पठन, सामाजिक उत्थान आदि के कार्य एवं अंत में मोक्ष प्राप्ति के लिए किए जाने वाले कार्य अपने शरीर के माध्यम से ही पूर्ण करता है। कहा भी गया है कि **'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्'** यह वाक्य हमें अपने जीवन में शरीर के महत्व को बतलाता है। अर्थात स्वस्थ शरीर के माध्यम से ही व्यक्ति अपने जीवन में परमोत्कर्ष को प्राप्त करने में सफल होता है। मानव अपने जीवन की समस्त क्रियाओं का सम्पादन पूर्ण स्वस्थ शरीर के माध्यम से ही करता है। इस शरीर में कई रोग भी उत्पन्न होते हैं कहा भी जाता है कि **"शरीरं व्याधिमन्दिरं"**अर्थात मानव शरीर रोगों का स्थान माना जाता है। शरीर में विद्यमान विभिन्न रोगों में से एक महत्वपूर्ण एवं गंभीर रोग हृदय रोग भी होता है। क्योंकि इस हृदय के माध्यम से ही हमारा शरीर क्रियाशील रहता है यदि हृदय कार्य करना बंद कर दे तो अन्य सभी अंग भी स्वतः ही बन्द हो जाते हैं अतः शरीर में हृदय का स्वस्थ रहना बहुत आवश्यक होता है। इसी हृदय रोग के विभिन्न ज्योतिषीय कारण एवं उनके ज्योतिष के आधार पर समाधान के बारे में हम प्रस्तुत इकाई में अध्ययन करेंगे।

1.2 उद्देश्य –

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- ❖ ज्योतिष शास्त्र का सामान्य परिचय प्राप्त करेंगे एवं ज्योतिष शास्त्र के महत्व से अवगत होंगे।
- ❖ ज्योतिष शास्त्र में रोग ज्ञान के मुख्य सूत्रों से अवगत होंगे।
- ❖ ज्योतिष शास्त्र में रोग कारक तत्वों को जान पाएंगे।
- ❖ हृदय रोग के कारक एवं ज्योतिष शास्त्रानुसार हृदय रोग के भेद से अवगत हो पाएंगे।
- ❖ ज्योतिष शास्त्र में वर्णित प्रमुख हृदय रोग संबंधी योगों के बारे में जानेंगे।
- ❖ ज्योतिष शास्त्रानुसार हृदय रोग के निदान एवं उपचार के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।

1.2 हृदय रोग –

हृदय शरीर का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। चिकित्सा शास्त्र के अनुसार हृदय के बारे में जाने तो मानवों में यह छाती के मध्य में, थोड़ी सी बाईं ओर स्थित होता है और एक दिन में लगभग एक लाख बार एवं एक मिनट में बार धड़कता है। यह हर धड़कन के साथ शरीर में रक्त को 90-60 हृदय को पोषण एवं ऑक्सीजन धकेलता रहता है।, रक्त के द्वारा मिलता है जो कोरोनरी धमनियों द्वारा प्रदान किया जाता है। यह अंग दो भागों में विभाजित होता है, दायां एवं बायां।

हृदय के दाहिने एवं बाएं, प्रत्येक ओर दो चैम्बर होते हैं। कुल (एट्रिअम एवं वेंट्रिकल नाम के) दय में चार चैम्बर होते हैं। दाहिना भाग शरीर से दूषित रक्त प्राप्त करता है एवं उसे मिलाकर ह फेफडों में पम्प करता है और रक्त फेफडों में शोधित होकर हृदय के बाएं भाग में वापस लौटता है जहां से वह शरीर में वापस पम्प कर दिया जाता है। चार वॉल्व, दो बाईं ओर मिट्रल एवं) रक्त के बहाव को निर्देशित (पल्मोनरी एवं ट्राइक्यूस्पिड) एवं दो हृदय की दाईं ओर (टिंकएओ दिशा के द्वार की तरह कार-करने के लिए एक्ाय करते हैं।)Internet)

आजकल की भागदौड़ भरी और अव्यवस्थित जीवनशैली में खुद को स्वस्थ रखना सबसे बड़ी चुनौती है। दूसरों से आगे निकलने की होड़ में मानव के खाने-पीने, सोने-जागने और उठने-बैठने का पूरा क्रम बिगड़ गया है, लेकिन वे यह नहीं जानते कि इसका कितना घातक परिणाम हो सकता है। जिस परिवार को सुख देने के लिए जो दिनरात पैसा कमाने में जुटे हुए हैं, एक दिन अचानक कहीं कोई ऐसी घटना न हो जाए कि सब धरा का धरा रह जाए। ऐसे कई सर्वे आ चुके हैं जिनके अनुसार लाइफ स्टाइल बीमारियों में डायबिटीज और हृदयरोग सबसे ऊपर है। दुनिया में हर दिन सैकड़ों लोग हृदय संबंधी बीमारियों के चलते मौत की नींद सो जाते हैं। ज्योतिष शास्त्र के अनुसार भी ग्रहों की स्थिति आदि के माध्यम से हृदय रोग संबंधी विचार किए गए हैं जिन्हें हम प्रस्तुत इकाई के माध्यम से हृदय रोग से संबन्धित एवं उसके कारण को विस्तृत रूप से जानने का प्रयास करेंगे -

1.3.1-ज्योतिष शास्त्र का संक्षिप्त परिचय एवं महत्व–

ज्ञान के आदि स्तोत्ररुपी वेदपुरुषके विशालकाय शरीर में **‘वेदचक्षुः किलेदं स्मृतं ज्यौतिषम्’** (सिद्धान्तशिरोमणि, काल० ११) इत्यादि कथनों के द्वारा ज्योतिषशास्त्र नेत्ररुप में परिलक्षित है ।सामान्य अर्थ में ज्योतिषशास्त्र को ग्रह – नक्षत्रों की गति, स्थिति एवं फल से सम्बन्धित शास्त्र कहा जाता है, जैसा कि नृसिंहदैवज्ञ ने भी कहा है।

‘ज्योतींषि ग्रहनक्षत्राण्यधिकृत्य कृतो ग्रन्थो ज्योतिषम्।’

ग्रह-नक्षत्रों के द्वारा हमें काल का ज्ञान होता है एवं इस चराचर जगत् में सबसे अधिक शाश्वत एवं गतिशील वस्तु काल ही है ।इसी के कारण संसार के सभी क्रियाकलाप संपादित होते है ।काल के अनुसार ही प्राणिमात्र का जन्म एवं कालानुरोध से ही अन्त होता है, जैसा कि वर्णन भी प्राप्त है – **‘कालः सृजति भूतानि कालः संहरते प्रजाः ।’** हमारी भारतीय संस्कृति में वेदविहित यज्ञादि शुभ कार्यों की समग्र व्यवस्था वेदांग शास्त्रों के माध्यम से सम्पादित होती है, जिसमें यज्ञादि कार्यों की सफलता शुभ कालाधीन तथा शुभ कालज्ञान की व्यवस्था ज्योतिषशास्त्राधीन होने से ही इसे वेदपुरुष के नेत्ररुप में प्रतिष्ठित किया गया है -

वेदास्तावद्यज्ञकर्मप्रवृत्ताः यज्ञाः प्रोक्तास्ते तु कालाश्रयेण।।
शास्त्रादस्मात् कालबोधो यतः स्याद्वेदाङ्गत्वं ज्योतिषस्योक्तमस्मात्।।

(सिद्धान्त शिरोमणि,मध्यमाधिकारश्लोक संख्या 09)

अतः ज्योतिषशास्त्र की सार्वभौम उपयोगिता तथा महत्ता स्वयं ही सिद्ध होती है ।वर्तमान विज्ञान के गणित आदि प्रायः सभी विषय बीजस्वरूप ज्योतिषशास्त्र में अन्तर्निहित हैं ।भारतीय परम्परा के अनुसार इस प्राचीन वैज्ञानिक शास्त्र की उत्पत्ति ब्रह्माजी के द्वारा हुई है ।ऐसा माना जाता है कि ब्रह्माजी ने सर्वप्रथम नारदजी को ज्योतिषशास्त्रका ज्ञान प्रदान किया तथा नारदजी ने इस लोक में ज्योतिषशास्त्र का प्रचार-प्रसार किया ।मतान्तर से ऐसा भी स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है कि इस

शास्त्र का ज्ञान भगवान् सूर्य ने मयासुर को प्रदान किया ।आचार्य कश्यप के अनुसार अठारह आचार्यों (ऋषियों/ भगवान) को ज्योतिषशास्त्र का प्रवर्तक माना जाता है –

सूर्यः पितामहो व्यासो वसिष्ठोऽत्रिः पराशरः
कश्यपो नारदो गर्गो मरिचिर्मनुरंगिराः ।
रोमशः पौलिशाश्चैव च्यवानो यवनो भृगुः
शौनेको ऽआष्टादशाश्चैते ज्योतिः शास्त्रप्रवर्तकाः ॥

(गणकतरंगिणी पृष्ठ संख्या 02)

ज्योतिषशास्त्र के भेद– ज्योतिषशास्त्र के सिद्धांत – संहिता –होरारुपी तीन विभाग प्राचीनकाल से आचार्यों ने उपस्थापित किये है ।वराहमिहिर ने **'ज्योतिषशास्त्रमनेकभेदविषयं स्कन्धत्रयाधिष्ठितम्'**कहते हुए स्कन्द त्रयात्मक ज्योतिषशास्त्र को अनेक भेदों से युक्त माना है ।कुछ आचार्यों ने केरलि एवं शकुन का पृथक ग्रहण करते हुए इस शास्त्र को पंचस्कंधात्मक माना है ।

पञ्चस्कंधमिदं शास्त्रं होरागणित संहिताः ।
केरलिः शकुनश्चैव ज्योतिः शास्त्रमुदीरितम् ॥

(ज्योतिर्निबंधावली पृष्ठ संख्या 84)

परन्तु केरलि एवं शकुन का भी होरा एवं संहिता स्कन्ध के अंतर्गत ही सन्निवेश होने के कारण मुख्यतया उसके तीन ही विभाग परंपरा में प्राप्त होते है ।इसके अतिरिक्त विषय-विभाजन की दृष्टि से कुछ आचार्यों ने इसके छः अंगो की भी चर्चा की है, परन्तु वस्तुतः सिद्धांत,संहिता, होरा स्कन्द के अंतर्गत ही ज्योतिष के सभी विषय समाहित होते है अतः प्राचीन काल से लेकर अर्वाचीन काल तक के आचार्यों ने ज्योतिष के तीन स्कन्धों को ही परिगणित किया है |

भारतीय दर्शन में 'कर्मवाद' का महत्वपूर्ण स्थान है । जिसके अनुसार संसार में प्राणी अनवरत कर्म में ही निरत रहता है । वह चाह कर भी इससे अलग नहीं हो सकता है । कर्म करने पर उसका फल अवश्य ही भोगना पड़ता है । आत्मा अजर एवं अमर है परन्तु कर्मबन्धन के फलस्वरूप उसे पुनर्जन्म लेना पड़ता है । कर्मबन्धन से मुक्ति केवल तभी मिल सकती है जब मनुष्य को आत्मज्ञान या ब्रह्मज्ञान हो जाता है । प्राणी के शुभाशुभकर्मों का फल उसे वर्तमान जीवन में कब, कहाँ और किस रूप में प्राप्त होगा, इत्यादि समस्त जिज्ञासाओं का उत्तर जानने का एकमात्र उपकरण ज्योतिषशास्त्र है । इसका मुख्यकार्य ग्रहनक्षत्रों की गतिस्थित्यनुसार कुण्डली निर्माण कर जातक के जीवन में आने वाले सुख दुःखादि का अनुमान कर उसे अपने कर्तव्यों द्वारा अपने अनुकूल बनाने के लिए प्रेरित करना है । यही प्रेरणा मानव के लिए दुःखो को दूर करने का कार्य करती है एवं पुरुषार्थसाधक होती है ।

1.3.2 ज्योतिष शास्त्रानुसार रोगविचार -

मानव-जीवन के साथ ही रोग का इतिहास भी आरम्भ होता है । रोगों से रक्षा हेतु मनुष्य ने प्रारम्भ से ही प्रयत्न करना प्रारम्भ कर दिया तथा आजतक इसके निदान एवं उपचार हेतु वह प्रयत्न कर रहा है । जब हैजा, प्लेग, टी०बी० आदि संक्रामक रोगों से ग्रस्त होकर इनसे छुटकारा पाने के लिये विविध प्रकार का अन्वेषण हुआ तो कालान्तर में पुनः कैंसर, एड्स, डेंगू-सदृश अनेक रोग उत्पन्न हो गये, जिनके समाधान एवं उपाय हेतु आज समस्त विश्व प्रयत्नशील है । विडम्बना है कि मनुष्य जितना ही प्राकृतिक रहस्यों को खोजने का प्रयास करता है, प्रकृति उतना ही अपना

विस्तार व्यापक करती जाती है, जिसके समाधान के समस्त उपाय विश्व के लिये नगण्य पड़ जाते हैं, इसमें मानव का असदाचार ही मुख्य हमारे प्राचीन ऋषियों ने जहाँ अणुवाद, परमाणुवाद को व्याख्यायित किया, अध्यात्म की गहराइयों में गोता लगाया, सांख्य के प्रकृति एवं पुरुष से सृष्टिप्रक्रिया को जोड़ा, वहीं आकाशीय ग्रह-नक्षत्रों को बाँस की कमाची (पट्टी)से कोसों दूर धरती पर बैठकर वेधित किया तथा उनके धरती पर पड़ने वाले शुभाशुभ प्रभावों को मानव जीवन के साथ जोड़कर व्याख्यायित किया । विश्व के सर्वप्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेद से रोगों का परिज्ञान आरम्भ हो जाता है, जिसमें पाण्डुरोग, हृदयरोग, उदररोग एवं नेत्ररोगों की चर्चा प्राप्त होती है। पौराणिक कथाओं में तो विविध प्रकार के रोगों की चर्चा एवं उपचार के लिये औषधि, मन्त्र, एवं तन्त्र आदि का प्रयोग प्राप्त होता है । आर्षपरम्परा में तो रोगों के विनिश्चयार्थ ज्योतिषशास्त्रीय ग्रहयोगों सहित आयुर्वेदीय परम्परा का विकास सर्वतोभावेन दर्शनीय है।

आयुर्वेद में कर्मप्रकोप एवं दोषप्रकोप को रोगोत्पत्ति का कारण माना गया हैं। आचार्य कल्हण के अनुसार सामान्यतया मिथ्या आहार एवं विहार से रोग उत्पन्न होते है। किन्तु जब मनुष्य ऋतु के अनुसार आहार विहार करता हो, सद्वृत्ति का सेवन करता हो एवं रोगोत्पत्ति का मौसम भी न हो और अचानक रोग उत्पन्न हो जाय तो उस रोग को कर्मजन्य रोग मानना चाहिए ।यथा कहा है कि –

"कर्मजा व्याधयः केचित् दोषजाःसन्ति चापरे"

(चरकसंहिता उत्तरतन्त्र अध्याय 40)

वास्तविकता यह है कि आहार-विहार भी एक प्रकार का कर्म ही है, जिसके मिथ्यायोग से रोग उत्पन्न होते हैं। शास्त्रों में कर्म के तीन भेद माने गये हैं--१. संचित २. प्रारब्ध एवं ३-क्रियमाण। आयुर्वेद में कर्मजन्य रोगों का कारण जो कर्म माना गया है, वह संचित कर्म है जिसके एक भाग को प्रारब्ध या दैव कहा गया है। तथा मिथ्या आहार-विहार आदि क्रियमाण कर्म हैं। इस प्रकार कर्म प्रकोप एवं दोष प्रकोप दोनों के मूल में अशुभ या अनुकर्म ही एक मात्र हेतु प्रतीत होता है। इसीलिए ज्योतिष शास्त्र के आचार्यो ने मनुष्य के पूर्वार्जित कर्म या जन्मान्तर में विहित पाप को रोग का कारण माना है, यथा-

जन्मान्तरकृतं पापं व्याधिरूपेण ज्ञायते।

(प्रश्न मार्ग १३।२६ ।)

हम यदि रोग के ज्योतिषीय आधार पर विचार करें तो हमसभी जानते हैं कि सारा ब्रह्मांड पंच महाभूतों का बना है। इन्हीं पंच महाभूतों से मानव शरीर की रचना होती है। शरीर में तीन धातुओं कफ, पित्त और वायु का समावेश है जिनके असंतुलन से हम रोगग्रस्त और संतुलन से स्वस्थ होते हैं।

ज्योतिषशास्त्र में रोग का विचार करने के लिए मुख्य तीन तत्व प्रधान होते हैं 1- ग्रह 2- राशि एवं 3 – भाव। इनकी प्रकृति, परस्पर स्थिति आदि के द्वारा ही रोग आदि का विचार किया जाता है। वस्तुतः सूर्य, चंद्रादि ग्रहों का प्रभाव भूमंडल के सभी जीवों, वनस्पतियों, पेड़-पौधों तथा जड़ और चेतन पदार्थों पर पड़ता है। उसी प्रकार, विभिन्न नक्षत्रों और अग्नि, वायु, जल तथा पृथ्वी तत्व राशियों का प्रभाव भी उनके गुणानुसार समस्त भूमंडल पर पड़ता है। ज्योतिष का उक्त सभी तत्वों से गहरा संबंध है अतः इसके सिद्धांतों के विश्लेषण से विभिन्न शारीरिक और मानसिक रोगों का पूर्वानुमान, उनकी पहचान तथा समय रहते उनका निदान संभव है।

ज्योतिष शास्त्र के अनुसार जन्मकुंडली के षष्ठ स्थान , व्यय (द्वादश) तथा अष्टम स्थान में स्थित ग्रह और इन भावों के स्वामी, षष्ठेश (रोगेश) ग्रहसे युक्त या दृष्ट ग्रह एवं भावसे रोग का विचार किया जाता है । इसके अतिरिक्त पाप-प्रभाव-युक्त राशियाँ एवं भाव, नीच-राशि-गत अस्तं गत ग्रह तथा निर्बल ग्रह, लग्न और लग्नेश ग्रह, अवरोही ग्रह, मारक ग्रह एवं बालारिष्ठ कारक ग्रह भी रोगों के कारक माने गये हैं । इन ग्रहों के शुभाशुभत्व एवं बलाबलत्व के आधार पर रोग तथा रोगी की प्रकृति, प्रभाव और उसकी अवधि का निर्धारण किया जाता है । साथ ही साथ रोग के साध्यत्व या असाध्यत्व का निर्णय किया जाता है । वस्तुतः ग्रह फलाफल के नियामक नहीं होते हैं, किन्तु सूचक होते है अर्थात् ग्रह किसी को सुख- दुःख नहीं देते हैं, अपितु आने-वाले सुख-दुःख की सूचना भी देते हैं । वस्तुतः ग्रह अपनी गति, स्थिति एवं युति के द्वारा यह व्यक्त करते हैं कि उनकी रश्मियों का प्रभाव किस प्रकार का वातावरण तैयार कर रहा है । यद्यपि ग्रह-रश्मियों का हम पर सतत् एवं सुनिश्चित प्रभाव पड़ता है । रोग परिज्ञान के संदर्भ में हम यदि तीनों तत्वों को विस्तृत रूप से समझने का प्रयास करें तो निश्चित ही हम उनके माध्यम से होने वाले रोग आदि का निर्णय कर सकते हैं ।

ग्रह-राशि एवं भावों का रोगकारक होने के कारण - ज्योतिष शास्त्र में ग्रह राशि एवं भाव किन परिस्थितियों में रोग कारक होते हैं इसका विचार हम इनकी कुंडली में स्थिति के अनुसार कर सकते है । सर्वप्रथम ग्रह के रोगकारक होने की स्थिति को हम निम्न प्रकार से समझ सकते हैं –

1- रोग भाव त षष्ठेश होना ।का प्रतिनिधित्व अर्था (षष्ठ भाव)
2- अष्टमेश या द्वादशेश होना या इनका प्रतिनिधित्व ।
3- रोग भावों में ग्रहों की स्थिति होना ।
4- लग्नेश होना या लग्न में रहना ।
5- ग्रहों का निर्बल होना अर्थात नीच राशि में होना , शत्रु राशि में होना ।
6- पाप ग्रहों से प्रभावित होना ।
7- मारकेश होना ।
8- अरिष्ट कारक होना ।

इसी प्रकार मेषादि द्वादश राशि एवं द्वादश भाव के रोगकारक होने की स्थिति का विचार करें तो निम्नलिखित कारणों से ये रोगकारक हो जाते हैं –

1- रोग कारक ग्रहों से राशि या भाव का संबंध ।
2- राशि स्वामी या भावेश निर्बलता । कि अनिष्ट स्थान में स्थिति एवं (भाव का स्वामी)
3- त्रिक स्थान 6),8,12) से राशियों का संबंध ।
4- पाप ग्रहों से युति या पाप ग्रहों की राशि या भाव में दृष्टि ।
5- पाप ग्रहों के मध्य में स्थिति ।
6- शुभ ग्रहों का राशि या भाव से संबंध या प्रभाव न होना ।

रोगों का वर्गीकरण - प्रश्नमार्ग के अनुसार रोगों का वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया गया है –

सन्ति प्रकार भेदाश्च रोगभेदनिरूपणे ।
ते चाप्यत्र विलिख्यन्ते यथा शास्त्रान्तरोदिताः।।
रोगास्तु द्विविधा ज्ञेया निजागन्तुविभेदतः ।
निजाश्चागन्तुकाश्चापि प्रत्येकं द्विविधाः पुनः ।।

निजा शरीरचित्तोत्था दृष्टादृष्टनिमित्तजाः ।
तथैवागन्तुकाश्चैवं व्याधयः स्युश्चतुर्विधाः ।।
(प्रश्नमार्ग द्वादशोऽध्यायश्लोक संख्या 17-19)
अर्थात् रोगों का वर्गीकरण इस प्रकार है-शास्त्रान्तरों (आयुर्वेदीय ग्रन्थों; यथा-चरक-संहिता, सुश्रुतसंहिता, काश्यपसंहिता, अष्टाङ्गसंग्रह, अष्टाङ्गहृदय, माधवनिदानआदि) में निज तथा आगन्तुज भेद से रोग दो प्रकार के होते हैं, फिर इन दोनों में से प्रत्येकके दो-दो भेद हैं।
(१) निज रोग (सहजरोग) –– (क) शारीरिक (Physical तथा (ख) चित्तोत्थ (मानसिक=Mentaldisease) दो प्रकार के होते हैं।
(२) आगन्तुक रोग - (क) दृष्ट निमित्तजन्य (जिनके कारण का प्रत्यक्ष पता रहता है), (ख) अदृष्ट निमित्तजन्य (जिनके कारण का प्रत्यक्षतः पता नहीं लगता जैसे भूत-प्रेतादि) । इन रोगों पर विस्तृत विचार हम निम्न प्रकार से कर सकते हैं-
1- निज रोग (सहजरोग) – सहज रोग उन्हें कहते है जो जन्मजात ही होते हैं अर्थात जन्म के साथ ही ये रोग शरीर में विद्यमान रहते हैं। ये जन्मजात रोग भी दो प्रकार के होते हैं एक शारीरिक एवं दूसरा मानसिक । जन्मजात शारीरिक रोगों में लंगड़ापन, अंधत्व, मूकत्व (गूंगा), बधिरत्व(बहरा), लूलापन, नपुंसकत्व, किसी अंग विशेष का न होना या किसी अंग विशेष का अधिक या बड़ा होना आदि आते हैं। एवं जन्मजात मानसिक रोग पागलपन, उन्माद, मस्तिष्क विकार, जड़ता आदि माने जाते हैं । इन जन्मजात रोगों का कारण हमारे शास्त्र में पूर्व जन्म के कर्मो के कारण या माता पिता द्वारा किया गया कर्म भी माना जाता है। शारीरिक रोगों के कारण प्रश्नमार्ग के अनुसार इस प्रकार बताए गए हैं –
वातपित्तकफोद्भूताःपृथक्संसर्गजास्तथा।
सन्निपातभवाश्चैते शारीराः कीर्तिता गदाः ।।
(प्रश्नमार्ग द्वादशोऽध्यायश्लोक संख्या 20)
(१) वातदोष से, (२) पित्तदोष से, (३) कफदोष से, (४) वात तथा पित्त के मिश्रण से, (५) वात-कफ के मिश्रण से, (६) पित्त-कफ के मिश्रण से तथा (७) वात-पित्तकफ तीनों दोषों के मिश्रण (सन्निपात) से जो रोग रोग उत्पन्न होते हैं उन्हें शारीरिक रोग कहा जाता है। (क्योकि ये शरीर में उत्पन्न दोषविकृति से पैदा होते हैं) ज्योतिष शास्त्र में गर्भाधान कुंडली एवं जन्मकुंडली के आधार पर रोग का विचार किया जाता है। इसके अनुसार सहज शारीरिक रोग का मुख्य कारण निम्न है –
अष्टमेन तदीशेन तद्दृष्ट्रा तद्गतेन वा।
विज्ञातव्याः स्युरेतेषां वीर्यतस्तत्कृता गदाः ।।
(प्रश्नमार्ग द्वादशोऽध्यायश्लोक संख्या 21)

शारीरिक रोगों (Somatic diseases) का विचार अष्टमेश, अष्टम भाव, अष्टमद्रष्टा ग्रह तथा अष्टमस्थ ग्रह से होता है। इनमें जो बली ग्रह होता है वह अपना रोग उत्पन्न करता है। रोग संबंधी विभिन्न योगों में यदि अष्टमेश तथा अष्टम स्थान का संबंध हो तो उस प्रकार के रोग असाध्य होते है अर्थात जिनका उपचार के बाद भी रोग की समाप्ति नहीं हो पाती है। एवं यदि इन योगों में परस्पर अष्टमेश एवं अष्टम स्थान का संबंध न हो तो वैसे शारीरिक रोग साध्य होते हैं अर्थात उपचार के माध्यम से रोग ठीक हो जाते हैं। परंतु जन्मजात रोगों में हीनांग आदि रोग

प्रायः असाध्य ही होते हैं। इसी प्रकार सहजमानसिक रोग का हम विचार करें तो प्रश्न मार्ग के अनुसार –

क्रोधसाध्वसशोकादिवेगजातास्तु मानसाः।
ज्ञेया रन्ध्रमनोनाथमिथो योगेक्षणादिभिः ॥

(प्रश्नमार्ग द्वादशोऽध्यायश्लोक संख्या 22)

अर्थात क्रोध, साध्वस (भय),शोक आदि मानसिक वेगों को धारण करने से मानसिक रोग होते हैं। इन मनो-रोगों का विचार अष्टमेश तथा चतुर्थेश की युति एवं दृष्टि सम्बन्धादि से करना चाहिए। मानसिक रोगों के जिन योगों में अष्टमेश एवं चतुर्थेश की युति या दृष्टि प्रत्यक्ष प्रतीत हो वे मानसिक रोग प्रायः असाध्य होते हैं अर्थात उपचार के बाद भी सही नहीं हो पाते। तथा जिन मानसिक रोगों के योगों में अष्टमेश एवं चतुर्थेश की दृष्टि या युति न हो वे मानसिक रोग जन्मजात होने पर भी उपचार द्वारा ठीक हो जाते हैं।

(२) **आगन्तुक रोग** – आगन्तुक रोग भी दो प्रकार के होते हैं- १-दृष्टनिमित्तजन्य एवं २ - अदृष्ट निमित्तजन्य। शाप, अभिचार, घात, संसर्ग, महामारी एवं दुर्घटना आदि प्रत्यक्ष घटनाओं द्वारा उत्पन्न होने वाले रोगों को दृष्टनिमित्त जन्य रोग कहते हैं तथा बाधक ग्रह योगों के द्वारा उत्पन्न रोग अदृष्टनिमित्त जन्य रोग कहलाते हैं। इन रोगों का कारण पूर्वाजित कर्म माना गया है। उक्त दृष्टनिमित्तजन्य एवं अदृष्टनिमित्तजन्य रोगों के भी शारीरिक एवं मानसिक--ये दो भेद माने गये हैं -

(क) दृष्ट निमित्तजन्य (जिनके कारण का प्रत्यक्ष पता रहता है) – इन रोगों के बारे में प्रश्न मार्ग में बताया गया है कि –

शापाभिचारघातादिजाता दृष्टनिमित्तजाः।
ज्ञेयाः षष्ठतदीशाभ्यां तद्दृष्ट्रा तद्गतेन वा ॥

(प्रश्नमार्ग द्वादशोऽध्यायश्लोक संख्या 23)

अर्थात दूसरे के द्वारा दिया गया शाप, अभिचार कर्म (मारण-मोहन-उच्चाटन स्तंभन-विद्वेषण तथा कृत्य आदि के तान्त्रिक प्रयोग), अभिघात (शस्त्रादि से आक्रमण) आदि से होने वाले रोग दृष्टनिमित्तजन्य होते हैं। इस प्रकार के रोगों का विचार षष्ठेश, षष्ठ भाव, षष्ठद्रष्टा, षष्ठारूढ (छठे भाव में बैठा हुआ) ग्रह इन चारों से करना चाहिए।

(ख) अदृष्ट निमित्तजन्य – ऐसे रोग जिनके कारण प्रत्यक्ष रूप से नहीं दिखाई देते हैं वे रोग अदृष्ट निमित्तजन्य रोग कहलाते हैं। ज्वर, अतिसार आदि रोग इन्ही के अंतर्गत आते हैं। इन रोगों के विषय में ज्योतिष शास्त्र में बताया गया है कि –

रन्ध्रेशषष्ठसम्बन्धे शापाद्याः प्रबलाश्च ते।
अदृष्टहेतुजा ज्ञेया बाधकग्रहसम्भवाः ॥

(प्रश्नमार्ग द्वादशोऽध्यायश्लोक संख्या 24)

पूर्व में कथित जो दृष्टनिमित्तज रोग हैं उनमें यदि षष्ठेश तथा अष्टमेश का सम्बन्ध हो तो वे रोग उग्र हो जाया करते हैं। जो अदृष्टनिमित्तज रोग हैं वे बाधक ग्रहों के कारण उत्पन्न होते हैं। वे पूर्व जन्म के प्रारब्ध से हुआ करते हैं। इनमें अनेक बार चिकित्सकों द्वारा किसी कारण का पता नहीं चल पाता है। इस प्रकार ज्योतिष शास्त्र के विभिन्न रोग जन्य योगों के कारण स्वास्थ्य की अनुकूलता आदि का विचार हम कर सकते हैं।

अभ्यास प्रश्न – 1

1- ज्योतिष शास्त्र के मुख्यतः कितने स्कन्ध है ?

2- मुख्यतः रोगों का वर्गीकरण कितने प्रकार से किया गया है ?
3- द्वादश भावों में रोग का विचार किस भाव से किया जाता है ?
4- त्रिक भाव कौन कौन से हैं ?
5- सामान्यतः मिनिट में हृदय कितनी बार धड़कता है 1?

1.3.3 ज्योतिषशास्त्र में हृदय-रोग के कारक -

मनुष्यका हृदय अतीव सुकोमल एवं कमल के सदृश है। सतत गतिमान रहने वाला हृदय मानव के सभी अंगों एवं उपांगों को रक्त का आदान-प्रदान करता है, जिससे सभी अंग यथास्थान अपने स्वरूप में हमेशा कार्य करते रहते हैं। इसीलिये शरीर के मुख्यांग में इसकी गणना की गयी है।
हृदयरोग का इतिहास अतीव प्राचीन है। ऋग्वेद में हृदयरोग के नाश हेतु भगवान् सूर्य से प्रार्थना की गयी है। भागवत महापुराणमें भी रासपंचाध्यायी के अन्तर्गत इसकी चर्चा है। आर्षपरम्परा के ग्रन्थों में तो हृदयरोग का कारण सूर्य तथा चतुर्थ एवं पंचम भाव और कुछ दशाओं का उल्लेख किया गया है, जिसके अन्तर्गत मुख्य रूप से सूर्य, शनि और राहुदशा पायी जाती है। कुछ निश्चित राशियों के साथ ग्रहों की दशा में भी हृदयरोग की उत्पत्ति बतायी गयी है। आचार्य पराशर ने तो दशाफलाध्याय में सर्वाधिक रोगोद्भवकारक दशाओं का विवेचन किया है।
सूर्य पिता और आत्मा का कारक ग्रह होता है। इससे हृदय रोग के बारे में भी जानकारी हासिल की जाती है। इसकी शुभ-अशुभ स्थितियों के अनुसार रोग की तीव्रता का पता लगाया जाता है। चंद्रमा मन और मस्तिष्क का कारक होता है। सृष्टि के समस्त जल तत्वों का प्रतिनिधित्व चंद्र करता है। जैसा कि सभी जानते हैं मनुष्य के शरीर में भी 75 प्रतिशत तक पानी होता है। रक्त में भी पानी होता है, जिसकी सही मात्रा में तरलता होना आवश्यक है। हृदय ही रक्त को पूरी बॉडी में पंप करता है। इसलिए चंद्र की स्थिति भी देखी जाती है। मंगल ग्रह हमारे शरीर की मांसपेशियों का प्रतिनिधित्व करता है। चूंकि हृदय भी मांसपेशियों से बना होता है इसलिए हृदय रोग की पड़ताल करते समय मंगल की स्थिति देखना आवश्यक है। राहु अचानक घटनाएं, दुर्घटनाएं, बीमारियां लाने वाला ग्रह है। यह किसी भी बीमारी को गंभीर अवस्था तक पहुंचा देता है। यदि व्यक्ति को किसी प्रकार का हृदयरोग है तो राहु से यह देखा जाता है कि कहीं व्यक्ति को अचानक हार्ट अटैक तो नहीं हो जाएगा।केवल ग्रहों को देखकर किसी भी बीमारी के बारे में भविष्यवाणी करना उचित नहीं है, जन्म कुंडली के भाव और उनमें उपस्थित शुभ-अशुभ ग्रहों की स्थिति का आकलन करना आवश्यक है। जन्म कुंडली का प्रथम भाव लग्न कहलाता है। इससे व्यक्ति की शारीरिक स्थिति, रूप, रंग के साथ हृदय का भी ज्ञान लिया जाता है। इस भाव में उच्च-नीच ग्रहों के अनुसार रोगों का पता लगाया जाता है। चतुर्थ भाव सुख स्थान कहलाता है। इसे हृदय स्थान भी कहते हैं। इस भाव से हृदय संबंधी सभी क्रियाकलाप आते हैं। जैसे व्यक्ति की भावनात्मक स्थिति, हृदय में होने वाले बदलाव आदि। छठा स्थान बीमारियों का घर होता है। इससे व्यक्ति की समस्त बीमारियों का पता लगाया जाता है। जिनमें अल्पकालिक और दीर्घकालिक बीमारियों की जानकारी हासिल की जाती है। आठवां स्थान मृत्यु स्थान होता है। इससे निकट भविष्य में होने वाले रोगों के बारे में जानकारी हासिल होती है। आकस्मिक मृत्यु का योग भी इसी से पता चलता है। चूंकि हृदय रोग में कई बार आकस्मिक मृत्यु हो जाती है, इसलिए इस भाव में मौजूद ग्रहों को देखना जरूरी है।

कूछ प्रमुख हृदय रोग के ज्योतिषीय कारणों को हम निम्न बिन्दुओं के आधार पर जानने का प्रयास करते हैं -

(1) काल पुरुष की कुंडली में चतुर्थ भाव, कर्क राशि तथा चतुर्थेश चंद्रमा का संबंध हृदय से माना गया है। कुछ विद्वान सूर्य को राजा या नियंत्रक ग्रह मानते हैं। अतः रक्त संचार प्रणाली के नियमन व नियंत्रण के लिये वे सूर्य को कारक मानते हैं। उनके मतानुसार हृदय रोगों पर सूर्य का अधिकार मानना अधिक उपयुक्त है।

(2) मंगल रक्त है। अतः सूर्य (नियामक) चंद्रमा (रक्त संचार) मंगल (रक्त के लाल कण) चतुर्थ भाव तथा कर्क राशि (हृदय स्थान) पर पापत्व की मात्रा बढ़ने से या इनका संबंध षष्ठभाव षष्ठेश, शनि या राहु से होने पर हृदय रोग की संभावना बढ़ती है।

(3) कुछ दैवज्ञ सूर्य को हृदय रोग का कारक मानकर सूर्य की विभिन्न ग्रहों से युति के अनुसार रोग का स्वरूप निश्चित करते

क(उच्चरक्त चाप) रक्त संचार दोष - मंगल -सूर्य .

खहृदय में कंपन या तीव्र गति से दिल ध - सूर्य शनि .ड़कना

गहृदय में पीडा- सूर्य केतु .

(4) चतुर्थ भाव संबंधी योग

चतुर्थ भाव में हों। (पाप ग्रह + षष्ठेश + सूर्य) (अ)

की युति चतुर्थ भाव में हो। (शनि + गुरु + गलमं) (आ)

की युति चतुर्थ भाव में हों। (केतु + मंगल) (इ)

1.4 हृदय रोग के भेद एवं उनके प्रमुख-ज्योतिषशास्त्रीय योग-

चिकित्सा शास्त्र के अनुसारहृदय या दिल वस्तुतः रक्त संचार प्रणाली की वह मांसल रचना है जो रक्त को परिवहन हेतु पंप करती है। रक्त परिवहन तंत्र में तीन प्रकार की रक्त नलिकाएं या खून की नसें हैं। धमनियां)Arteries) जो रक्त को हृदय से विविध अंगों की ओर ले जाती हैं। ये आक्सीजन युक्त रक्त विभिन्न अवयवों को जीवन शक्ति प्रदान करता है। शिरायें)Veins) जो नीले या दूषित रक्त को हृदय की ओर वापिस लाती हैं। इनमें कार्बन डाईआक्साईड का तत्व रहता है। केशोपम नलिकाएं)Capillaries) ये बहुत महीन बाल सरीखी रक्त नलिकाएं शरीर के प्रत्येक भाग में रक्त संचार को सुनिश्चित करती हैं। हृदय का कार्य दबाव के साथ रक्त को धमनियों द्वारा देह के सभी भागों में पहुंचाना है।)Kidney) किडनी रक्त में दूषित (या वृक्क) पदार्थ को अलग कर रक्त की साफ सफाई करती है इसे फिल्ट्रेशन कहा जा सकता है। फेफड़े रक्त के लिए आक्सीजन की आपूर्ति सुनिश्चित करते हैं तथा कार्बन डाईआक्साईड को (सप्लाई) बाहर निकाल देते हैं। सांस के द्वारा देह से

हृदय रोग - हृदय रोग की धड़कन की गति असामान्य होना।

हृदय के समीप मांसपेशियों में जकड़न या खिंचाव (1की अनुभूति व दर्द।

ii धमियों में अवरोध, बाधा, शोध या अन्य विकार।

iv हृदय की निष्क्रियता या धडकन बंद हो जाना।

हृदय रोग कारक ग्रहयोग – ज्योतिष शास्त्रानुसार हृदय रोग के विभिन्न योगों को हम निम्नलिखित बिन्दुओं के माध्यम से समझने का प्रयास करते है - 1 - सारावली ग्रंथ के अनुसार

जातक के जन्म कुंडली मे यदि चन्द्रमा शत्रुगृही होकर बैठा हो तो सदा हृदयरोग उत्पन्न करता है। चंद्रमा के नैसर्गिक शत्रु के अभाव होते हुए भी इनके पंचधा मैत्री के अनुसार विचार करना चाहिए यथा -

कुरुतेशत्रुगृहेऽर्कोनिःस्वंविषयप्रपीडितंचापि।
तुहिनमयूखःकुरुतेहृद्रोगिणमरिगृहेनरंसततम्॥

(सारावली, ,(44। 19)

2 - जातकपारिजात के अनुसार जन्मांग चक्र में यदि सूर्य चतुर्थ भाव में बैठा हो तो हृदय रोग को उत्पन्न करता है यथा -

हृद्रोगीधनधान्यबुद्धिरहितःकरःसुखस्थेरवौ......

(जातक पारिजात 8/68)

3- इसी प्रकार जातक पारिजात के ही अनुसार यदि चन्द्रमा शत्रुक्षेत्री होकर बैठा हो तो हृदयरोग उत्पन्न करताहै।

शत्रुक्षेत्रगतेरवौपितृसुखत्यागी च सेवापरः
शीतांशी यदि मातृदुःखनिरतोहृद्रोगशालीभवेत्।

(जा०पारि० 8/112)

4 –शंभूहोराप्रकाश ग्रंथ के अनुसार मकरराशिगत सूर्य सामान्य हृदय रोग उत्पन्न करता है यथा - **पाके घटस्य विकर्तनस्य पैशुन्यहृद्रोगयुतोऽल्पवितः**
परान्भुकस्त्री सुतबन्धुवर्गे भवेन्नराणा कलहोनितातम्

(शम्भुहोरा प्रकाश -10/52)

इसी प्रकार प्रो शुकदेव चतुर्वेदी जी के ग्रंथ "ज्योतिष शास्त्र में रोग विचार" के अनुसार कुछ हृदय रोग संबंधी योग निम्नवत हैं

(१) चतुर्थ स्थान में पाप ग्रह हों तथा चतुर्थेशपापग्रहों के साथ हो।

(२) चतुर्थ स्थान में पापग्रह हों तथा चतुर्थेश दो पापग्रहों के मध्य में हो।

(३) चतुर्थेश जिस नवांश में हो उसका स्वामी क्रूर षष्ठथंश में हो तथा उस पर क्रूरग्रह की दृष्टि हो।

(४) चतुर्थेशअष्टमेश के साथ अष्टम स्थान में हो।

(५) नीच राशिगत, शत्रुराशिगत या अस्तंगतचतुर्थेश अष्टम स्थान में हो। (बिन्दु क्रमांक 1 से 5 तक - सर्वार्थ चिन्तामणि अ० ५ श्लो० ६५-६७।)

(६) चतुर्थ स्थान में शनि हो तथा सूर्य एवं षष्ठेश पापग्रहों के साथ हों।

(७) सूर्य, मंगल एवं गुरु चतुर्थ स्थान में हो। (जातकालंकार अ० ३ श्लो० ३५-३६।)

(८) चतुर्थ एवं पंचम स्थान में पाप ग्रह हो।

(९) चतुर्थ एवं पंचम स्थान में क्रूर षष्ठयंश हो तथा शुभग्रहों से दृष्टयुत न हो।' (जातक पारिजात अ० १३ श्लो०६६।)

(१०) चतुर्थ स्थान में शनि हो। (सारावली अ० ३० श्लो० ७७।)

(११) कुम्भ में सूर्य हो। (सारावली अ० ३० श्लो० ६४।)

इसी तरह हृदय रोग के कुछ अन्य भेद के विषय में भी इसी ग्रंथ में बताया गाया है कि –

हृदयशूल रोग - हृदय में तीव्र दर्द या असह्य वेदना को हृदयशूल कहते हैं। इसका विचार चतुर्थ भाव, चतुर्थेश एवं सूर्य से किया जाता है। इस रोग के योग इस प्रकार हैं :-

(१) चतुर्थ में स्थित राहु पर पाप ग्रहों को दृष्टि हो तथा लग्नेश निर्बल हो।

(२) चतुर्थेश की राशि तथा नवांश का स्वामी कूर षष्ठयंश में हो और पापग्रहों से दृष्ट हो।

(३) पाप ग्रहों के साथ सूर्य वृश्चिक राशि में हो।

(४) षष्ठेश सूर्य पापक्रान्त हो तथा शुभग्रह षष्ठ एवं व्ययस्थान में हो।

(५) द्वादश स्थान में राहु हो तो गैस या वायु से हृदय में दर्द होता है।

हृत्कम्प रोग - दिल में होने वाली घबड़ाहट या बेचैनी को हृत्कम्प कहते हैं। यदि इसकी समुचित चिकित्सा न की जाय तो यह हृदय को रुग्ण कर देता है। इस रोग के योग इस प्रकार हैं-

(1) दिन में जन्म हो तथा नष्ट मंगल को गुरु देखता हो।'

(2) शुभ ग्रह कूराक्रान्त हों तथा षष्ठेश पापयुक्त हो।

(3) सूर्य वृश्चिक राशि में हो।'

(ज्योतिष शास्त्र में रोग विचार पृष्ठ क्रमांक ९२-९३)

इस प्रकार ज्योतिष शास्त्र के अनुसार हृदय रोग से संबन्धित कुछ प्रमुख योगों के हमने जाना।

1.4.1 ज्योतिषशास्त्रानुसार हृदय रोग का निदान एवं उपचार

-हृदय रोग से बचने के लिए ये उपाय कर सकते हैं यदि आपको कोई हृदय रोग है या उसकी आशंका लग रही है तो सबसे पहले आप अपने डॉक्टर से संपर्क करें उसके बाद ही किसी ज्योतिषीय उपाय की ओर ध्यान दें। ज्योतिषीय उपाय भी बहुत सार्थक होते हैं। ज्योतिष शास्त्र में रोगों का शमन ग्रहों की उपासना, मंत्र, जप, अनुष्ठान, ग्रह संबंधी दान, रत्न आदि के माध्यम से किया जाता है। प्रत्येक ग्रहों के मंत्र,जप रत्न, दान आदि के विषय में हम अगली इकाई में विस्तार पूर्वक अध्ययन करेंगे।

अभ्यास प्रश्न – 2

1- सामान्यतः हृदय रोग का विचार ....भावकिया जाता है।
2- सामान्यतः सूर्य और मंगल की युति .... रोग उत्पन्न करती है।
3- हृदय रोग की संभावना अधिक तब होती है जब चतुर्थेश का संबंध ....ग्रहों से बनता है।
4- - हृदय में तीव्र दर्द या असह्य वेदना को ....कहते हैं।
5- दिल में होने वाली घबड़ाहट या बेचैनी को................कहते हैं।

1.5 सारांश –

प्रस्तुत इकाई के माध्यम से हमने हृदय रोगों के विषय में विस्तार से अध्ययन किया। यह रोग एक अत्यंत गंभीर रोग होता है। यह रोग शरीर में उत्पन्न न हो इसके लिए नियमित व्यायाम करना चाहिए। साथ ही ग्रहों की अनुकूलता के लिए ईश्वरीय आराधना भी करते रहना चाहिए। हमने जाना की जन्मकुंडली के चतुर्थ स्थान में पाप ग्रहों की स्थिति युति, उसका षष्ठेश, के साथ संबंध, सूर्य, मंगल, चंद्र आदि का निर्बल होना,पंचम भावकी स्थिति भी कमजोर होना, लग्न का कमजोर होना आदि स्थिति हृदय रोगा को उत्पन्न करती है। इनके शमन के लिए शास्त्रोक्त उपाय मानव को करने चाहिए जिनमें मंत्र, ग्रह उपासना, औषधि स्नान , दान, रत्न धारण आदि प्रमुख है। एवं रोग उत्पन्न होने पर चिकित्सा विज्ञान की भी सहायता अवश्य लेनी चाहिए जिससे रोग

की भयावहता अधिक न हो । इस प्रकार ज्योतिष शास्त्र में विद्यमान कूछ प्रमुख हृदय रोग संबन्धित विषयों को हमने प्रस्तुत इकाई के माध्यम से जाना ।

1.6 शब्दावली –

व्याधिमन्दिरं= रोग का स्थान को ज्योतिष शास्त्र में व्याधि मंदिर भी कहा जाता है ।

निज रोग (सहजरोग) –जन्म से ही शरीर में विद्यमान रोग को निज रोग कहा जाता हैं ।

अरिष्ट = बुरा

प्रारब्ध कर्म = पूर्व जन्म में किए गए कार्य ।

क्रियमाण = किए जाने वाले कार्य को क्रियमाण कहा जाता है ।

मारकेश = मारक भाव के स्वामी को मारकेश कहा जाता है । कुंडली में द्वितीय एवं सप्तम भाव मारक भाव कहलाते हैं ।

शत्रु राशि गत = शत्रु के राशि में गया हुआ जैसे सूर्य का शत्रु शनि ग्रह है एवं शनि मकर एवं कुम्भ राशि का स्वामी है । यदि सूर्य मकर या कुम्भ राशि में कुंडली में हो तो वह शत्रु राशि गत है ।

हृदयशूल रोग - हृदय में तीव्र दर्द या असह्य वेदना को हृदयशूल कहते हैं। एक प्रकार का हृदय रोग ।

हृत्कम्प रोग - दिल में होने वाली घबड़ाहट या बेचैनी को हृत्कम्प कहते हैं। यह भी एक प्रकार का हृदय रोग ही है ।

1.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर –

अभ्यास प्रश्न – 1

1- तीन – सिद्धांत –संहिता –होरा ,– 2 दो प्रकार , -3 षष्ठ भाव ,6- 4 ,8,12 भाव , -5 बार 90 से 60

अभ्यास प्रश्न – 2

1- तीन – सिद्धांत –संहिता –होरा ,– 2 रक्त संचार दोष (उच्च रक्त चाप), -3 पाप , – 4 हृदयशूल, -5 हृत्कम्प

1.8 **संदर्भ ग्रन्थ सूची -**

1):-लघुपाराशरी व्याख्याकार - डॉ. सुरकान्तझाचौखम्भासुभारती प्रकाशन वर्ष 2007(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक) के 37/117 गोपाल मन्दिर लेन पां. बा.न. 1129, वाराणसी , 22101 दूरभाष2335263

(2):-जातकपारिजात : व्याख्याकार - डॉ. हरिशंकर पाठक,संस्करण वर्ष 2012, चौखम्भासुभारती प्रकाशन वाराणसी

(3):-बृहत्पाराशरहोराशास्त्रम् - चौखम्भासुभारती प्रकाशन वाराणसी,टीकाकार पं. पद्मनाभ शर्मा प्रकाशन वर्ष 2012

(4):-भारतीय ज्योतिष - लेखक डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री,भारतीय ज्ञानपीठ संस्करण वर्ष 2002

(5)मुहूर्त्तचिन्तामणिः डॉ. रामचन्द्रपाण्डेय,चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, के० ३७/११८, गोपाल मन्दिर लेन (गोपाल मन्दिर के उत्तरी फाटक पर),पो० बा० नं० १११८, वाराणसी-२२१००१ (भारत)

(06)जातकपारिजात- लेखक – श्रीवैद्यनाथ ,चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी,: प्रकाशन वर्षदशम्, वि० सं० २०६१ (सन् २००४),© चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसीफोन : २३३३४४५

(09) सारावली - व्याख्याकारडॉ. सुरकान्तझा,प्रकाशक : चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी,के० ३७/११८, गोपाल मन्दिर लेन गोलघर (मैदागिन) के पास),संस्करण : द्वितीय, वि०सं० २०७०, सन् २०१३,ISBN: 81-218-0192-3

(10) ज्योतिष शास्त्र में रोग विचार – डा शुकदेव चतुर्वेदी, मोतीलाल बनारसी दास, चौक – वाराणसी ,

(11) बृहज्जातकम् – व्याख्याकार पं० केदारदत्त जोशी,प्रथम संस्करण: वाराणसी, १९८५,प्रकाशक – मोतीलाल बनारसीदास चौक, वाराणसी २२१००१

1.8 सहायक पाठ्यसामग्री -

(1) कल्याण – ज्योतिषतत्त्वांक,गीताप्रेस, गोरखपुर वर्षः८८संख्या : १

(2)ज्योतिष-सिद्धान्त-मञ्जूषा – लेखकः प्रो० विनयकुमारपाण्डेयः,चौखम्भा सुभारती प्रकाशन वर्ष 2013(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक),के 37/117 गोपाल मन्दिर लेन पां. बा.न. 1129, वाराणसी , 22101

(03) नैसर्गिकी- नैसर्गिकी शोध संस्था,38 मानस नगर, वाराणसी -221005

(04) – इंटरनेट,

1.9 निंबंधात्मक प्रश्न –

1- ज्योतिष शास्त्रानुसार रोग विचार विषय पर टिप्पणी लिखिए।

2- हृदय रोग के बारे में संक्षेप में लिखिए।

3- हृदय रोग संबंधी ग्रह स्थिति को उदाहरण सहित समझाइए।

4- आगंतुक एवं निज रोगों के बारे में लिखिए।

5- प्रस्तुत इकाई का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।

इकाई -02 उदररोग

इकाई की संरचना-

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 उदररोग
2.3.1- ज्योतिषशास्त्र में उदररोग के कारक
2.4 उदररोग के भेद एवं उनके प्रमुख ज्योतिषशास्त्रीय योग
2.4.1ज्योतिषशास्त्रानुसार रोग का निदान एवं उपचार
2.5 सारांश
2.6 पारिभाषिक शब्दाबली
2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची
2.9 सहायक पाठ्यसामग्री
2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना-

प्रस्तुत इकाई का शीर्षक **उदर रोग** है। आप लोगो को ज्योतिषशास्त्र में रुचि है यह मेरा विश्वास है इसी कारण आप ज्योतिषशास्त्र के इस पाठ्यक्रम को पढ रहे हैं।ज्योतिष शास्त्र हम सभी का विभिन्नविषयों में समुचित मार्गदर्शन करता है एवं जीवन में घटने वाले अशुभ प्रभावों को ग्रह इत्यादि की उपासना आदि के माध्यम से दुष्प्रभावों को न्यून करने में सहायक है ।ज्योतिष शास्त्र का परम लक्ष्य प्राणी मात्र का कल्याण है। प्राणी का जीवन कई कारणों से सुखमय होता है। मानव को कई प्रकार के सुखो की आवश्यकता होती है तभी वह पूर्ण सुखी माना जाता है जैसे आध्यात्मिक सुख, भौतिक सुख,पारिवारिक सुख,सामाजिक सुख,शारीरिक सुख, मानसिक सुख,आदि प्रमुख हैं। इन सभी सुखों में सर्वाधिक आवश्यक एवं महत्वपूर्ण सुख शारीरिकएवं मानसिक सुख है। क्योंकि मानव अन्य सुखों का भोग या प्राप्ति शारीरिक या मानसिक रूप से स्वस्थ रहने की दशा में ही प्राप्त कर सकता है। क्योंकि कहा भी जाता है कि –

धन वैभव अच्छा लगे,जब हो देह निरोग।
रोगी हो काया अगर, भाते नहिंहैं भोग।

इसी प्रकार –

देह स्वस्थ धन पास हो, लगे सुखद संसार।
लगें भोग भी विष भरे ,रोगी अरु लाचार।।

अतः शरीर का स्वस्थ होना प्राणी के लिए बहुत आवश्यक है। शरीर से ही वह जीवन में सभी क्रिया कलापों को संपादित करता है। इस शरीर में नाना प्रकार के रोगों का वास होता है जिनमें से एक प्रमुख रोग उदर रोग भी है। उदर रोग कई अन्य रोगों का भी कारण होता है। इसी उदर रोग के विभिन्न ज्योतिषीय कारण एवं उनके ज्योतिष के आधार पर समाधान के बारे में हम प्रस्तुत इकाई में अध्ययन करेंगे।

2.2 उद्देश्य –

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- ज्योतिष शास्त्र में उदर रोग के कारक तत्वों को जान पाएंगे।
- ज्योतिष शास्त्रानुसार उदर रोग के भेद से अवगत हो पाएंगे।
- ज्योतिष शास्त्र में वर्णित प्रमुख उदर रोग संबंधी योगों के बारे में जानेंगे।
- ज्योतिष शास्त्रानुसार उदर रोग के निदान एवं उपचार के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।

2.3 उदर रोग –

उदर शब्द का निर्माण उत् धातु से होता है जिसके पर्यायवाची शब्द कुक्षि, जठर, तुन्द, पिचण्ड या पेट है। उदर रोग से तात्पर्य है –**"नाभिस्तनयोर्मध्ये ये रोगविशेषा ते उदररोगाः"** अर्थात् नाभि और स्तनोंके मध्य में रहने वाले प्रत्यंगों में रहने वाले रोगों को उदर रोग कहा जाता है। उदररोग आगंतुक रोग की श्रेणी में आता है।

उदर शरीर का वह भाग या अंग है जहां से सभी रोगों की उत्पत्ति होती है। अक्सर लोग खाने-पीने का ध्यान नहीं रखते, परिणाम यह होता है कि पाचन प्रणाली गड़बड़ा जाती है जिससे मंदाग्नि, अफारा, कब्ज, जी मिचलाना, उल्टियां, पेचिश, अतिसार आदि कई प्रकार के रोग उत्पन्न होते

जाते हैं जो भविष्य में किसी बड़े रोग का कारण भी बन सकते हैं। यदि सावधानी पूर्वक संतुलित आहार लिया जाये तो पाचन प्रणाली सुचारू रूप से कार्य करेगी और हम स्वस्थ रहेंगे। उदर में पाचन प्रणाली का कार्य भोजन चबाने से प्रारंभ होता है। जब हम भोजन चबाते हैं तो हमारे मुंह में लार ग्रंथियों से लार निकलकर हमारे भोजन में मिल जाती है और कार्बोहाइड्रेट्स को ग्लूकोज में बदल देती है। ग्रास नली के रास्ते भोजन अमाशय में चला जाता है। अमाशय की झिल्ली में पेप्सिन और रैनेट नामक दो रस उत्पन्न होते हैं जो भोजन के साथ मिलकर उसे शीघ्र पचाने में सहायता करते हैं। इसके पश्चात भोजन छोटी आंत के आखिर में चला जाता है। यहां भोजन के आवश्यक तत्व रक्त में मिल जाते हैं तथा भोजन का शेष भाग बड़ी आंत में चला जाता है, जहां से मूत्राशय और मलाशय द्वारा मल के रूप में शरीर से बाहर हो जाता है। मानव शरीर में उदर(पेट) का विशेष स्थान है । प्रस्तुत इकाई के माध्यम से हम ज्योतिष शास्त्र के अनुसार उदर रोग से संबन्धित विषयों को विस्तार से जानेंगे।

2.3.1- ज्योतिषशास्त्र में उदररोग के कारक-

ज्योतिष के अनुसार रोग की उत्पत्ति का कारण ग्रह नक्षत्रों की खगोलीय चाल है। जितने दिन तक ग्रह-नक्षत्रों का गोचर प्रतिकूल रहेगा व्यक्ति उतने दिन तक रोगी रहेगा उसके उपरांत मुक्त हो जाएगा। जन्मकुंडली अनुसार ग्रह स्थिति व्यक्ति को होने वाले रोगों का संकेत देती है। ग्रह गोचर और महादशा के अनुसार रोग की उत्पत्ति का समय और अवधि का अनुमान लगाया जाता है। उदर रोगों के ज्योतिषीय कारण जन्मकुंडली में सबसे अधिक महत्वपूर्ण लग्न होता है और यदि लग्न अस्वस्थ है, कमजोर है तो व्यक्ति रोगी होता है। लग्न के स्वस्थ होने का अभिप्राय लग्नेश की कुंडली में स्थिति और लग्न में बैठे ग्रहों पर निर्भर करता है। लग्नेश यदि शत्रु, अकारक से दृष्ट या युक्त हो तो कमजोर हो जाता है। इसी प्रकार यदि लग्न शत्रु या अकारक ग्रह से दृष्ट या युक्त हो तो भी लग्न कमजोर हो जाता है। काल पुरूष की कुंडली में द्वितीय भाव जिह्वा के स्वाद का है। पंचम भाव उदर के ऊपरी भाग पाचन, अमाशय, पित्ताशय, अग्नाशय और यकृत का है। षष्ठ भाव उदर की आंतों का है। जैसा कि लघुजातक में कालपुरुष के अंग विशेष में द्वादश राशियों का प्रतिनिधित्व बताया गया है यथा-

शीर्षमुखबाहुहृदयोदराणि कटिबस्तिगुह्यसंज्ञानि ।
ऊरु जानू जंगे चरणाविति राशयोऽजाद्याः ।।
कालनरस्यावयवान् पुरुषाणां चिन्तयेत्प्रसवकाले ।
सदसद्ग्रहसंयोगात् पुष्टाः सोपद्रवास्ते च ।।

(लघुजातक – राशिप्रभेदाध्याय: - श्लोकसंख्या 4- 5)

अर्थात राशियों के शरीर के अंग के अनुसार रोग विषयक विचार करें तो मेषादि राशियों से संबन्धित रोगों को हम इस प्रकार से समझ सकते है ।अर्थात मेष राशि से शरीर के मस्तिष्क, शरीर एवं सिर के बाल आदि का विचार किया जाता है इसी प्रकार वृष राशि से आँख,कान, नाक, गाल, होठ, दाँत, मुख जिह्वा एवं गले का विचार किया जाता है ।मिथुन राशि से कंठ, ग्रीवा, कंधा, भुजा, कोहनी, मणिबंध, हथेली, वक्ष एवं स्तन का विचार करते हैं एवं कर्क राशि से फेफड़े, श्वास नली एवं हृदय संबंधी विमर्श किया जाता है। सिंह राशि से उदर, आंते, हृदय, गुर्दा, एवं नाभि का विचार किया जाता है ।कन्या राशि से कमर एवं नितंब का विचार किया जाता है तथा तुला राशि से वस्ति,मूत्राशय, गर्भाशय का ऊपरी भाग का विचार किया जाता है । वृश्चिक

राशि से गर्भाशय, जननेन्द्रिय, एवं गुदा का विचार किया जाता है। धनु राशि से ऊरु का विचार एवं मकर राशि से जानु एवं घुटने का विचार किया जाता है। कुम्भ राशि से जंघा, पिंडली का चिंतन एवं मीन राशि के माध्यम से पैर, टखना, पाद ताल एवं पैर की उँगलियों का विचार किया जाता है। जन्मकुंडली में इन भावों या राशियों की अच्छी स्थिति होपने से वे अंग विशेष शरीर में पुष्ट होते हैं तथा निर्बल या कमजोर होने पर उन अंग विशेष में रोग या उन अंगों की निर्बलता रहती है। वस्तुतः यही मुख्य आधार होता है ज्योतिष शास्त्र में विभिन्न रोगों के परिज्ञान के लिए। प्रस्तुत प्रसंग के अंतर्गतउदर रोग में लग्न के अतिरिक्त द्वितीय, पंचम और षष्ठ भाव और इनके स्वामियों की स्थिति पर विचार किया जाता है। सामान्यतः चंद्रमा, सूर्य, शनि,मंगल,बुध,गुरु, राहू,एवं केतू भी उदररोग में कारक माने जाते हैं।

2.4 उदररोग के भेद एवं उनके प्रमुख ज्योतिषशास्त्रीय योग -

ज्योतिष शास्त्र के अनुसार उदररोग के आठ भेद माने जाते हैं –1- वातोदर,2- पित्तोदर, 3- कफोदर, 4-सन्निपातोदर, 5 – प्लीहोदर, 6-बद्धगुदोदर,7- क्षतोदर, एवं 8- जलोदर। यथा –

पृथग्दोषः समस्तैश्च प्लीहबद्धक्षतोदकः।
सम्भवन्त्युदराण्यष्टौ तेषां लिङ्ग पृथक्पृथक्॥

(वीरसिंहावलोकः –उदररोगाधिकारः –श्लोक संख्या 17)

सामान्य अर्थ में उदर रोगों को हम निम्न प्रकार से वर्गीकृत कर सकते हैं –

1- उदररोग 2- अरुचि, अजीर्ण या मंदाग्नि रोग, 3- अतिसार, 4- संग्रहणी, 5- गुल्मरोग,6- प्लीहा रोग, 7- कृमि रोग, 8- जलोदर रोग 9- उदरशूल रोग, 10- नाभि रोग आदि।

1- उदररोग – उदर (पेट) में होने वाले रोग उदर रोग कहलाते हैं। इसका कारक ग्रह चंद्रमा होता है। चंद्रमा यदि सिंह राशि में हो , लग्न में स्थित हो, या छठे स्थान में हो तो जातक को उदर रोग होता है – इससे संबन्धित योग निम्नवत है –

1- चंद्रमा सिंह राशि में विद्यमान हो तो उदर रोग होता है यथा –

क्षुत्तृष्णोदरदन्तमानसरुजा सम्पीडितस्त्यागवान्।
विक्रान्तः स्थिरधी सुगवितमना मातुविधेयोऽर्कभे॥

(बृहज्जातक-चन्द्रराषिशीलाध्याय- श्लोक संख्या- 05)

2- षष्ठ स्थान में चंद्र विद्यमान रहे तो उदर रोग होता है –

षष्ठे वृकोदरभवै रोगैः सम्पीडितो भवति
रजनिकरे स्वल्पायुः षष्ठगते भवति संक्षीणे

(19 – श्लोक संख्या -ग्रहभावफलाध्याय -सारावली)

3- सप्तम स्थान में राहू या केतू रहे अथवा अष्टम भाव में शनि एवं लग्न में यदि चंद्रमा स्थित हो तब भी उदर रोग होता है यथा जातक तत्व के अनुसार –

मदे राहुकेतू उदररोगः।
रन्ध्रे मन्दे लग्ने चन्द्रे उदर रोगः॥

जातक)तत्वम् – षष्ठविवेक –सूत्र संख्या – 59-60)

इसी प्रकार कई और अन्य योग बताए गए हैं जिनके परिणाम स्वरूप उदररोग होने की संभावना रहती है – जैसे षष्ठ स्थान में पापग्रह, अष्टम भाव में शनि एवं शुक्र तथा सप्तम स्थान में षष्ठेश (छठे भाव का स्वामी) हो तो उदर रोग होता है। (गदावली अध्याय 02 श्लोक संख्या 28-29)।

तथा पंचम स्थान में यदि वक्री ग्रह एवं षष्ठ स्थान में लग्नेश तथा चतुर्थेश विद्यमान हो वैसी परिस्थिति भी उदररोग कारक होती है।

2- अरुचि, अजीर्ण या मंदाग्नि रोग – जब मनुष्य की पाचन क्रिया ठीक न हो वैसे रोग को अरुचि, अजीर्ण या मंदाग्नि रोग कहा जाता है। ज्योतिष शास्त्रानुसार निम्न योगों के कारण ये रोग उत्पन्न होते हैं –

जातक पारिजात ग्रंथ के अनुसार –

अजीर्णगुल्मामयशूलमेति कुजे विलग्ने विबलेऽरिनाथे।
लग्ने सपापे फणिनायके वा मन्देऽष्टमे कुक्षिरुगर्दितः स्यात्॥
– जातक पारिजात) जातकभङ्गाध्याय श्लोक --90(

अर्थात् मंगल लग्न में हो और षष्ठेश निर्बल हो तो जातक अजीर्ण तथा गुल्म रोग से पीड़ित होता है। एवं लग्न पापग्रह से युक्त हो अथवा राहु से युक्त हो एवं शनि अष्टम स्थान में हो तो उदर रोग से पीड़ित होता है।

1-सारावली ग्रन्थ के अनुसार यदि तृतीय भाव या षष्ठ भाव में गुरु विद्यमान हो तो अरुचि संबन्धित उदररोग होता है। (सारावली ग्रहभावफलाध्याय श्लोक संख्या 52-55)

2-मंदाग्नि रोग संबन्धित योग गदावली ग्रंथ के अनुसार बताए गए हैं कि यदि लग्न शनि से दृष्ट या युत हो अथवा निर्बल अष्टमेश पर पापग्रह की दृष्टि हो अथवा षष्ठ या अष्टम स्थान में शुक्र के साथ चंद्रमा हो तथा पाप ग्रह से दृष्ट हो तो मंदाग्नि रोग होता है इसी प्रकार यदि लग्न में राहु एवं अष्टम भाव में शनि हो तब भी जातक मंदाग्नि रोग से पीड़ित होता है। (गदावली अध्याय 02 श्लोक 29-30)।

3-सर्वार्थचिन्तामणि ग्रन्थ के अनुसार यदि लग्नेश एवं अष्टमेश यदि गुरु के साथ युत हो तब जातक की मृत्यु अजीर्ण (अपचन) से होती है।इसी प्रकार यदि लग्नेश एवं गुरु यदि षष्ठ भाव में स्थित हो तब भी जातक की मृत्यु अजीर्ण रोग से होती है । यथा –

मृतिं त्वजीर्णाद् गुरुसंयुतौ तौ देहेशजीवौ रिपुगावजीर्णात्
(सर्वार्थचिन्तामणि सप्तमोध्यायः श्लोक संख्या – 28)

4-सर्वार्थचिन्तामणि ग्रन्थ के ही अनुसार यदि लग्नेश, चतुर्थेश, एवं गुरु की युति से भी जातक की अजीर्ण रोग से मृत्यु होती है।एवं यदि लग्नेश, चतुर्थेश एव द्वितीयेश तीनो की यदि युति होती है तो इस योग के कारण भी जातक की अजीर्ण रोग से मृत्यु होती है।

यथा –
लग्नेश्वरे वाहननाथयुक्ते वागीश्वरेणापि युते त्वजीर्णात्।
देहेश्वरे वाहनवित्तभावनाथान्विते वा मरणं त्वजीर्णात्॥

3 अतिसार रोग संबन्धी योग- अतिसार या पेचिश रोग में बार बार दस्त आते हैं। इससे मनुष्य के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।इस रोग से संबन्धित ज्योतिषीय योगा निम्नवत है -

1- सारावली ग्रंथ के अनुसार मकर या कुम्भ राशि में स्थित बुध पर सूर्य की दृष्टि होती है तो जातक अतिसार रोग से पीड़ित होता है –

मल्लमतिसारयुक्तं बहुभक्षं निष्ठुरं प्रियालपम्।
जनयति रविणा दृष्टः सौरगृहे बोधनः ख्यातम्।
(सारावली अध्यायः 26 श्लोकः ६१)

2- यदि लग्न में राहू एवं बुध हो तथा सप्तम स्थान में में शनि एवं मंगल रहे तब भी जातक अतिसार रोग से पीड़ित होता है यथा जातकतत्वम के अनुसार –

“लग्ने तमोज्ञौ द्यूने यमारौ अतिसाररोगः”

(जातकतत्वं षष्ठविवेकः सूत्र १०४)

3- जातक पारिजात ग्रन्थ के अनुसार सप्तम स्थान का सूर्य भी अतिसार रोग उत्पन्न करता है।

4- दैवज्ञाभरण ग्रन्थ के मतानुसार षष्ठ स्थान में शुक्र हो तथा षष्ठ भाव का स्वामी पापग्रहों से युत अथवा दृष्ट होने पर अतिसार रोग होता है।

4 संग्रहणी नामक उदर रोग के योग– इस रोग में दस्त बार बार होते हैं। इस रोग से संबन्धित योग निम्न है –

1- द्वितीय स्थान में शनि या राहू के रहने पर जातक संग्रहणी नामक उदर रोग से पीड़ित होता है। यथा -

कोषे मन्दे वा राहौ संग्रहणी ।(103 जातकतत्व षष्ठ विवेक सूत्र)

2- इसी ग्रंथ के अनुसार कारकांश लग्न से पंचम भाव में केतू स्थित हो तो जातक संग्रहणी नामक रोग से पीड़ित होता है यथा –**अंशात्सुते केतौ संग्रहणी ।**जातकतत्व षष्ठ) (102 विवेक सूत्र

5 गुल्म नामक उदर रोग - उदर (पेट) में वायु गोला उठने को गुल्म रोग कहा जाता है इससे संबन्धित योग निम्नवत है –

1- सारावली ग्रंथ के अनुसार दो पापग्रहों के मध्य में यदि चंद्रमा विद्यमान हो तथा सप्तम स्थान में शनि हो तो जातक गुल्म रोग से पीड़ित होता है यथा –

मध्ये पापग्रहयोश्चन्द्रे मदनस्थितेऽर्कजे जन्तोः
श्वासक्षयविद्रधिनागुल्मप्लीहातिपीदितस्सुभगः

(सारावली अध्याय 34 श्लोक 74)

2- जातक तत्व के अनुसारकर्क, वृश्चिक या कुम्भ के नवांश में शनि के साथ चन्द्रमा हो ।यथा-

कर्कालिघटान्शे चन्द्रे समन्दे गुल्म रोगः ।

(जातकतत्व षष्ठ विवेक सूत्र 101)

3-एक अन्य योग जातक पारिजात ग्रन्थ के अनुसार यदिलग्न में स्थित सूर्य पर मंगल की दृष्टि हो ।जैसे –

लग्ने रवौ भूमिसुतेन दृष्टे गुल्मक्षयश्वासनिपीडितः स्यात्।

(जातक पारिजात अध्याय 6 श्लोक 62)

4 - यदि षष्ठ भाव में पाप सहित एवं पाप ग्रहों से दृष्ट शनि हो तो वह जातक गुल्म रोग से पीड़ित होता है। यथा –

तथाभूते शनौ गुल्मरोगो वाऽत्र विशेषतः

(सर्वार्थ चिन्तामणि अध्याय 5 श्लोक 102)

इसी प्रकार अन्य ग्रन्थो के अनुसार भी कई योग होते हैं जिनके कारण गुल्म नामक रोग होता है जैसे –

1- लग्न स्थान में शनि हो तथा षष्ठ या अष्टम स्थान में पापग्रह के साथक्षीण चन्द्रमा हो।
2- एवं निर्बल पापग्रह पंचम में तथा निर्बल पंचमेश षष्ठ स्थान में हो।
3- व्ययेश षष्ठस्थान में तथा षष्ठेश व्यय स्थान में हो तो १५ या ३०वें वर्ष मेंगुल्म रोग होता है।
4- मकर या कुम्भ राशि में लग्न में क्षीण चन्द्रमा हो तो वातजन्य गुलमहोता है।
5- शनि की राशि में षष्ठ या अष्टम स्थान में क्षीण चन्द्रमा हो तो वातजन्यगुल्म होता है। (30-29 श्लोक 3 अध्याय गदावली)

6 प्लीहा रोग– प्लीहा या तिल्ली की वृद्धि को प्लीहा रोग कहा जाता है। प्लीहा या तिल्ली आम तौर पर मानव पेट के बाँय ऊपरी चतुरभाग में स्थित होती है। इस रोग के ज्योतिषीय योग निम्नवत है –

1- जातकालङ्कार के अनुसार षष्ठेश चन्द्रमा पर पापग्रहों की दृष्टि हो तथा शुभग्रहोकी दृष्टि न् हो।

2-लग्न में शनि हो।

3-इसी प्रकार सप्तमेश एवं लग्नेश दोनो शुभ ग्रहों की दृष्टि से रहित एवं पाप ग्रहों से युत या दृष्ट होने पर भी जातक प्लीहा रोग से पीड़ित होता है

4-यदि सूर्य चतुर्थ भावस्थ हो और पाप ग्रह से दृष्ट हो।यथा –

दृष्टे क्रूरैर्न सौम्यैर्यदि रिपुगृहपे चोडुपे प्लीहवान् स्या-
देवं कामान्गानाथे तदनु रविसुतस्तुर्यगो नष्टदृष्टिः।
प्लीही स्यालग्ननाथे दिनकरतनये क्रूरनिष्पीडिते चेत्
सौख्यायुङ्गानवः स्यात्तदनुसदनगतेप्लीहवान्हर्षहीनः॥
(जातकालङ्कार: योगाध्यायः श्लोक 25)

5- जातक तत्व ग्रन्थ के अनुसार यदि - षष्ठेश चन्द्रमा पापग्रहों के साथ हो।
यथा -षष्ठेशे चन्द्रे पापयुते प्लीहरोगः। (145 जातकतत्व षष्ठ विवेक सूत्र)

6- लग्नेश अस्त हो, उस पर क्रूर ग्रहों की दृष्टि हो तथा शुक्रग्रह न देखते हो।
लग्नेशेऽस्ते क्रूरदृष्टे शुभदृग्धीने प्लीहरोगः।(146 जातकतत्व षष्ठ विवेक सूत्र)

7- चन्द्रमा जिस राशि में हो उसका स्वामी तथा षष्ठेश इन दोनों पर क्रूर-ग्रहों की दृष्टि हो।
चन्द्रेशषष्ठेशौ क्रूरमात्रदृष्टौ प्लीहरोगः।(147 जातकतत्व षष्ठ विवेक सूत्र)

8- लग्नेश या सप्तमेश चन्द्रमा पर केवल क्रूर ग्रहों की दृष्टि हो।
कामाङ्गेशे चन्द्रे क्रूरमात्रदृष्टे प्लीहरोगः।(148 जातकतत्व षष्ठ विवेक सूत्र)

9- शनि एवं मंगल के मध्य में चन्द्रमा हो तथा मकर राशि में सूर्य हो।
सौरारमध्यगे चन्द्रे मृगेऽर्के प्लीहश्वासादिः।(149 जातकतत्व षष्ठ विवेक सूत्र)

10-चन्द्रमा एवं शनि पंचम स्थान में हो।
सुतगौ मन्दचन्द्रौ प्लीहरोगी।(150 जातकतत्व षष्ठ विवेक सूत्र)

7- कृमि रोग - पेट में कीड़े पड़ने को कृमिरोग कहते हैं। इस रोग का विचार मुख्यतया सूर्यएवं चन्द्रमा से किया जाता है। इस रोग के योग इस प्रकार हैं-

(१) अष्टम स्थान में क्षीण चन्द्रमा हो।

(२) शत्रुराशिगत सूर्य की दशा में यह रोग होता है। (ज्योतिष शास्त्र में रोग विचार पृष्ठ संख्या- 97)

8 जलोदर रोग के योग -पेट में पानी भर कर नगाड़े की भाँति फूल जाने को जलोदर या जलन्धर रोगकहते हैं। यह रोग अधोलिखित ग्रहयोगों के कारण होता है-

(१) कर्क राशि में शनि तथा मेष राशि में चन्द्रमा हो।

(२) लग्न में राहु तथा लाभ स्थान में सूर्य एवं चन्द्रमा हो तो १६ वें वर्ष मेंजलोदर रोग होता है।

(३) कर्क राशि में शनि तथा मकर राशि में चन्द्रमा हो।

(ज्योतिष शास्त्र में रोग विचार पृष्ठ संख्या- 97)

उदर शूल के योग - पेट में दर्द होने को उदरशूल कहते हैं। यह रोग निम्नलिखित योगों के कारणहोता है- (ज्योतिष शास्त्र में रोग विचार पृष्ठ संख्या- 97) -

(१) षष्ठ स्थान में गुरु हो तथा षष्ठेश पापग्रहों से युत-दृष्ट हो।

(२) षष्ठ एवं द्वादश भाव में शनि एवं मंगल हों।

षष्ठान्त्यगौ मन्दारौ शूलरोगी। जातकतत्व षष्ठ वि)वेक सूत्र (133

(३) सिंह राशि में स्थित चन्द्रमा पापग्रहों से युत-दृष्ट हो।

सिंहे चन्द्रे पापार्दिते शूलरोगी ।(134 जातकतत्व षष्ठ विवेक सूत्र)

(४) लाभेश तृतीय भाव में हो।

लाभेशे सोत्ये शूलरोगी । (135 तकतत्व षष्ठ विवेक सूत्रजा)

(५) केन्द्र या त्रिकोण स्थान में सिंह राशि में शुक्र हो तथा तृतीय भाव मेंगुरु हो।

केन्द्रकोणे सिंहगे शुक्रे सोत्थे जीवे शूलरोगी ।(136 जातकतत्व षष्ठ विवेक सूत्र)

नाभि रोग के योग- नाभि में दर्द होना, नाभि का टेढ़ा होना या अपने स्थान से खिसक जाना आदिको नाभि रोग कहते हैं। ये रोग निम्नलिखित ग्रहयोगों के कारण होते हैं- (ज्योतिष शास्त्र में रोग विचार पृष्ठ संख्या- 98)

(१) लग्नेश एवं चन्द्रमा दोनों षष्ठ स्थान में हों।

(२) लग्नेश, चन्द्रमा एवं षष्ठेश तीनों साथ-साथ हों।

(३) षष्ठेश तृतीय स्थान में हो

अभ्यास प्रश्न –

6- मेष राशि शरीर के किस अंग का प्रतिनिधित्व करती है ?
7- उदर शब्द का निर्माण किस धातु से हुआ है ?
8- द्वादश भावों में रोग का विचार किस भाव से किया जाता है ?
9- उदर रोग की कारक राशि कौन सी है ?
10- ज्योतिष शास्त्रानुसार सामान्यतः उदर रोग कितने प्रकार के माने गए हैं।

2.4.1 ज्योतिषशास्त्रानुसार उदर रोग का निदान एवं उपचार –

प्रश्नमार्ग के अनुसार –

जन्मान्तरकृतं पापं व्याधिरूपेण जायते।
तच्छान्तिरौषधैर्दानैर्जपहोमार्चनादिभिः ।।

(प्रश्नमार्ग त्रयोदशोऽध्याय श्लोक संख्या 29)

पूर्व के जन्मों में किया हुआ कर्म इस जन्म में रोग के रूप में उत्पन्न होता है, उसकी शान्ति औषधि, दान, जप, होम, पूजा आदि से होती है। इसी प्रकार -

औषधं पथ्यमाहारं तैलाभ्यङ्गं प्रतिश्रयम्।
रोगिभ्यः श्रद्धया दद्याद्रोगी रोगनिवृत्तये ॥

(प्रश्नमार्ग त्रयोदशोऽध्याय श्लोक संख्या 35)

एक रोगी व्यक्ति के रोग को ठीक करने के लिए औषधदान (Medical Treatment), पथ्य (हितकर भोजन, विश्राम आदि), तैलाभ्यङ्ग (औषधसिद्ध तेलों की मालिश) तथा प्रतिश्रय (उचित नींद एवं विश्राम) इनकी व्यवस्था रोगी की श्रद्धा एवं विश्वासानुसार दें। इसी प्रकार रोग शमन के उपाय के विषय में और बताया है कि

मृत्युञ्जयहवनं खलु सर्वरुजां शान्तये विधेयं स्यात्।
सर्वेष्वपि होमेषु ब्राह्मणभुक्तिंस्तथा तथाप्तवचः ।
तीव्रज्वराभिचारादिशान्तिदं हवनं मतम्।
मृत्युञ्जयाख्यमन्त्रेणनैव केवलमायुषम्॥
तीव्रज्वरे तीव्रतराभिचारे सोन्मादके दाहगदे च मोहे।
तनोति शान्तिं न चिरेण होमः सञ्जीवनश्चाष्टसहस्रसंख्यः॥

(प्रश्नमार्ग त्रयोदशोऽध्याय श्लोक संख्या 36-38)

अर्थात् सभी प्रकार के रोगों की शान्ति के लिए मृत्युञ्जय हवन का विधान है। सभी हवनों में ब्राह्मणभोजन कराना चाहिए। तीव्रज्वर एवं अभिचार (तांत्रिक मांत्रिक कष्टदायक प्रयोग जिन्हें दूसरे रोगी के अनिष्ट हेतु करते हैं) की शान्ति इस हवन सेहोती है ऐसा कहा गया है। केवल मृत्युञ्जय मंत्र के द्वारा किये गये हवन से ही आयु की वृद्धि तथा आयु की रक्षा होती है (अन्य उपाय से नहीं) | तीव्रज्वर, तीव्र अभिचार में, उन्माद (पागलपन) तथा सभी प्रकार के मनोरोगों में , शरीर में होने वाली जलन की बीमारी में तथा मूर्छादि में मृत्युञ्जय (संजीवनी मंत्र) को यदि आठ हजार की संख्या में कराया जाय तो शीघ्र ही रोगशान्ति होती है।ग्रह जन्य दान, औषधि, मंत्र एवं रत्न इत्यादि के द्वारा रोग शमन के उपाय किये जाते हैं जो कि काफी हद तक प्रभावी भी मानी जाती है।

ग्रहों की शांति के लिए मंत्र –

ग्रह	**तांत्रिक मंत्र**	**बीज मंत्र -**
सूर्य	ॐ घृणिः सूर्याय नमः॥	ॐ ह्रीं ह्रौं सूर्याय नमः॥
चन्द्र	ॐ सों सोमाय नमः॥	ॐ ऐं क्लीं सोमाय नमः॥
मंगल	ॐ अं अङ्गारकाय नमः॥	ॐ हूँ श्रीं भौमाय नमः॥
बुध	ॐ बुं बुधाय नमः॥	ॐ ऐं श्रीं श्रीं बुधाय नमः॥

गुरु	ॐ बृं बृहस्पतये नमः॥	ॐ ह्रीं क्लीं हूँ बृहस्पतये नमः॥
शुक्र	ॐ शुं शुक्राय नमः॥	ॐ ह्रीं श्रीं शुक्राय नमः॥
शनि	ॐ शं शनैश्चराय नमः॥	ॐ ऐं ह्रीं श्रीं शनैश्चराय नमः॥
राहु	ॐ रां राहवे नमः॥	ॐ ऐं ह्रीं राहवे नमः॥
केतू	ॐ कें केतवे नमः॥	ॐ ह्रीं ऐं केतवे नमः॥

ग्रह संबंधी रत्न - सूर्य की प्रसन्नता के लिए माणिक्य, चन्द्रमा के लिए मोती, मंगल के लिए मूगा, बुध के लिए पन्ना, गुरु के लिए पुष्पराग, शुक्र के लिए हीरा, शनि के लिए नीलम, राहु के लिए गोमेद तथा केतु के लिए वैदूर्य (लह- सुनियाँ) धारण करना चाहिये। इनके अतिरिक्त बुध की प्रसन्नता के लिए सोना भी धारण किया जाता है । यदि मूल्यवान रत्नों को धारण करने का सामर्थ्य न हो तो स्वल्प मूल्य वाले रत्नों को धारण करने के लिए ग्रहानुसार रत्न बतलाये गये हैं।) राहु और केतु की प्रसन्नता के लिए लाजावर्त, शुक्र और चन्द्रमा के लिए चाँदी, गुरु के लिए मोती, शनि के लिए लोहा तथा मंगल और सूर्य के लिए मूंगा धारण करना चाहिये ।

यथा- माणिक्यमुक्ताफलविद्रुमाणि गारुत्मकं पुष्पकवज्रनीलम् ।

गोमेदवैदूर्यकमर्कतः स्यू रत्नान्यथो ज्ञस्य मुदे सुवर्णम् ॥

धार्यं लाजावर्तकं राहुकेत्वो रौप्य शुक्रन्द्वोश्च मुक्ता गुरोस्तु ।

लोहं मन्दस्यार-भान्वोः प्रवालं..... ।

(मुहूर्तचिंतामणि गोचरप्रकरण श्लोक 10-11)

इसी को हम निम्न सारिणी के माध्यम से स्पष्ट तरीके से समझ सकते हैं यथा -

ग्रह	**रत्न**	**उपरत्न**
सूर्य	माणिक्य	सूर्य कान्त मणि
चन्द्र	मोती	चंद्रकान्त मणि
मंगल	मूंगा	विद्रुम मणि
बुध	पन्ना	मरगज
गुरु	पुखराज	सुनेला
शुक्र	हीरा	कुरंगी

शनि	नीलम	जमुनिया, लाजावर्त
राहु	गोमेद	तुरसा, लाजावर्त
केतू	लहसुनिया	फिरोजा

विभिन्न ग्रहों की दान वस्तुएं एवं औषधियाँ निम्नवत है –

ग्रह	दान वस्तुएं	औषधियाँ
सूर्य	गेहूँ, गुड, ताम्र, स्वर्ण, रक्तचन्दन, माणिक्य, लालवस्त्र, अलंकार सहित सवत्सा गौ।	इलायची, देवदारु, खश, केशर, मुलेठी, कनेर के फूल।
चंद्रमा	बांस के पात्र में चावल, घी से भरा कुम्भ, घी से भरा कुम्भ, मोती, चांदी, श्वेत वस्त्र, कपूर, वृषभ, दही एवं शंख।	पंचगन्ध, गजमद, शंख, सीप, श्वेतचन्दन एवं स्फटिक।
मंगल	गेहू, गुड़, ताम्र, स्वर्ण, मूगा, रक्तबैल, लालवस्त्र, रक्तचन्दन, मसूर एवं लाल कनेर के फूल।	विल्वछाल, रक्तचन्दन, धमनी, रक्तपुष्प, सिंगरफ, मालकांगनी, मौलसिरी।
बुध	नीलावस्त्र, हरापुष्प, हाथी दाँत, सोना, दासी, मूग, घी, कांस्यपात्र, भेड़ एवं पन्ना।	गोबर, मधु, अक्षत, फल, स्वर्ण, मोती एवं गोरोचन।
गुरु	हल्दी, पीलावस्त्र, शर्करा, चने की दाल, सोना, लवण, पुखराज, घोड़ा एवं पीले रंग का फूल।	मालतीपुष्प, पीली सरसों, मुलहटी, मधु एवं मालती।
शुक्र	सोना, चित्रविचित्र रंग का कपड़ा, चांदी, गौ, श्वेत, घोड़ा, हीरा, घृत, चावल कपूर एवं श्वेत पुष्प।	इलायची, मैनसिल, सुवृक्षमूल एवं केशर।
शनि	तिल, कम्बल, कालावस्त्र, लोहा, तेल, गोमेद, घोड़ा, चाँदी, ऊन एवं।	कालेतिल, सुरमा, लोबान, धमनी, सौंफ, मुत्थरा एवं खिल्लां।
राहू	तिल, कम्बल, कालावस्त्र, लोहा, तेल, गोमेद, घोड़ा, चाँदी, ऊन एवं।	लोबान, तिलपत्र, मुत्थरा, हाथी दांत एवं कस्तूरी।
केतु	तिल, कम्बल, तैल, शस्त्र, वैदूर्य, कस्तूरी, नीलेफूल, ऊन, एवं नमक।	लोबान, तिलपत्र, मुत्थरा, हाथी दाँत एवं कस्तूरी।

उपर्युक्त प्रक्रिया के माध्यम से निश्चित तौर पर ग्रह जन्य दुष्प्रभावों के न्यून कर उदर रोग एवं अन्यरोगों में न्यूनता या उनका शमन किया जा सकता है। अतः उदर रोग आदि के परिज्ञान एवं उनके शमन आदि में ज्योतिष शास्त्र की अत्यंत उपयोगिता है।

अभ्यास प्रश्न – 2

6- सामन्यतः कहा जाता है कि पूर्व के जन्मों में किया हुआ कर्म इस जन्म में ....के रूप में उत्पन्न होता है।

7- सामान्यतः चंद्रमा सिंह राशि में विद्यमान हो तो .... रोग होता है।

8- सूर्य का तांत्रिक मंत्र है। ....

9- चंद्र का रत्न है। ....

10-गुरु ग्रह की दान वस्तुएँ हैं। ....

2.5 सारांश –

प्रस्तुत इकाई के माध्यम से हमने ज्योतिष शास्त्र के अनुसार उदर रोग से संबन्धित विषयों को जाना। शास्त्रों में कर्मप्रकोप एवं दोषप्रकोप को रोगोत्पत्ति का कारण माना गया हैं। आचार्य कल्हण के अनुसार सामान्यतया मिथ्या आहार एवं विहार से रोग उत्पन्न होते है। किन्तु जब मनुष्य ऋतु के अनुसार आहार विहार करता हो, सद्वृत्ति का सेवन करता हो एवं रोगोत्पत्ति का मौसम भी न हो और अचानक रोग उत्पन्न हो जाय तो उस रोग को कर्मजन्यरोग मानना चाहिए।यथा कहा है कि –

"कर्मजा व्याधयः केचित् दोषजाःसन्ति चापरे"

निज तथा आगन्तुज भेद से रोग दो प्रकार के होते हैं, फिर इन दोनों में से प्रत्येकके दो दो-भेद हैं।) शारीरिक (क) –- (सहजरोग) निज रोग (१)Physical तथा चित्तोत्थ (ख) =मानसिक)Mentaldisease) दो प्रकार के होते हैं। दृष्ट निमित्तजन्य (क) आगन्तुक रोग (२) (जिनके कारण का प्रत्यक्ष पता रहता है), (खजिनके कारण का प्रत्यक्षतः) अदृष्ट निमित्तजन्य (पता नहीं लगता जैसे भूततिषशास्त्र में रोग का विचार करने के लिए मुख्य तीन।ज्यो (प्रेतादि- -1 तत्व प्रधान होते हैंग्रह -2राशि एवं 3 – भाव। इनकी प्रकृति, परस्पर स्थिति आदि के द्वारा ही रोग आदि का विचार किया जाता है।उदर शब्द का निर्माण उत् धातु से होता है जिसके पर्यायवाची शब्द कुक्षि, जठर, तुन्द, पिचण्ड या पेट है। उदर रोग से तात्पर्य है – **"नाभिस्तनयोर्मध्ये ये रोगविशेषा ते उदररोगाः"**अर्थात् नाभि और स्तनोंके मध्य में रहने वाले प्रत्यंगों में रहने वाले रोगों को उदर रोग कहा जाता है। उदररोग आगंतुक रोग की श्रेणी में आता है। ज्योतिष शास्त्र के अनुसार उदररोग के आठ भेद माने जाते हैं वातोदर -1–,2- पित्तोदर, -3 कफोदर,-4 सन्निपातोदर, – 5 प्लीहोदर,-6 बद्धगुदोदर,7- क्षतोदर, एवं -8जलोदर। इन रोगों के ज्योतिषीय आधार को हमने जाना एवं ज्योतिष शास्त्र के द्वारा इन रोगों के समाधान के लिए ग्रह उपासना विधि को भी जाना अतः उदर रोग विषयक यह इकाई निश्चित तौर पर हमारे ज्योतिषीय ज्ञान में वृद्धि करने में सहायक है।

2.6 शब्दावली –

उदर रोग = पेट से संबन्धित रोगों को उदर रोग कहा जाता है।

उन्माद = पागलपन को उन्माद कहा जाता है।

तीव्रज्वर = ज्वर जब अधिक मात्रा में हो अर्थात तेज बुखार को तीव्र ज्वर कहा जाता है।

कृमि रोग - पेट में कीड़े पड़ने को कृमिरोग कहते हैं।

गुल्म रोग– अजीर्ण रोग।

तैलाभ्यङ्ग =औषधसिद्ध तेलों की मालिश या उनको लगाना।

चतुर्थेश= चतुर्थ भाव के स्वामी ग्रह को चतुर्थेश कहा जाता है।

युति = ज्योतिष शास्त्र में युति से तात्पर्य दो या दो से अधिक ग्रहों का एक ही राशि में रहना।

2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर –

अभ्यास प्रश्न – 1

2- मस्तिष्क, – 2 उत् धातु, -3 षष्ठ भाव , - 4 सिंह, -5आठ

अभ्यास प्रश्न 2 –

1- रोग, – 2उदर रोग, -3ॐ घृणिः सूर्याय नमः॥, – 4मोती (मुक्ता), -5हल्दी, पीलावस्त्र, शर्करा, चने की दाल, सोना, लवण, पुखराज, घोड़ा एवं पीले रंग का फूल।

2.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची -

1.:-लघुपाराशरी व्याख्याकार डॉ. सुरकान्तझा,चौखम्भासुभारती प्रकाशन वर्ष 2007(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक),के 37/117 गोपाल मन्दिर लेन पां. बा.न. 1129, वाराणसी , 22101दूरभाष2335263

(2):-जातकपारिजात : व्याख्याकार डॉ. हरिशंकर पाठक,संस्करण वर्ष 2012, चौखम्भासुभारती प्रकाशन वाराणसी,

(3):-बृहत्पाराशरहोराशास्त्रम् - चौखम्भासुभारती प्रकाशन वाराणसी,टीकाकार पं. पद्मनाभ शर्मा प्रकाशन वर्ष 2012

(4):-भारतीय ज्योतिष - लेखक डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री,भारतीय ज्ञानपीठ संस्करण वर्ष 2002

(5)मुहूर्तचिन्तामणिः डॉ. रामचन्द्रपाण्डेय,चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, के० ३७/११८, गोपाल मन्दिर लेन (गोपाल मन्दिर के उत्तरी फाटक पर),पो० बा० नं० १११८, वाराणसी-२२१००१ (भारत)

(06)जातकपारिजात- लेखक – श्रीवैद्यनाथ, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, प्रकाशन वर्षदशम्, वि० सं० २०६१ (सन् २००४)© चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसीफोन : २३३३४४५

(09) सारावली – व्याख्याकार - डॉ. सुरकान्तझा,प्रकाशक : चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी,के० ३७/११८, गोपाल मन्दिर लेन गोलघर (मैदागिन) के पास)संस्करण : द्वितीय, वि०सं० २०७०, सन् २०१३ISBN: 81-218-0192-3

(10) ज्योतिष शास्त्र में रोग विचार – डा शुकदेव चतुर्वेदी,मोतीलाल बनारसी दास, चौक – वाराणसी ,(11) बृहज्जातकम् – व्याख्याकार पं० केदारदत्त जोशी,प्रथम संस्करण: वाराणसी, १९८५, प्रकाशक – मोतीलाल बनारसीदास चौक, वाराणसी २२१००१

2.9 सहायक पाठ्यसामग्री -

(1) कल्याण – ज्योतिषतत्त्वांक,गीताप्रेस, गोरखपुरवर्ष:८८संख्या : १

(2)ज्योतिष-सिद्धान्त-मञ्जूषा – लेखकः प्रो० विनयकुमारपाण्डेयः,चौखम्भा सुभारती प्रकाशन वर्ष 2013(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक),के 37/117 गोपाल मन्दिर लेन पां. बा.न. 1129, वाराणसी , 22101

(03) नैसर्गिकी- नैसर्गिकी शोध संस्था,38 मानस नगर, वाराणसी -221005, (04) – इंटरनेट

2.10 निंबंधात्मक प्रश्न –

1- ज्योतिष शास्त्रानुसार रोग विचार विषय पर टिप्पणी लिखिए।
2- उदर रोग के बारे में सक्षेप में लिखिए।
3- उदर रोग संबंधी ग्रह स्थिति को उदाहरण सहित समझाइए।
4- ग्रहों की उपासना पद्धति के बारे में लिखिए।
5- प्रस्तुत इकाई का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।

इकाई 03 दन्त रोग

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देष्य

3.3 जन्मोपरान्त दन्तोत्पत्ति फल विचार

3.4 ज्योतिष षास्त्रोक्त कतिपय दन्तरोग योग

3.4.1 वराहमिहिरोक्त दन्तरोग योग एवं उदाहरण

3.4.2 जातकालंकारोक्त दन्तरोग योग एवं उदाहरण

3.4.3 गदावली प्रोक्त दन्तरोग योग एवं उदाहरण

3.4.4. आधुनिक मत में दन्तरोग के भेद

3.5 दन्तरोगोत्पत्ति काल

3.6 दन्तरोग प्रषमनार्थ कृत्याकृत्य विचार

3.7 सारांष

3.8 पारिभाषिक षब्दावली

3.9 अभ्यास प्रष्नों के उत्तर

3.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3.11 सहायक पाठ्यसामग्री

3.12 निबन्धात्मक प्रष्न

3.1 प्रस्तावना

ज्योतिष षास्त्र के विविध आयाम षास्त्रीय ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं । ज्योतिष षास्त्र के तीन प्रमुख स्कन्ध वराहमिहिरादि आचार्यो के द्वारा प्रतिपादित किये गये है तथा प्रत्येक विभाग में किन किन विषयों का समावेष होता है यह भी बताया गया है । इसी श्रृंखला में विविध रोगो के परिज्ञान हेतु होरा षास्त्र व्यवस्थित किया गया है । जातक के जीवन में किस प्रकार के रोग उत्पन्न होंगे तथा किस समय जायमान होगें इन सभी का स्पष्ट परिज्ञान दैवज्ञ द्वारा ज्योतिषीय जन्मकालिक ग्रहों नक्षत्रों इत्यादि के आधार पर किया जाता है । मानव षरीर संरचना में मूल रूप से सप्त धातुओं (अस्थि, मज्जा, स्नायु, वसा, रक्त, वीर्य, त्वग) का तथा वात, कफ एवं पित्त का विषेष प्रभाव होता है । इन सभी के साम्यावस्था में हानें के कारण मनुष्य स्वस्थ रहता है तथा जब इन सभी का वैषम्य होता है या ये सभी जब न्यूनाधिक्य मात्रा में होते हैं अथवा जब इन सभी का असंतुल आहार, विहार, चिन्तन इत्यादि के द्वारा होता है तभी मानव षरीर में रोगों की उत्पत्ति होती है । इन सभी विविध रोगों की श्रृंखला में जन्म के उपरान्त से ही दन्त विषयक षुभाषुभ फलों का चिन्तन किया जाता है । प्रस्तुत पाठ में दन्त रोग के विषय मेंषास्त्रीय प्रमाणों सहित सारभूत तथ्य उपस्थापित किया गया है ।

3.2 उद्देष्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप ...

- जान सकेंगे कि दन्त रोग की अवधारणा ज्योतिष में किस प्रकार से है ।
- जान सकेंगे कि दन्त रोग किस प्रकार से होता है ।
- समझ सकेंगे कि किस प्रकार होता है ।
- जान सकेंगे कि किस प्रकार से की जाती है।

3.3 जन्मोपरान्त दन्तोत्पत्ति फल विचार

मानव षरीर में दांत ही वह ऐसा अवयव है जो जन्म के समय में नहीं होता है किन्तु जन्म के अनन्तर पंचमादि मासों से उत्पन्न होनें लगता है । कुछ अपवाद परिस्थिति में जन्म के समय ही षिषु के दन्त होते है जिसे प्रायः अषुभ माना जाता है । मानव षरीर में जन्म के समय प्रायः सभी अंग प्रत्यंग होते हैं किन्तु दन्त अवयव उन सभी में नहीं होता है । यह जन्म के बाद आता है तथा षिषु के द्वारा पान किये गये दुग्ध इत्यादि तरल पदार्थो के द्वारा ही उत्पन्न होता है । इस कारण से इस अवयव का विषेष रूप से विचार किया जाता है अपि च दन्त के सही अवस्था में कार्य करनें पर ही हमारी पाचन षक्ति का निर्माण होता है और उसके अनन्तर सभी सप्त धातुओं का निर्माण होता है । इस कारण से इस अवयव का हमे विषेष रूप से देखभाल करना चाहिए । अन्यथा विपरीत स्थिति होनें पर मानव भोजनादि ग्रहण करनें में असमर्थ होता है ।

दन्त रोग के विषय में जब हम चर्चा करते है तो प्राप्त होता है कि यह रोग जन्म काल से ही षिषु को प्रभावित करता है तथा आजीवन भर मानव इस पीडा से व्यथित रहता है । जन्म काल में किस मास में दन्तोद्गम होता है यह भी विषेष विचारणीय होता है क्योकि जब षिषु के दांत निकलने लगते है तो उसे अत्यधिक पीडा है और चिकित्सक से परामर्ष लेना पडता है । जन्म के उपरान्त किस मास में दन्त उत्पन्न होता है तथा उसका क्याषुभाषुभ फल षास्त्रों में बताया गया है इस पर विषेष रूप से विचार किया गया है प्राचीन षास्त्रों में । इस विषय में कहा गया है कि –

मासे चेत् प्रथमे भवेत् सदषनो बालो विनष्येत् स्वयं

हन्यात् स कमतोऽनुजातभगिनिमात्रग्रजानान् द्यादिके ।

षष्ठादौ लभते हि भोगमतुलं तातात्सुखं पुष्टतां

लक्ष्मीं सौख्यमथो जनौ सदषनो वोर्ध्व स्वपित्रादिहा।।

ष्लोक का भावार्थ इस प्रकार है कि यदि जन्म के सहित ही षिषु के दन्त हो तो बालक स्वयं का नाष करता है । यदि जन्म के द्वितीय मास में षिषु के दन्त का उद्गम हो तो वह षिषु अपने अनुज का नाष करता है । यदि तृतीय मास में दन्त का उद्गम हो तो वह षिषु अपनी बहन को कष्ट देता है । चतुर्थ मास में यदि षिषु के दन्त का उद्गम हो तो माता को कष्ट देता है । पंचम मास में यदि दन्तोत्पत्ति हो तो वह षिषु अपने अग्रज को कष्ट देता है । इसके उपर के मासों में यदि दन्तोद्गम हो तो लाभ प्राप्त होता है । कहने का तात्पर्य यह है कि यदि जन्म से पांच मास तक षिषु के दन्तोद्गम होते हैं तो वह कष्ट देने वाले होते हैं उसके उपर सर्वदा सुख देते है ।

जन्म के यदि षष्ठ मास में यदि षिषु के दन्तोद्गम होते हैं तो वह अत्यन्त भोग को देनें वाले होते हैं । यदि सप्तम मास में हो तो पिता सुख प्राप्त होता है । यदि अष्टम मास में हो तो पुष्टि को देनें वाला होता है । यदि नवम मास में हो तो लक्ष्मी दायक कहा गया है । यदि दषम मास में हो तो सुख प्रदान करनें वाला होता है । इसके उपर के मासो में यदि हो तो पिता इत्यादि को कष्ट देनें वाला होता है । इस बात को चक्र के माध्यम से सरलता पूर्वक समझा जा सकता है ।

मास	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
फल	स्वयं नाष	अनुज नाष	भगिनी नाष	मातृ नाष	अग्रज नाष	अतुल भोग	पितृ सुख	पुष्टि	लक्ष्मी	सुख

3.4 ज्योतिष षास्त्रोक्त कतिपय दन्तरोग योग

ज्योतिष षास्त्र के होरास्कन्धादि ग्रन्थों में अनेक ग्रहों एवं नक्षत्रों तथा राषियों के आधार पर दन्तरोगों का वर्णन किया गया है । प्रायः फलकथन काल में

यह देखने में आया है तथा षास्त्रों में भी प्राप्त होता है कि जितने भी पाप ग्रह है (सूर्य, मंगल, षनि, पापयुक्त चन्द्र) वे प्रायः ऐसे रोगो को देते है जो बाह्य रूप में दिखाई दते है और षुभ ग्रह ष(पूर्ण चन्द्र, बुध, गुरू, षुक्र) ऐसे रोगों को जन्म देते है जो प्रायः आन्तरिक होते हैं और दिखाई नहीं देते है । जैसे किसी को हार्ट अटैक होता है तो वह दिखाई नहीं देता है केवल प्रातिभासिक होता है और आभ्यन्तर भाग से सम्बन्धित होता है । हड्डी टूटना या अन्धत्व को प्राप्त होना इत्यादि रोग बाह्य होते हैं और पीडा होनें पर दिखाई देते है । इसी प्रकार दन्त रोग भी होता है । यदि दांत में किसी प्रकार की पीडा होती है या फिर कीडे लग जाते है तो वे सभी बाह्य रूप से दिखाई देते है । अतः दन्तरोगोत्पत्ति में भी प्रायः अषुभ ग्रहों का ही योगदान रहता है । कुछ विषेष परिस्थिति में षुभ ग्रह भी कारक बन जाते है । ज्योतिष षास्त्र के प्रायः सभी होराविदो ने अपने अपने ग्रन्थों में विविधरोगों की चर्चा करते समय दन्तरोग की भी चर्चा की है । जिसका संक्षितप्त परिचय निम्नलिखित प्रकार से किया गया है कि कौन सी ऐसी ग्रहस्थितियां है जो मनुष्य के अन्दर दन्तरोग को उत्पन्न करती है । सर्वप्रथम इसी बात को आचार्य वराहमिहिर कहते है और कुछ ग्रह योग बताते है जो प्रायः दन्तरोग की सूचना को द्योतित करते हैं ।

3.4.1 वराहमिहिरोक्त दन्तरोग योग एवं उदाहरण

ज्योतिष षास्त्र के मानुषीय अनार्ष परम्परा के आद्य प्रवर्तक आचार्य वराहमिहिर ने भी अपने ग्रन्थ बृहज्जातकं ग्रन्थ के अनिष्टाध्याय में दन्तरोग के कतिपय योगो का वर्णन किया है ।

नवमायतृतीयधीयुता न च सौम्यैरषुभा निरीक्षिताः ।

नियमाच्छ्रवणोपघातदा **रदवैकृत्यकराष्च सप्तमे ।।**

वराहमिहिर कहते हैं कि यदि सप्तम भाव में सूर्य, चन्द्र, मंगल या षनि हो और उन पर षुभ ग्रह की दृष्टि न हो तो दांत में अवष्य ही विकृति उत्पन्न करते हैं या किसी रोग को जन्म देते हैं या फिर विषेष पीडा उत्पन्न करते है । जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि पाप ग्रह प्रायः दृष्टरोग उत्पन्न करते हैं । दन्त विकृति भी दृष्ट रोगों की श्रेणी में आती है । अतः सूर्यादि पापग्रहों का सप्तम भाव में होना निश्चत रूप से दन्तरोगों को उत्पन्न करता है । यदि सप्तमस्थ पापग्रहों पर किसी बलवान षुभग्रहों की दृष्टि हो तो दन्तविकृति या दन्तरोगादि उत्पन्न नहीं होते हैं । यदि दन्तादि रोग उत्पन्न भी हो जाए तो षीघ्र ही समाप्त हो जाते हैं अथवा चिकीत्सकीय परामर्ष से प्रषमन हो जाते हैं । सप्तम भाव में कोई सी भी राषि हो तथा उसमें षुभग्रह

दृष्टि विहीन पापग्रह होनें से दन्तविकृति होती है। एक कल्पित उदाहरण से आप इसे सरलतया समझ सकते हैं ।

वृष लग्न

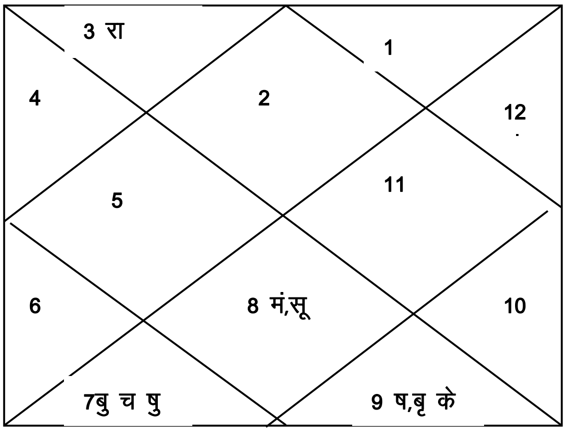

उदाहरण में सप्तम भाव में पाप ग्रह सूर्य और मंगल है तथा यह दोनों किसी भी षुभ ग्रह से दृष्ट नहीं हैं अतः ऐसी स्थिति में जातक को दन्त रोग की संभावना प्रबल दिखाई दे रही है । सभी पाप ग्रहों में से कोई एक भी यदि ग्रह सप्तम भाव में हो तो दन्तरोग की समस्या उत्पन्न करना है किन्तु यदि एकाधिक ग्रह हो तो निष्चित रूप से ही दन्त रोग को सूचित करते हैं।

3.4.2 जातकालंकारोक्त दन्तरोग योग एवं उदाहरण

फलकथन हेतु सर्वोपयुक्त ग्रन्थ जातकालंकार में भी दन्त रोग का योग बताया गया है जो वास्तविक रूप में प्रत्यक्ष रूप से घटित होता है और अनुभव में भी प्राप्त होता है । ष्लोक इस प्रकार है –

दन्ते दन्तच्छदे वा कुमुदपतिरिपुः संस्थितः षष्ठभावे ।

केतुर्वा.......

जैसा कि आप जानते है रोग का विचार मुख्य रूप से छठे भाव से किया जाता है । इसी भाव को मुख्य मानकर गणेष कवि कहते हैं कि यदि जन्मकुण्डली के छठे भाव में राहु हो अथवा केतु हो तो जातक को निष्चित ही दन्तरोग होता है अथवा दन्त के अधोभाग में निष्चित ही रोग होता है । इस तथ्य को उदाहरण के माध्यम से समझते हैं ।

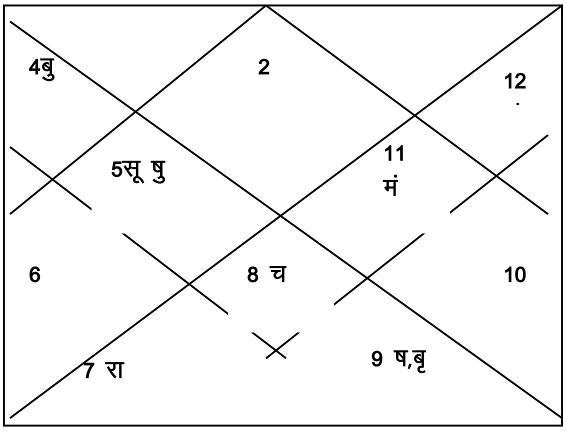

प्रस्तुत उदाहरण में वृष लग्न एवं वृष्चिक राषि की कुण्डली है । सप्तम भाव में तुला राषि में राहु बैठा हुआ है अतः निष्चित रूप से जातक को किसी न किसी प्रकार से दन्त रोग की समस्या अवष्य ही बनी रहेगी । इसी प्रकार यदि केतु भी सप्तम भाव में किसी भी राषि का हो तो वह भी दन्तरोग की समस्या को अपने दषा एवं अन्तर्दषा काल में प्रदान करता है । इसी प्रकार अन्यत्र भी समझना चाहिए ।

3.4.3 गदावली प्रोक्त दन्तरोग योग एवं उदाहरण

ज्योतिष षास्त्र में रोग विचार हेतु प्रमुख ग्रन्थ है गदावली । जिसमें अनेक प्रकार के रोगों का संग्रह किया गया है तथा यह ग्रन्थ सर्वोपयोगी मान्य है । इस ग्रन्थ में दन्त रोग के कतिपय योगों को स्पष्ट रूप से बताया गया । जैसा कि बताया गया है –

कोदण्डाजवृषोदयेऽघखचरैः संवीक्षितेऽथांगगौ ।

जीवाही तत आस्फुजिद्रविजयोर्याम्ये खलेऽरातिगे ।।

तन्नाथे मदगेऽथ भौमभवनेऽरीषे कुजांगेष्वरौ ।

लग्नस्थौ षनिवीक्षितौ रदगदी तद्वत्सपापेऽर्थपे ।।

प्रस्तुत ष्लोक में दन्त रोग के अनेक योगो को बताया गया है । सर्वप्रथम कौन कौन से लग्नो में दन्तरोग की सम्भावना प्रबल होती है । अधोलिखित सभी योग दन्तरोग से सम्बन्धित है । इस विषय में कहते हैं कि –

1. मेष वृष और धनु यह तीन लग्न यदि पापग्रह से दृष्ट हो तो दन्तरोग को जन्म देते हैं ।

2. लग्न में गुरू तथा राहु हो तो भी दन्तरोग को जन्म देता है ।

3. अष्टम भाव में षुक्र तथा षनि हो तो दन्तरोग होता है ।

4. षष्ठ में पापग्रह हो और सप्तम भाव में षष्ठेष हो तो भी दन्तरोग होता है ।

5. मंगल की राषि मेष या वृष्चिक में षष्ठेष हो तो भी दन्तरोग देता है ।

6. लग्न में लग्नेष तथा मंगल हो और वे षनि से दृष्ट हो तो जातक को दन्तरोग होता है ।

इसी प्रकार के अन्यान्य बहुधा योग दन्तरोग से सम्बन्धित ज्योतिष षास्त्र के ग्रन्थों में बताए गए है । विषेष अनुसन्धानात्मक दृष्टि हेतु आप देख सकते हैं।

3.4.4. आधुनिक मत में दन्तरोग के भेद

दांत में विकृति हानें के अनेक साक्ष्य आधुनिक चिकित्सा पद्धति में प्राप्त होते हैं । जैसे दांतो के मध्य में पर्याप्त अन्तर होना या दांत टेडे मेडे हो जाना या दांत में कीडे द्वारा गड्ढे पड जाना अथवा दांत उपर नीचे हो जाना । इस प्रकार के अनेक दन्त विकृति वाले मनुष्य दिखाई देते हैं । एक आधुनिक चित्र के माध्यम से इस तथ्य को सरलता से आप समझ सकते हैं

अभ्सास प्रष्न – 1

1. प्रथम मास मे सदन्त जन्म हो तो क्या फल होता है ?
   क. स्वयं नाष ख. मातृनाष
   ग. पितृनाष ग. भगिनी नाष

2. षष्ठ मास में दन्तोद्गम हो तो क्या फल होता है?

क. मातृनाष ख. अतुल भोग
ग. सुख घ. पुष्टता

3. षष्ठ भाव में राहु हो तो क्या होता है?
क. नेत्र रोग ख. वक्ष रोग
ग. दन्त रोग ग. हृदय रोग

4. रद षब्द का क्या अर्थ है ?
क. दन्त ख. नेत्र
ग. हस्त घ. पैर

5. कौन से लग्न में दन्त रोग की प्रबल सम्भावना रहती है?

क. मेष ख. वृष

ग. धनु घ. ये सभी

3.5 दन्तरोगोत्पत्ति काल

ज्योतिष षास्त्र द्वारा ग्रहों के फल निर्धारण हेतु दषा एवं अन्तर्दषा इत्यादि का विषेष विचार किया किया जाता है क्योकि ग्रह अपनी दषा एवं अन्तर्दषा में ही अपने षुभाषुभफलों को प्रदान करते है । अतः जो ग्रह दन्तरोग कारक होते हैं वे अपनी दषा में ही दन्त रोग को देते हैं । जैसे षष्ठ भाव में यदि राहु हो तो दन्त रोग उत्पन्न करता है अतः जातक की कुण्डली में जब राहु की महादषा एवं अन्तर्दषा आएगी तो निष्चित रूप से जातक को दन्तरोग से पीडा होगी । इसके अतिरिक्त सम्बन्धित पापग्रह की दषा में भी दन्त रोग होता है । समय फल कथन हेतु बहुत सावधानी रखनी पडती है ।

3.6 दन्त रोग प्रषमनार्थ कृत्याकृत्य विचार

सर्वप्रथम ग्रहयोगों के आधार पर बात करे तो इस प्रकार के साक्ष्य मिलते हैं कि यदि दन्तरोगोत्पत्ति कारक ग्रहों या भावों या नक्षत्रों या राषियों के उपर किसी बलवान् षुभग्रह की दृष्टि हो तो वह दन्त रोग उत्पन्न ही नहीं होता है । यदि उत्पन्न भी होता है तो बहुत ही सामान्य मात्रा में उसकी उपस्थिति होती है । यदि रोग हो भी जाए तो जन्द ही वह चिकित्सकीय परामर्ष के बाद ठीक हो जाता है या फिर कुछ दिनों की पीडा के बाद स्वतः ही समाप्त हो जाता है । अतः दन्त रोग प्रषमार्थ सर्वप्रथम यही परिहार है कि दन्तरोगोत्पत्ति कारक ग्रहों इत्यादि के उपर यदि बलवान् षुभ ग्रह की दृष्टि हो या फिर सम्बन्धित ग्रह के साथ या भाव में या सम्बन्धित राषि में भी षुभ ग्रह हो तो वह रोग प्रषमन हो जाता है । दीर्घ काल तक उसकी स्थिति नहीं बनी रहती है । अतः दन्तरोग विचार करते समय उसके परिहारों का भी अवष्य ही अवलोकन करचा चाहिए ।

यदि रोग उत्पन्न हो और अत्यन्त पीडा दायक हो तो उसके परिहारार्थ सम्बन्धित ग्रहों का उपाय अवष्य करना चाहिए जिससे उस ग्रह का दुष्प्रभाव कम होता है और लाभप्रद रहता है ।

चिकित्सकीय परामर्ष सर्वदा लेते रहना चाहिए क्योकि ज्योतिष और आयुर्वेद का सर्वदा से ही अन्तःसम्बन्ध रहा हे । चिकित्सकीय परामर्ष के साथ साथ ग्रहों के षान्त्यर्थ भी उपाय करते रहना चाहिए । यदि तीव्रकारी ग्रहस्थितियां रहती है तो औषधी इत्यादि भी अपना कार्य नहीं करते हैं क्योकि कहा गया है –

ग्रहेषु प्रतिकूलेषु नानुकूलं हि भेषजम् ।

अतः ग्रहों के अनुकूलता एवं प्रतिकूलता का विधिवत् विचार कर लेनें के बाद ही तदनुकूल औषधी और उपायों का अवलम्बन्ध करना चाहिए । सर्वप्रथम प्रतिकूल कारक ग्रह को उपायो द्वारा अनुकूल बना करके औषधी का सेवन करने से षीघ्र ही लाभप्रद होता है ।

पूर्वोक्त जितनें भी दन्तरोगोत्पत्तिकारक ग्रह कहे गए है । जन्म कुण्डली द्वारा उनका विधिवत् परिज्ञान कर लेने के बाद समयादि के अनुरूप तद् तद् सम्बन्धित ग्रहों के षान्त्यर्थ सम्बन्धित ग्रहों का जप अनुष्ठान, हवन, तर्पण, मार्जन, दान रत्नादि का अवलम्बन करने से ग्रहजनित दन्तरोग पीडा धीरे धीरे क्षीयमाण होनें लगती है ।

जैसे यदि दन्तरोगोत्पत्ति कारक राहु है और अपनी दषा या अन्तर्दषा या गोचर से दन्तरोग उत्पन्न कर रहा है तो उसके लिए राहु के वैदिक मन्त्रों या तान्त्रिक मन्त्रों या पौराणिक मन्त्रों द्वारा पुरष्चरण करना चाहिए । तदुपरान्त लाभप्रद स्थिति निर्मित होती है । इसी प्रकार से राहु से सम्बन्ध पदार्थो का भी दान करने से लाभ होता है । जैस काला कम्बल तिल इत्यादि । विषेष असहनीय पीडा की स्थिति में छाया पात्र दान करना सर्वोत्तम माना गया है । किसी कांस्यादि पात्र में दक्षिणादि सहित घृतादि द्रव्य रखकर उसमें पूर्णमुख को देखकर किसी दीनादि जन को दान देने से त्वरित लाभ होता है । जैसा कि कहा भी गया है –

पूर्वजन्मान्तरकृतपापं व्याधिरूपेण बाधते ।

तच्छान्तिरौषदैर्दानैः जपहोम सुरार्चनैः ।।

अभ्सास प्रष्न – 2

6. वृष लग्न में सप्तमेष कौन होगा?
   क. बुध ख. षुक्र
   ग. मंगल घ. गुरू
7. भेषज का क्या अर्थ होगा?
   क. रोग ख. ष्दन्त
   ग. ग्रह घ. औषधी

8. दन्त रोग हेतु मुख्य ग्रह कौन होता है?
   क. राहु ख. ष्सूर्य
   ग. मंगल घ. ये सभी
9. दन्तरोग का फल कब प्राप्त होता है?
   क. सम्बन्धित ग्रह की दषा में ख. ष्सम्बन्धित ग्रह की अन्तर्दषा में
   ग. ये दोनो सही घ. कभी भी

10. दन्त रोग हेतु उपाय क्या करना चाहिए?
   क. जप ख. ष्तप
   ग. दान घ. ये सभी

3.7 सारांश

ज्योतिषशास्त्र में कहा गया है कि पूर्व जन्म के जब पाप वर्तमान जन्म में उदित होते हैं तो मनुष्य विविध रोगों से व्याधियों से पीडित रहता है । उसमें भी विषेष निर्दिष्ट ग्रह के अनुरोध से निर्धारित व्याधि से पीडित रहता है । क्योकि ग्रह ही हमे षुभ काल एव अषुभ काल के रूप में द्योतित करते है । जब षुभ ग्रह का समय हो तो मनुष्य नाना प्रकार के सुखो का उपभोग करता है और जब ग्रह अषुभ हो तो विविध प्रकार की परेषानियों से ग्रसित रहनें लगता है । व्याधि भी एक प्रकार की कर्मज या दोषज परेषानी ही है । जिसको ग्रह संसूचित करते हैं । जब हम सत्कर्म करते है अनपे इष्ट देवों का स्मरण करते हैं तो पुण्य उत्पन्न होता है जिससे दोषज व्याधियां धीरे धीरे समाप्त होनें लगती है । अतः दन्तरोगों की स्थिति कुण्डली में यदि दिखाई देती है तो उसके द्वारा समय का विधिवत् परिज्ञान करने के पष्चात् चिकित्सकीय परामर्षादि लेते हुए ग्रहयोगों का विधिवत् उपचार करना चाहिए । जिससे त्वरित लाभ प्राप्त होता है । ज्योतिषषास्त्र में अनेक प्रकार के दन्तरोगों के बारे में वर्णन किया गया है किन्तु उन सभी में से प्रमुख योगों का संकलन प्रस्तुत पाठ में किया गया है । दन्द रोगोत्पत्ति कारक ग्रहों में मूल रूप से राहु का और सूर्य का विषेष प्रभाव रहता है । अन्यान्य ग्रह भी सहायकभूत होते हैं तथापि इसके अतिरिक्त भी बहुत से ऐसे दन्तरोगोत्पत्तिकारक योग ज्योतिष के ग्रन्थों में वर्णित है उन सभी को भी आवष्यकतानुसार देखना चाहिए ।

3.8 पारिभाषिक षब्दावली

धीः – बुद्धि, विषेष रूप से पंचम भाव का ग्रहण

रद – दांत

कुमुदपतिः – चन्द्रमा

रिपुः – ष्त्रु

सप्तमे – सप्तम भाव में

गद – रोग

कोदण्ड – धनु राषि

अज – मेष राषि

अघ – पाप

अंग– लग्न या प्रथम भाव

जीव – बृहस्पति

3.9 अभ्यास प्रष्नों के उत्तर

1. क
2. ख
3. ग
4. क
5. घ
6. ग
7. घ
8. घ
9. ग
10. घ

3.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

क. ग्रन्थ नाम – **मुहूर्त्त चिन्तामणि**
गन्थकर्ता – रामदैवज्ञ
टीका नाम – पीयूषधारा
टीकाकार गोविन्द दैवज्ञ
व्याख्याकार – श्री विन्ध्येष्वरी प्रसाद द्विवेदी
सम्पादक – डा ब्रह्मानन्द त्रिपाठी
प्रकाशन वर्ष – 2009
प्रकाषक – चौखम्बा सुरभारती प्रकाषन, वाराणसी
ख. ग्रन्थ नाम – **गदावली**
प्रणेता – आचार्य चक्रधर जोषी
प्रकाशन वर्ष – 1958
प्रकाषक – चक्रधर जोषी व्यवस्थापक, देवप्रयाग हरिद्वार उत्तराखण्ड
हिमालय एस्ट्रोलाजिकल रिसर्च इन्सटीट्यूट
ग. ग्रन्थ नाम – **जातकालंकार**
ग्रन्थकर्ता – गणेष दैवज्ञ
प्रकाशन वर्ष – 2012

प्रकाषक – चौखम्बा सुरभारती प्रकाषन, वाराणसी, संस्करण 2012

3.11 सहायक पाठ्यसामग्री

1. **ग्रन्थ नाम** –जातक पारिजात
   ग्रन्थ कर्ता –वैद्यनाथ
   व्याख्याकार – गोपेष ओझा
   प्रकाशक –चौखम्बा सुरभारती प्रकाषन, वाराणसी, संस्करण 2016
2. **ग्रन्थ नाम** –फलदीपिका
   ग्रन्थ कर्ता –मन्त्रेष्वर
   सम्पादक एवं व्याख्याकार – गोपेष ओझा
   प्रकाशक –चौखम्बा सुरभारती प्रकाषन, वाराणसी, संस्करण 2016

3.12 निबन्धात्मक प्रष्न

1. **दन्तरोग के ग्रहजनित कारणों का उदाहरणपूर्वक वर्णन करें।**
2. **दन्तरोग के परिहार हेतु क्या उपाय करना चाहिए, वर्णन करें ।**

इकाई 04 वक्ष रोग एवं क्षय रोग

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 वक्ष रोग एवं क्षय रोग हेतु विचारणीय तथ्य

4.4 ज्योतिषशास्त्रोक्त क्षयरोग योग

4.5 ज्योतिषशास्त्रोक्त क्षय रोग योग

4.6 वक्ष रोग एवं क्षय रोग प्रश्नमनार्थ कृत्याकृत्य विचार

4.7 सारांश

4.8 पारिभाषिक शब्दावली

4.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

4.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

4.11 सहायक पाठ्यसामग्री

4.12 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

ज्योतिषशास्त्र में सभी प्रमुखादि रोगो का कारकत्व ग्रहों को बताया गया है। ग्रह केवल संसूचना मात्र प्रदान करते है सम्बन्धित रोगों के विषय में। ग्रह कभी भी कारण भूत नहीं होते हैं किसी भी रोग के प्रति । क्योंकि कहा भी गया है कि –**फलानि ग्रहचारेण सूचयन्ति मनीषिणः**

अतः अमुक ग्रह अमुक रोग का जनक है यह कहना भ्रान्तिपूर्ण तथ्य है । हमारे जितने भी पूर्वजन्मार्जित पाप पुण्य हैं वे सभी ग्रहों के माध्यम से ही वर्तमान जन्म में परिज्ञात किए जाते है ।षरीर में रोगों की उत्पत्ति होनें के उपरान्त ही चिकित्सक बताता हैं कि आपको अमुक समस्या हैं किन्तु ज्योतिष ष्षास्त्र तो षिषु के जन्म के समय ही सम्पूर्ण जीवन में घटित होनें वालें रोगो को ग्रहों एवं नक्षत्रों के आधार पर तत्क्षण ही बता देता है । इसी प्रकार जातक के षरीर में जब वक्ष रोग या क्षय रोग उत्पन्न होता है जो मनुष्य चिकित्सक के पास जाता है । तदुपरान्त चिकित्सक नाडी इत्यादि के माध्यम से या आधुनिक विज्ञान के अनुसार विविध यन्त्रों के माध्यम से अनेक परीक्षण के पष्चात् जातक को सटीक रोग के विषय में बताता है किन्तु दैवज्ञ या प्रवीण ज्योतिषी जातक की कुण्डली देखकर ही निर्दिष्ट ग्रहों के अनुसार वक्ष रोग या क्षय रोग के विषय में बता देता है । अतः वक्ष रोग या क्षय रोग जनक ग्रहों एवं राषियों तथा नक्षत्रों का विविधत् परिज्ञान अवष्य करना चाहिए । इस पाठ में विस्तृत रूप से चर्चा की गई है ।

4.2 उद्देष्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप

- वक्ष रोग के ज्योतिषीय कारणों के बारे में जान सकेंगे ।
- क्षय रोग परिज्ञान करने में दक्ष हो सकेंगे ।
- किस ग्रह के कारण वक्ष रोग एवं क्षय रोग होता है यह जान सकेंगे ।
- प्रषमनोपाय के बारे में जान सकेंगे ।

4.3 वक्ष रोग एवं क्षय रोग हेतु विचारणीय तथ्य

ज्योतिष षास्त्र में विविध फलों के कथन हेतु अनेक प्रकार के भावों की कल्पना की गई है जिनके आधार पर ही किसी रोग का पूर्वानुमान सटीक प्रकार से किया जाता है । जन्म कुण्डली में जो द्वादष चक्र होते हैं उनमें से किसके द्वारा रोग का परिज्ञान किया जाता है इस विषय में फलदीपिकाकार कहते हैं कि –

रोगस्य चिन्तामपि रोग भावस्थितैर्ग्रहैर्वा व्ययमृत्युसंस्थैः ।

रोगेष्वरेणापि तदन्वितैर्वा द्वित्र्यादि संवादवषाद् वदन्तु ।।

प्रत्येक द्वादष भाव जीवन के सभी प्रकार की षुभाषुभ घटनाओं को द्योतित करते हैं। जिसमें रोग परिज्ञान हेतु मुख्य रूप से षष्ठ भाव, अष्टम भाव तथा द्वादष भाव विचारणीय होते है । यदि उक्त भावो में यदि ग्रह हो तो वे अपने स्वभाव के अनुसार व्याधि को उत्पन्न करते है । अपि च इन भावों के स्वामी जिस भाव में बैठे हो अथवा जिस ग्रह के साथ बैठे हो, उसके अनुसार भी व्याधि को जन्म देते हैं ।

इसके अतिरिक्त भी कालपुरूष विचार भी अवष्य करना चाहिए क्योकि षरीर के किस अंग विषेष में रोग, व्याधि, पीडा, दुर्घटना इत्यादि होगी इसका परिज्ञान कालपुरूष चक्र से सरलता से किया जाता है । वक्ष रोग के विषय में कालपुरूष चक्र के तृतीय भाव को तथा मिथुन राषि को विषेष रूप से देखा जाता है क्योकि मिथुन राषि एवं तृतीय भाव वक्ष स्थान का प्रतिनिधित्व करती है ।

वक्ष रोग के विषय में मुख्य समस्या महिलाओं की होती है पुरूषो की अपेक्षा । षिषु के स्तनपान इत्यादि के कारण वक्ष रोगादि उत्पन्न होते हैं । वक्ष या स्तन कैंसर जैसी समस्याएं भी उत्पन्न हो जाती है ।

क्षय रोग के विषय में कहा गया है की यह रोग षरीर के धीरे धीरे समाप्त कर देता है । जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है कि यह क्षय करता है । क्षय रोग होनें के कारण मनुष्य धीरे धीरे मृत्यु की ओर उन्मुख होनें लगता है । क्षय रोग को तपेदिक भी कहते हैं । इस रोग में मुख्य रूप से अल्प परिश्रम से थकान होनें लगता है ष्वास फूलनें लगती है, बार बार खासी होती है । गले में खुष्की होती है,षरीर में कमजोरी रहती है जिसके कारण षरीर धीरे धीरे कमजोर होकर समाप्त हो जाता है ।

इस रोग को ज्योतिष षास्त्र में राजयक्ष्मा कहा जाता है और ऐसा प्रायः माना जाता है कि यह रोग उच्च एवं कुलीन वर्गो को होता है जो षारीरिक श्रम नहीं करते हैं ।

4.4 ज्योतिष षास्त्रोक्त वक्ष रोग योग एवं उदाहरण

मानव षरीर में सबसे अत्यधिक मजबूत अंग वक्ष स्थल को माना जाता है और यहां पर हड्डियों एवं मासं पेषियों की संरचना सर्वाधिक होती है जिसके कारण यह स्थान कठोर प्रतीत होता है । षरीर का कठोर भाग होनें पर इस अंग में बहुत ज्यादा व्याधि नहीं होती है किन्तु स्त्री की षरीर संरचना में अन्तर होनें के कारण यह वक्ष स्थल संवेदनषील हो जाता है । पुरूष के वक्ष स्थल में कोई विषेष व्याधि तो नहीं होती है किन्तु व्रणादि होनें की संभावना प्रबल हो जाती है । स्त्री में यह व्याधि वक्षरोग के रूप में निकलकर सामने आती है । स्त्री के वक्ष स्थल में गांठ भी हो जाती है तथा कैंसर जैसी भयानक बिमारी भी कभी कभी हो जाती है । स्त्रीयों में यह परेषानी प्रसूति के पष्चात् अधिक बढ जाती है । कभी कभी स्तन में दूध ना आ पाने जैसी समस्याए भी हो जाती है ।

ज्योतिष षास्त्र में वक्ष रोग के विषय में बहुत अत्यधिक नहीं कहा गया है तथापि कुछ ऐसे योग है जिसके माध्यम से वक्ष रोग के विषय में परिज्ञान किया जा सकता है । जैसा कि कहा गया है ।

षीर्षमुखबाहु हृदयोदराणि कटिवस्तिगुह्यसंज्ञानि ।
उरूजानुजंघे चरणाविति राषयोऽजाद्याः ।।
कालनरस्यावयवान् पुरूषाणां चिन्तयेत् प्रसवकाले ।
सदसद् ग्रहसंयोगात् पुष्टाः सोपद्रवास्ते च ।।

ज्योतिष षास्त्र में रोग निर्धारण प्रसंग में सर्वप्रथम कालपुरूष की चर्चा की जाती है । क्योकि कालपुरूष के आधार पर ही अंगविषेष में होनें वाली समस्याओं को पहचाना जाता है । इसी प्रकार प्रत्येक द्वादष भाव में षीर्षादि अंगों को प्रदर्षित करते हैं । जिस अंग विषेष में पापग्रह हो, या वह अंगविषेष राषि पापपीडित हो या पापाक्रान्त हो तो उस अंग में पीडा होती है । द्वादष भाव विचार प्रसंग में तृतीय भाव तथा राषि विचार प्रसंग में मिथुन राषि वक्ष स्थान का प्रतिनिधित्व करती है । ग्रहों में यदि चर्चा करे तो चन्द्रमा मुख्य रूप से वक्ष स्थल को द्योतित करता है । यदि यह तीनों पापाक्रान्त हो या पापपीडित हो अथवा दुर्बल हो तो निष्चित रूप से स्तन से सम्बन्धित विकार उत्पन्न होते हैं । जन्म कुण्डली में जब तीनों की स्थिति दुर्बल हो जाए या पाप दृष्ट हो तो वक्ष रोग उत्पन्न होता है । एक उदाहरण के माध्यम से इस बात को समझा जा सकता है ।

उदाहरण संख्या –1

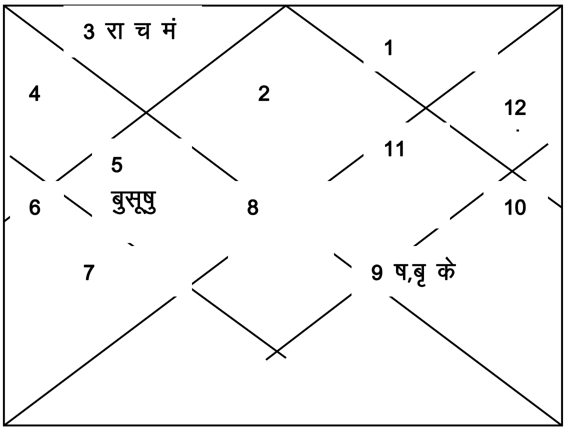

प्रस्तुत वृष लग्न की कुण्डली में मिथुन राषि में राहु चन्द्र तथा मंगल बैठे हुए है । कालपुरूष चक्र के अनुसार मिथुन राषि वक्ष का प्रतिनिधित्व करती है तथा प्रस्तुत उदाहरण में मिथुन राषि पापपीडित होनें के कारण तथा चन्द्रमा भी पापाक्रान्त होनें के कारण वक्ष रोग को उत्पन्न कर रहा है ।

अभ्यास प्रष्न – 1

1. रोग का विचार किस भाव से किया जाता है?
   क. 6   ख. 8
   ग. 12   घ. ये सभी

2. छठे भाव के स्वामी को क्या कहते है ?
   क. षष्ठेष ख. अष्टमेष
   ग. द्वादषेष घ. लग्नेष
3. वक्ष स्थान का प्रतिनिधित्व कौन सी राषि करती है ?
   क. मेष ख. वृष
   ग. मिथुन घ. कर्क
4. राजयक्ष्मा किस रोग को कहते हैं ।
   क. क्षयरोग ख. ष्वक्ष रोग
   ग. दन्तरोग घ. मुखरोग
5. वक्ष रोग कारक मुख्य ग्रह चन्द्रमा है । सत्य/ असत्य

4.5 ज्योतिष षास्त्रोक्त क्षय रोग योग एवं उदाहरण

क्षय रोग परिज्ञान करनें के लिए ज्योतिष षास्त्र में अनेक प्रकार के ग्रह योगों का वर्णन किया जाता है । जिनके आधार पर स्पष्ट रूप से परिज्ञान किया जाता है । किसी भी एक विषेष ग्रह के कारण क्षय रोग उत्पन्न नहीं होता क्योकि यह रोग आगन्तुक रोग है । आगन्तुक का अर्थ यह है कि मनुष्य के जीवन षैली के कारण, आहार एवं विहार के कारण तथा जो रोग उत्पन्न होते हैं वे आगन्तुक रोग कहलाते हैं । गदावली नामक पुस्तक के अनेक प्रकार के योगों के बारे में बताया गया है । जो इस प्रकार से है ।

भांगेषौ पतितान्तगावथ तनौ मन्दारदृष्टेऽथवा
कर्के ज्ञेऽथ लये खले मतिगृहे मन्दे भवे भास्करे ।
वारार्की ख इने हराम्बुहरिजेऽथास्त्रे ज्ञयुक्तेऽहिते
कूरांषेऽब्जभवीक्षितेऽथ लवताऽस्रही क्रमात्कान्त्यगौ ।।

उक्त ष्लोक में पांच प्रकार के क्षयरोग जनक योगों को बताया गया है । सर्वप्रथम कहते हैं कि –

1. लग्नेष और राषीष यदि द्वादष स्थान में गये हुए हो तो क्षय रोग होता है ।इसका मुख्य कारण यह है कि द्वादष स्थान को क्षय स्थान कहते हैं क्योकि यह षरीर का क्षय स्थान माना जाता है । इस व्यय स्थान में यदि लग्न का स्वामी अर्थात् स्वयं षरीर तथा राषी का स्वामी अर्थात् मन चला जाए तो निष्चित ही षरीर का क्षय होता है ।
2. यदि लग्न पर षनि तथा मंगल की दृष्टि हो तो भी क्षय रोग होता है । इसका मुख्य कारण यह है कि लग्न षरीर का बोधक होता है तथा उस पर पाप ग्रह की दृष्टि होनें से षरीर कम होनें लगता है अर्थात् क्षय होनें लगता है । षनि की दृष्टि भी धीरे धीरे ही प्रभाव दिखाती है तथा मंगल का प्रकोप पित्त की अधिकता को दर्षाता है । इस कारण से क्षय रोग होता है ।

3. यदि कर्क राषि में बुध हो तोभी क्षय रोग को उत्पन्न करता है । कालपुरूष के अंग विभाग को यदि हम देखें तो चतुर्थ राषि कर्क तथा चतुर्थ भाव मुख्य रूप से हृदय को द्योतित करता है । बुध ग्रह भी नपुंसक हानें के कारण षरीर में उर्जा की कमी करता है तथा उत्साह विहीन बनाता है

मनुष्य को, जिसके कारण षरीर में दुर्बलता आ जाती है । इस हेतु से कर्क राषि के बुध को क्षय रोग का कारक कहा गया है ।

4. यदि अष्टम स्थान में पापग्रह हो तथा पंचम में षनि हो तथा एकादष स्थान में सूर्य हो तो भी क्षय रोग होता है । यह एक प्रकार का ग्रहयोग है जो क्षय रोग को प्रदर्षित करता है ।
5. यदि दषम स्थान में मंगल एवं षनि हो तथा लग्न चतुर्थ या अष्टम भाव में मंगल हो तो भी क्षय रोग होता है ।

उदाहरण संख्या –1

प्रस्तुत वृष लग्न कुण्डली में लग्न का स्वामी षुक्र है तथा राषि का स्वामी सूर्य है । यह दोनों लग्न से द्वादष भाव में गए हुए है । अतः ऐसी स्थिति में क्षय रोग होनें की प्रबल संभावना दिखाई दे रही है । क्योकि कहा गया है कि लग्नेष और राषीष यदि द्वादष भाव में हो तो क्षय रोग होता है

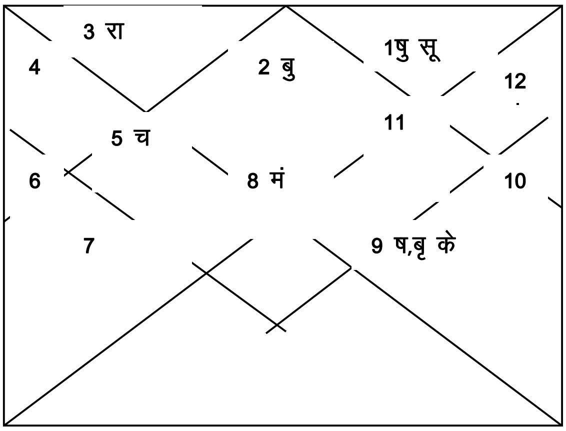

प्रस्तुत वृष लग्न कुण्डली में लग्न पर मंगल की पूर्ण दृष्टि चतुर्थ वाली है तथा षनि की सप्तम वाली पूर्ण दृष्टि है । अतः ऐसी स्थिति में क्षय रोग होनें की प्रबल संभावना दिखाई दे रही है । क्योकि कहा गया है कि लग्न पर मंगल और षनि की दृष्टि हो तो क्षय रोग होता है ।

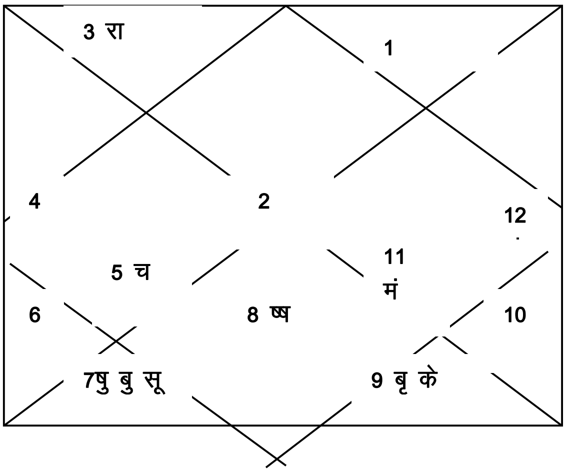

उदाहरण संख्या –3

प्रस्तुत वृष लग्न कुण्डली में तृतीय भाव में कर्क राषि है और कर्क राषि में बुध बैठा हुआ है । अतः ऐसी स्थिति में क्षय रोग होनें की प्रबल संभावना दिखाई दे रही है । क्योकि कहा गया है कि कर्क राषि में बुध हो तो क्षय रोग होता है । इसी प्रकार से अन्य उदाहरणों को भी समझना चाहिए । यह सभी क्षय रोग किसी भी लग्न में संभावित हो सकते हैं ।

अभ्यास प्रष्न – 2

6. राजयक्ष्मा किस रोग को कहते हैं ।
   क. क्षय रोग ख. ष्वक्ष रोग
   ग. दन्त रोग घ. मुखरोग
7. क्षय रोग में मुख्य रूप से कारक होता है ?
   क. लग्न स्वामी ख. राषि स्वामी
   ग. यह दोनों घ. इनमें से कोई नहीं
8. कौन सी राषि क्षय रोग को प्रदर्षित करती है?
   क. मेष ख. ष्वृष
   ग. मिथुन घ. कर्क
9. नपुंसक ग्रह है?
   क. सूर्य ख. ष्चन्द्र
   ग. मंगल घ. बुध
10. ज्ञ षब्द का क्या अर्थ है?
   क. बुध ख. ष्गुरू
   ग. ष्षुक्र घ. ष्षनि

4.6 वक्ष रोग एवं क्षय रोग प्रषमनार्थ कृत्याकृत्य विचार

वस्तुतः समस्त प्रकार के रोगों इत्यादि का परिज्ञान करनें हेतु तथा परिज्ञान करने के पष्चात् निदान करने हेतु चिकित्सकीय व्यवस्था प्रदान की गई है । क्योकि यह एक पृथक् षास्त्र है और इन सभी रोगादि का विषेष प्रतिपादक भी है । किसी भी प्रकार के रोग की उपस्थिति में सर्वप्रथम चिकित्सकीय परामर्ष अवष्य लेना चाहिए । ज्योतिष षास्त्र द्वारा केवल उस रोग का पूर्व में ही अनुमान किया जा सकता है और उपायो द्वारा उसके प्रभावों को कम किया जा सकता है किन्तु औषधादि प्रदान करना एवं विविवत् निदान करना तो मुख्य रूप से चिकित्सक का कार्य होता है । अतः जातक के जीवन में वक्ष रोग एवं क्षय रोग की स्थिति उत्पन्न हानें पर सर्वप्रथम चिकित्सकीय परामर्ष लेते हुए ज्योतिषीय परिहारों द्वारा रोग की चिकित्सा करनी चाहिए । ज्योतिष ष्षास्त्र के अनुसार जप होम दान आदि क्रियाओं द्वारा भी चिकित्सा सफल होती है तथा व्याधि में लाभ प्राप्त होता है । जैसा कि कहा भी गया है –

दानादिभिः कर्मभिरौषधीभिः कर्मक्षये दोषपरिक्षये च ।

सिद्ध्यन्ति ये यत्नवतां कथंचित्ते कर्मदोषप्रभवा विकाराः ।।

4.7 सारांश

रोग निर्धारण प्रसंग में बहुत सारे हेतु षास्त्रीय ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं । कुछ लोग ऐसा कहते हैं कि कर्मदोष के प्रकोप के कारण व्याधि उत्पन्न होती है । कुछ लोग ऐसा कहते हैं कि त्रिविध दोष वात–पित्त–कफ के असंतुलन के कारण व्याधि उत्पन्न होती है । कुछ लोग ऐसा मानते है कि पूर्व जन्म के पापसंचय होनें के कारण व्याधि जन्म लेती है । जैसा कि आचार्य कहते है –

कर्मप्रकोपेण कदाचिदेके दोषप्रकोपेण भवन्ति चान्ये ।

तथापरे प्राणिषु कर्मदोषप्रकोपजाः कार्यमनोविकाराः ।।

वक्ष रोग एवं क्षय रोगोत्पत्ति में भी कर्मदोष तथा त्रिविध दोषों की महती भूमिका होती है । क्षय रोग तो वस्तुतः पूर्वजन्म के दुष्कर्म के कारण उत्पन्न होता है तथा वक्ष रोग में तो वात पित्त एवं कफ दोष की महती भूमिका होती है । क्षय रोग तो सभी रोगों में सर्वकष्टप्रदायक रोग कहा जाता है तथा इसे राजरोग भी कहते है क्योकि यह साधारण लोगों को नहीं होता हैं । केवल जो भी सुखोपभोगी जन हैं तथा परिश्रम नहीं करते हैं, उन्हें ही यह व्याधि उत्पन्न होती हैं ।

वक्ष रोग के सन्दर्भ में तो षास्त्रीय ग्रन्थों में बहुत अत्यधिक प्रमाण उपलब्ध नहीं होता है किन्तु क्षय रोग के विषय में तो अनेक षास्त्रीय प्रमाण प्राप्त होते हैं । यदि क्षय रोग का ज्योतिष षास्त्र द्वारा आरम्भ में ही परिज्ञान कर लिया जाए तो क्षय रोग की चिकित्सा सरलता से की जा सकती हैं ।

4.8 पारिभाषिक शब्दावली

उदर – पेट

कटि – कमर

वस्ति – नाभि एवं गुप्तांग का मध्य भाग

उरू – जांघ

सद् – षुभ

असद् – अषुभ

मन्द – षनि को कहते हैं ।

आर – मंगल को आर भी कहते हैं ।

ज्ञ – बुध को संस्कृत में ज्ञ षब्द से द्योतित किया जाता है ।

ख – दषम स्थान को ख कहते हैं ।

इन – सूर्य को इन कहते हैं ।

लय – अष्टम स्थान को कहते हैं ।

भव – एकादष स्थान को कहते हैं ।

4.9 अभ्यास प्रष्नों के उत्तर

अभ्यास प्रष्नोत्तर – 1

1. घ
2. क
3. ग
4. क
5. सत्य

अभ्यास प्रष्नोत्तर – 2

6. क
7. ग
8. घ
9 .घ
10. क

4.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

क.ग्रन्थ नाम –**गदावली**
प्रणेता – आचार्य चक्रधर जोषी
प्रकाशन वर्ष – 1958
प्रकाषक – चक्रधर जोषी व्यवस्थापक, देवप्रयाग हरिद्वार उत्तराखण्ड
हिमालय एस्ट्रोलाजिकल रिसर्च इन्सटीट्यूट

ख.ग्रन्थ नाम –**लघुजातक**
ग्रन्थकर्ता – वराहमिहिर
प्रकाशन वर्ष – 2012
प्रकाषक – चौखम्बा सुरभारती प्रकाषन, वाराणसी, संस्करण 2012

4.11 सहायक पाठ्यसामग्री

3. **ग्रन्थ नाम** –जातक पारिजात
ग्रन्थ कर्ता –वैद्यनाथ
व्याख्याकार – गोपेष ओझा
प्रकाशक –चौखम्बा सुरभारती प्रकाषन, वाराणसी, संस्करण 2016

4. **ग्रन्थ नाम** –फलदीपिका
ग्रन्थ कर्ता –मन्त्रेष्वर
सम्पादक एवं व्याख्याकार – गोपेष ओझा

प्रकाशक –चौखम्बा सुरभारती प्रकाषन, वाराणसी, संस्करण 2016

4.12 निबन्धात्मक प्रष्न

क. वक्ष रोग के कारण एवं निदान पर प्रकाष डालें ।

ख. क्षय रोग के ज्योतिषीय ग्रहयोगों को प्रदर्षित करें ।

इकाई 5 गुर्दा रोग

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देष्य

5.3 गुर्दा का परिचय ज्योतिष परिप्रेक्ष्य में

5.4 गुर्दा रोग के कतिपय योग

5.5 उदाहरण

5.6 गुर्दा रोग प्रषमनार्थ कृत्याकृत्य विचार

5.7 सारांष

5.8 पारिभाषिक षब्दावली

5.9 अभ्यास प्रष्नों के उत्तर

5.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

5.11 सहायक पाठ्यसामग्री

5.12 निबन्धात्मक प्रष्न

5.1 प्रस्तावना

ज्योतिष षास्त्र में रोग का परिज्ञान सरतापूर्वक किया जाता है । षरीर के किस अंग विभाग में रोग होगा? इसके परिज्ञान की अनेक प्रकार से विधि प्राप्त होती है । ग्रहों द्वारा, भावों द्वारा, राषियों द्वारा, नक्षत्रों द्वारा एवं विविध ग्रहयोगो द्वारा रोग का परिज्ञान किया जाता है । अनेक रोगों में से एक प्रमुख रोग है गुर्दा रोग । गुर्दा वस्तुतः मानव षरीर में स्तनों के ठीक नीचे वाले हिस्सो में पाया जाता है । काजू की जैसी आकृति होती है ठीक वैसी ही आकृति गुर्दो की भी होती है । हम जो कुछ भी पीते है वह पाचन तन्त्र के माध्यम से गुर्दे में प्रवेष करता तथा गुर्दा उसे षोधित करके मूत्र नली के माध्यम से बाहन निकाल देता है । गुर्दा को मुख्य रूप से किडनी कहा जाता है । आपने सुना भी होगा जो व्यक्ति अत्यधिक मदिरादि सेवन करता है या धूम्रपान करना है उसकी किडनी खराब हो जाती है ।

षरीर में दो किडनी होनें के कारण एक किडनी का दान भी लोग अपने सगे सम्बन्धियों में करते हैं । मानव षरीर एक किडनी पर भी जीवित रह सकता है । ज्योतिषषास्त्र में किडनी या गुर्दे का विचार किस प्रकार से किया गया है? आप वह इस पाठ में पढेंगे ।

5.2 उद्‌देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप ...

- ❖ जान सकेंगे कि गुर्दे रोग की अवधारणा ज्योतिष में किस प्रकार से है ।
- ❖ जान सकेंगे कि गुर्दा रोग किस प्रकार से होता है ।
- ❖ समझ सकेंगे कि गुर्दा रोग का ग्रहयोग किस प्रकार से होता है ।

5.3 गुर्दा का परिचय ज्योतिष परिप्रेक्ष्य में

मानव ष्षरीर में अनेक प्रकार के अंग आभ्यन्तर भाग में पाये जाते हैं । जिसमें से एक प्रमुख अंग है गुर्दा । मानव ष्षरीर में दो गुर्दे होते है । संस्कृत में इन्हें वृक्क कहा जाता है । इनका प्रमुख कार्य होता है मूत्र उत्पादन करना । अर्थात हम जो कुछ भी पीते हैं उस पदार्थ से क्षारीय तत्व निकाल करके मूत्र नली से बाहर करना । प्रत्येक जीवधारी प्राणी में यह अंग पाया जाता है । गुर्दे द्वारा मुख्य रूप से मूत्र से सम्बन्धित परेषानियां उत्पन्न होती है । गुर्दे में कभी कभी रक्त का प्रवाह रूक जानें के कारण कैंसर जैसी परेषानियां भी होती है । गुर्दे में पथरी हो जान एक सामान्य परेषानी है । गुर्दे को अंग्रेजी में किडनी कहा जाता है । इसी नाम से प्रायः सभी लोग इससे परिचित है । इस चित्र में आप गुर्दे के स्वरूप को समझ सकते हैं ।

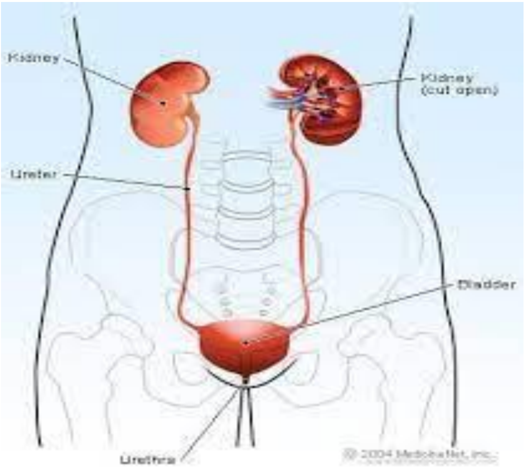

गुर्दे की स्थिति हृदय के आस पास होती है अतः षरीर में स्तन के ठीक नीचे का भाग गुर्दे या कीडनी का होता है । गुर्दे में दर्द होना या सूजन आ जाना अथवा मूत्रकृच्छ होना ये सभी मुख्य रूप से बीमारियां होती है । ज्योति"ा षास्त्र के अनुसार सारावली, जातक पारिजात, सर्वार्थ चिन्तामणि एवं गदावली आदि ग्रन्थों में गुर्दे रोग से सम्बन्धित विषे"ा प्रकार के योग प्राप्त होते हैं । यदि कुण्डली में ऐसे योग होते हैं तो जातक निःसन्देह गुर्दे रोग से पीडित होता है ।

5.4 गुर्दा रोग के कतिपय योग

जैसा कि उपर बताया गया है कि गुर्दा रोग के अनेक भेद होते हैं उनमें से प्रमुख रोग होता है मूत्रकृच्छ । अर्थात् जातक को मूत्र प्रसाधन करते समय असह्य पीडा होती है अथवा बार बार मूत्र त्याग हेतु षौचालय जाना पडता है । सारावली में मूत्रकृच्छ रोग के बारे में इस प्रकार बताया गया है ।

कामे कुजे क्रूरखगैः समेते दृ"टेऽथ वार्भे हिमगौ तदीषे ।

रोगालये नीरभसंस्थितेन बुधेन दृ"टेऽथ षनौ कलत्रे ।।

भुजंगदृ"टे यदि मूत्रकृच्छ्रामयो नराणां बहवः खगेन्द्राः ।

पापा यदाऽसद् गगनांगभागे प्रत्यर्थिपु"पे"ु गृहे तथा स्यात् ।।

प्रस्तुत ष्लोक में मूत्रकृच्छ रोग के दो योग बताए गए है । ज्योति"ा षास्त्र के अनुसार सप्तम भाव से गुप्तांग का मुख्य रूप से विचार किया जाता है । सप्तम भाव में यदि पाप ग्रहों की स्थिति होती है तो मूत्रकृच्छ रोग होना अधिकाषतः संभावित होता है ।

प्रथम ष्लोक में सारावलीकार कहते हैं कि यदि सप्तम स्थान में पापग्रहों से युक्त या दृ"ट मंगल होता है तो मूत्रकृच्छ रोग होता है ।

दूसरे ष्लोक में सारावलीकार कहते हैं कि यदि सप्तम स्थान में षनि हो और उस पर राहु की दृ"ट हो तो मूत्रकृच्छ रोग होता है ।

5.5 उदाहरण

1. मिथुन लग्न

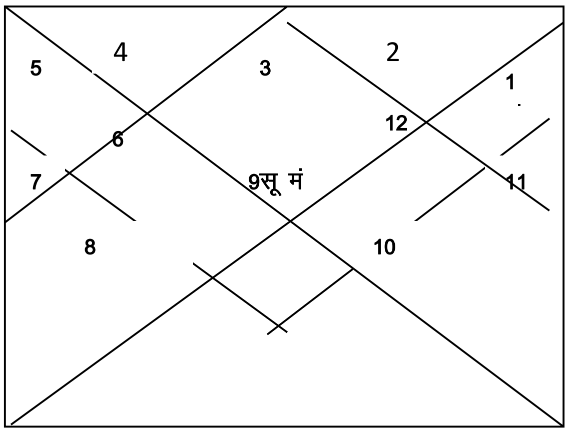

2. कर्क लग्न

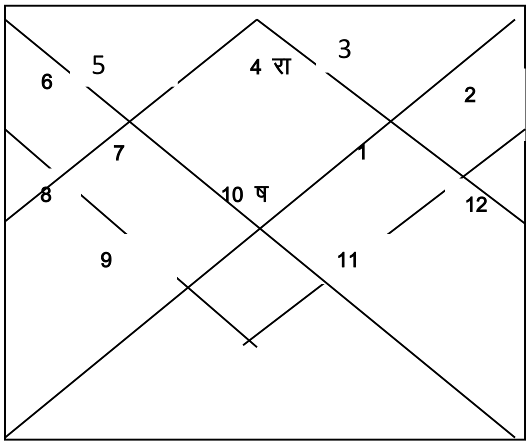

प्रथम उदाहरण में मिथुन लग्न है तथा सप्तम भाव में मंगल सूर्य के साथ बैठा हुआ है । प्रथम ष्लोक में कहा गया है कि यदि सप्तम भाव में मंगल पाप ग्रह के साथ युक्त हो अथवा दृ"ट हो तो मूत्रकृच्छ रोग होता है । प्रस्तुत प्रथम उदाहरण में सप्तम भाव में मंगल पापग्रह सूर्य के साथ बैठा हुआ है । अतः जातक को मूत्रकृच्छ रोग होनें की संभावना प्रबल है जो कि गुर्दे रोग से सम्बन्धित है ।

द्वितीय उदाहरण में कर्क लग्न है तथा सप्तम भाव में षनि है । द्वितीय ष्लोक में सारावली कार कहते हैं कि यदि सप्तम भाव में षनि हो और वह राहु से दृ"ट हो तो मूत्रकृच्छ रोग होता है ।प्रस्तुत द्वितीय उदाहरण में ष्षनि सप्तम भाव में है और राहु लग्न में है । लग्न का राहु पूर्ण दृ"ट से षनि को देख रहा है । अतः जातक के षरीर में मूत्रकृच्छ रोग होनें की संभावना पूर्ण बन रही है ।

अभ्सास प्रष्न – 1

11. गुर्दा को संस्कृत में क्या कहते है ?
    क. आस्य ख. हृत्
    ग. वृक्क ग. ष्षूल

12. वृक्क कितनें होतें हैं ?
    क 1 ख. 2
    ग. 3 घ. 4

13. गुर्दे से सम्बन्धित रोग है?
    क. कैंसर ख. पथरी
    ग. मूत्रकृच्छ घ. ये सभी

14. किस भाव से मुख्य रूप से मूत्रकृच्छ रोग का विचार होता है?
    क. प्रथम ख. पंचम
    ग. सप्तम घ. दषम

15. सप्तम भाव में मंगल पापदृ"ट हो तो क्या होता है?

    क. पथरी ख. मूत्र कृच्छ

    ग. कैंसर घ. षूलरोग

5.6 गुर्दा रोग प्रषमनार्थ कृत्याकृत्य विचार

गुर्दा रोग मुख्य रूप से अनियन्त्रित कुत्सित पेय पदार्थो से होता है । जो व्यक्ति नियमित रूप से मदिरादि मादक पदार्थो का सेवन करते हैं उनको निष्चित रूप से गुर्दे से सम्बन्धित परेषानियां होती ही है । अत्यधिक मादक पदार्थो को सेवन करने के कारण दोनों किडनी खराब हो जाती है जिसके कारण व्यक्ति कुछ भी खाने पीने में असमर्थ हो जाता है । अतः मादक पदार्थो के सेवन से सदैव बचना चाहिए ।

अनियन्त्रित गरि"ठ एव कुपाच्य पदार्थो का भक्षण करनें के कारण कभी कभी किडनी में पत्थर की मात्रा बढती जाती है जो बाद में चलकर पथरी रूप में पीडा देनें लगती है । अतः किडनी रोग से बचनें के लिए सुपाच्य भोजन का सेवन करना चाहिए । षरीर में जल की कमी होनें के कारण भी किडनी रोग होता है । अतः षरीर में जल की मात्रा कम नहीं होनें देना चाहिए । अत्यधिक मात्रा में जल के सेवन से किडनी रोग नहीं होता है ।

जो भी ग्रह गुर्दा रोग कारक होते हैं उनके प्रषमनार्थ जप तप दान अनु"ठानादि अवष्य करते रहना चहिए ।

अभ्सास प्रष्न – 2

16. क्या मादक पदार्थो के सेवन से गुर्दे के रोग होते हैं ?
17. क्या षरीर में जल की कमी होनें के कारण किडनी रोग होता है?
18. पथरी किस रोग से सम्बन्धित है?

क. किडनी ख. दांतष

ग. हृदय घ. मुख

19. क्या सप्तम भाव में षनि के होनें से वृक्क रोग होता है?

20. वृक्क रोग होनें पर क्या करना चाहिए?

क. जप ख. तपष

ग. दान घ. ये सभी

5.7 सारांष

वर्तमान परिदृष्य में अनियमित दिनचर्या एवं असंतुलित खान पान होनें के कारण किडनी से सम्बन्धित अनेक प्रकार कि परेषानियां लोगों को हो रही है। आयुर्वेद षास्त्र के अनुसार हमेषा पथ्य एव सुपाच्य आहार ही लेना चाहिए। सुपाच्य आहार एवं सुपाच्य पेय पदार्थो के सेवन से हमारी दोनों किडनियां सही रूप में काम करती है । अत्यधिक धूम्रपान या अत्यधिक मादक पदार्थो के पान करने से दोनों गुर्दे पर बहुत प्रतिकूल प्रभाव पडता है तथा यह दोनों काम करना बंद कर देते है। काम न कर पाने के स्थिति में पाचन तन्त्र खराब हो जाता है और कुछ भी खाते या पीते हैं तो षरीर को नहीं लगता है वह बाहर हो जाता हैं । इस स्थिति में गुर्दा प्रत्यारोपण की स्थिति भी उपस्थित हो जाती है । प्राचीन काल में उन्नत चिकित्सकीय संसाधन के अभाव में अंग प्रत्यारोपण वाली स्थितियां अल्प मात्रा में होती थी इसलिए ज्योतिष आयुर्वेदीय ग्रन्थों में अंग प्रत्यारोपण वाली संभावना कम मात्रा में प्राप्त होती है । गुर्दे से सम्बन्धित परेषानी को दूर करनें के लिए चिकित्सकीय परामर्ष अवष्ल लेना चाहिए ।

5.8 पारिभाषिक षब्दावली

कामे – सप्तम भाव में

हिमगौ – चन्द्रमा के होनें पर

भुजंग – राहु

रोगालय – रोग भाव में

मूत्रकृच्छ – मूत्र त्याग में क''ट

कुज – मंगल

5.9 अभ्यास प्रष्नों के उत्तर

11. ग
12. ख
13. घ
14. ग

15. ख
16. हां
17. हां
18. क
19. हां
20. घ

5.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

क. ग्रन्थ नाम – सारावली

गन्थकर्ता – कल्याण दत्त वर्मा

प्रकाषक – चौखम्बा संस्कृत सीरिज वाराणसी

ख. ग्रन्थ नाम – ज्योति"ा षास्त्र में रोग विचार
ग्रन्थ कर्ता – डा षुकदेव चतुर्वेदी
प्रकाषक – मोतीलाल बनारसी दास वाराणसी 2003

5.11 सहायक पाठ्यसामग्री

5. ग्रन्थ नाम –सारावली
ग्रन्थ कर्ता – चक्रधर जोषी
सम्पादक – डा रष्मि मिश्रा
प्रकाशक – रीना पब्लिकेषन उज्जैन 2018
6. ग्रन्थ नाम – जातक पारिजात
ग्रन्थ कर्ता – वैद्यनाथ
प्रकाशक – चैखम्बा संस्कृत सीरिज आफिस वाराणसी 2002

5.12 निबन्धात्मक प्रष्न

3. गुर्दे रोग से सम्बन्धित किसी ग्रह योग की स्प"ट व्याख्या करें।

4. स्वकल्पित उदाहरण द्वारा वृक्क रोग के योग को परिभा"ित करें।

खण्ड-तृतीय
अधोअंग रोगाधिकार

इकाई - ०१ वस्ति रोग

इकाई की संरचना

१.१ प्रस्तावना
१.२ उद्देश्य
१.३ मुख्य भाग वस्ति रोग
१.३.१ आयुर्वेद के अनुसार शरीर का निर्माण
१.३.२ रोगोत्पति के कारण
१.३.३ राशि एवं ग्रहों द्वारा दोष, धातु तथा शरीरावयों का ज्ञान
१.४ मुख्य खण्ड विषय प्रमेह एवं मधुमेह रोग
१.४.१ मूत्रस्थली जनितरोग एवं जननेन्द्रिय रोग
१.४.२ बृद्धि-उपदंश शूक आदि लिंग रोग
१.५ सारांश
१.६ अभ्यास प्रश्न
१.७ पारिभाषिक शब्दावली
१.८ अभ्यास प्रश्नो के उतर
१.९ संदर्भ ग्रन्थ सूची
१.१० निबन्धात्मक प्रश्न

१.१ प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई चिकित्सा ज्योतिष में डिप्लोमा पाठ्यक्रम (क्डइ्ञ दृ २०) के तृतीय पत्र ज्योतिषशास्त्र में विविध व्याधि योग के अन्तर्गत ''तृतीय खण्ड'' अधो अंग रोगाधिकार की प्रथम इकाई वस्तिरोग नामक शीर्षक से सम्बन्धित हैं। वैदिक दर्शनो में ''यथा पिण्डे तभा ब्रह्मण्डे'' का सिद्धान्त प्राचीन काल से चला आ रहा है। जिस पर आज भी अनेक शोधात्मक कार्य चल रहे है, यह सिद्धान्त बतलाता है कि मानव शरीर सहित ब्रह्मण्ड में सभी वस्तुएं पांच मूलतत्वों (पंचमहाभूतों) अर्थात् पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश से बनी है। सौर जगत में सूर्य चन्द्रादि ग्रहों की विभिन्न गति - विधियों एवं क्रियाकलापों में जो नियम काम करते है, ठीक वही नियम प्राणी मात्र के शरीर में स्थित सौर जगत की इकाई का संचालन करते है हमारे शरीर में कोशाणु बन्धुता नियम (ला आंफ एफीनिटी) के अनुसार दलबद्ध होकर शरीर की ऊतकें (टिश्यूज) और उनके द्वारा अंग बनते है। जिसके परस्पर मिलने से हमारा स्थूल शरीर बन जाता है। हमारे शरीर एवं मन में उत्पन्न होने वाले विकार, जिनसे हमें किसी भी प्रकार का शारीरिक एवं मानसिक दुःख मिलता है उसको रोग कहते है।

इस इकाई में आप चिकित्सा ज्योतिष में ग्रहयोगों से बनने वाले विविध व्याधि योगों के अन्तर्गत वस्ति से सम्बन्धित रोगों का अध्ययन करेंगे तथा विशेषरूप से रोगों के मूल कारणो को समझ सकेगे।

१.२ उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप शरीर के अधो अंग रोगाधिकार के अन्तर्गत वस्ति रोगों को समझ सकेंगे कि -

१. ज्योतिषशास्त्र के द्वारा रोगों को कैसे समझा जा सकता है।
२. शरीर पर राशि एवं ग्रहों का प्रभाव क्या है।
३. वस्ति का शरीर में क्या कार्य है।
४. राशि एवं ग्रहों से रोगोत्पति को जान सकेंगे।
५. ग्रहों के अनुसार रोगों की साध्यता, असाध्यता को समझ सकेंगे।
६. कौन - कौन से ग्रह वस्तिरोगोत्पति के कारक है ।

१.३ वस्ति रोग

मानव का यह शरीर पांच मूलतत्वों (पंचमहाभूतों) अर्थात् पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश से बना है। पृथ्वी तत्वों से हमारा भौतिक शरीर बनता है। जिन तत्वों, धातुओं और अधातुओं से पृथ्वी बनी उन्ही से हमारे भौतिक शरीर की रचना हुई। जितने भी तरल तत्व शरीर में बह रहे हैं वे जल तत्व हैं चाहे वह पानी हो, रक्त हो या शरीर में बनने वाले सभी तरह के रस। जल तत्व ही शरीर की ऊर्जा और पोषक तत्वों को पूरे शरीर में पहुंचाने का काम करता है। इसे आयुर्वेद में कफ नाम से भी जाना जा सकता है। इसमें असंतुलन होने पर यह शरीर को बीमार कर देता है।

हमारे शरीर में जितनी भी गर्माहट है। वह सब अग्नि तत्व से है। यह अग्नि तत्व भोजन को पचाकर शरीर को स्वस्थ रखता है। आयुर्वेद में इसे पित नाम से भी जाना जाता है। ऊष्मा का स्तर न्यूनाधिक हो जाने से शरीर रोगी हो जाता है।

हम सांस के रूप में हवा (आक्सीजन) लेते है जिसमें प्राण है वह सब वायु तत्व है। आयुर्वेद में इसे वात नाम कहा जाता है। आकाश अनन्त है इस प्रकार मन की भी कोई सीमा नही।

इसी प्रकार यह पृथ्वी जो हमारा आधार है पंचमहाभूतों से बना हुआ मिटटी, वायु, जल, आकाश और तेजोमय भूमिखण्ड. चन्द्रमा, बुध, शुक्र, सूर्य, मंगल, बृहस्पति, शनि और नक्षत्रों की कक्षाओं से आवृत है। जैसा कि भूमि का स्वरूप कहा गया है।[1]--

भूमेः पिण्ड.ः शशांकज्ञकविरविकुजेज्यार्किनक्षत्रकक्षा-
वृतैर्वृतो वृतः सन् मृदनिलसलिलव्योमतेजोमयोऽयम् ।।

इससे यह ज्ञात होता है कि सौर जगत में स्थित ग्रहनक्षत्रों के पिण्डों के साथ हमारा निरन्तर सम्बन्ध होने से उनकी गति स्थिति एवं रासायनिक परिवर्तनों के कारण हमें प्रभावित करता रहता है। फलित ज्योतिषशास्त्र के अनुसार नक्षत्र, राशि एवं ग्रह मानव शरीर के अंग विशेष का प्रतिनिधित्व करते है। जिससे रोगों से पीड़ित अंगो में किस रोग के कारण पीड़ा है। इसका अनुमान एवं रोगों की साध्यता, असाध्यता का ज्ञान करना सरल है। राशि एवं ग्रहों से रोगों का अनुमान करना ज्योतिषशास्त्र के प्राय सभी फलित (होरा) ग्रन्थों में फुटकर रीति से अनेकानेक स्थानों में पाया जाता है। इससे पूर्व आपने कालपुरूष के शरीर में नक्षत्रों, राशि एवं ग्रहों के अंग प्रतिनिधित्वों के बारे में अध्ययन कर लिया होगा।
इस इकाई में आप शरीर के अधो अंग वस्ति रोगों के सम्बन्ध में अध्ययन करेंगे। कालपुरूष के शरीर में सप्तमराशि, तुलाराशि तथा चित्रा, स्वाती एवं विशाखा नक्षत्र वस्ति अंग के द्योतक है। द्वादशभावों में सप्तम भाव से वस्ति अंग का बोध होता है।
शरीर के अंगो में नाभि (पृष्ठ) पीठ कटि, वृषण, गुदा, वंक्षण और लिंग इनके बीच में नीचे की ओर एक द्वार वाली पतले चर्म से बनी हुई नीचे को मुख की हुई वस्ति होती है। जैसा कि सुश्रुत संहिता में कहा गया है।[2]

नाभिपृष्ठकटीमुष्कगुदवंक्षणशेफसाम् ।
एकद्वारस्तनुत्वक्को मध्ये वस्तिरधोमुख ।।

वस्ति शरीर के दोषों का शोधन कार्य करती है, तथा इन्हें शरीर से बाहर निकालती है। वस्ति रोग अनेक प्रकार के होते है जैसे प्रमेह, मधुमेह, बृद्धिरोग, उपदंश, गुह्यरोग, मूत्रस्थली के रोग तथा आंत्ररोग इत्यादि।

१.३.१आयुर्वेद के अनुसार शरीर का निर्माण

[1]सि.शि.गो.अ..भु.श्लो.सं. 2
[2]सुश्रुत संहिता निदानस्थानम् 3/18

विश्व की सबसे प्राचीन चिकित्सा प्रणाली आयुर्वेद है। आयुर्वेद शब्द दो संस्कृत शब्दों आयुष तथा वेद से मिलकर बना है। जिसका शाब्दिक अर्थ है, जीवन का विज्ञान या जीवन से सम्बन्धित ज्ञान। वस्तुत आयुर्वेद विज्ञान कला और दर्शन का मिश्रण है। जिसका सम्बन्ध मानव शरीर को निरोग रखने तथा रोग हो जाने पर रोगमुक्त करने एवं आयु बढ़ाने से है। चरक संहिता में कहा गया है।[३]--

हिताहितं सुखं दुःखमायुस्तस्य हिताहितम्।
मानं च तच्च यत्रोक्तमायुर्वेदः स उच्यते ।

आयुर्वेद के अनुसार मानव शरीर चार मूलतत्वों से निर्मित है जैसा कि सुश्रुत संहिता में कहा गया है ''दोषधातुमलमूलं हि शरीरम्'' अर्थात् दोष, धातु एवं मल तीनों पर शरीर आधारित है। जिसको निम्नलिखित प्रकार से जाना जा सकता है।

पंचमहाभूत	दोष	धातु	मल
पृथ्वी		रस	मल
जल	कफ	रक्त	मूत्र
तेज	पित	मांस	पसीना
वायु	वात	मेदस्	
आकाश		अस्थि	
		मज्जा	
		शुक्र	

१.३..२ रोगोंत्पति के कारण --

शरीर पांच मूलतत्त्वों (पंचमहाभूत्तों) अर्थात् पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश के सन्दर्भ में पूर्व में विवेचन कर चुके है। इन पंचमहाभूतों में विकार उत्पन्न होने से मनुष्य रोगी बन जाता है। अग्रिम दोष, धातु और मल के बारे में आयुर्वेद और ज्योतिष दोनों के अनुसार समझने का प्रयास करेंगे।

दोष -- वात, पित एवं कफ ये तीन दोष कहलाते है। जब इनमें विकार उत्पन्न होता है, तब शरीर को रोगी या शरीर में रोग उत्पन्न करते है और जब ये अविकृत या विकार रहित रहते है, तब शरीर को बढ़ाते है। वात, पित और कफ को दोष तो कहते ही है परन्तु धातु एवं मल भी कहते है। दोष इसलिए कहते है क्योंकि इनके द्वारा रस आदि धातु एवं पुरीष आदि मल दूषित या विकृत हो जाते है।[४]-

धातवश्च मलाश्चापि दुष्यन्त्येभिर्यतस्ततः
वातपितकफा एते त्रयो दोषा इति स्मृता ।।

यद्यपि ये समस्त शरीर में व्याप्त है, तथापि हृदय के उपरि भाग के शरीरावयवों में कफ का, हृदय एवं नाभि के मध्य भाग के शरीरावयवों में पित का और नाभि के नीचे शरीरावयवों मे वायु का विशेषरूप से आश्रय है। भावप्रकाश में कहा गया है।[५]--

[3]चरक संहिता सू.स्था. 1/40
[4]भा.प्र.ग.प्र.श्लो 107
[5]भा.प्र.ग.प्र.श्लो 105

वायुः पितं कफश्चेति त्रयो दोषाः समासतः।
विकृताविकृता देहं घ्नन्ति संवर्द्धयन्ति च।।
ते व्यापिन्नोऽपि हृन्नाभ्योरधोमध्योर्ध्वसंश्रयाः।

धातु -- शरीर का धारण एवं पोषण करने के कारण रस एवं रक्त आदि द्रव्य "धातु" कहे जाते है। शरीर में सात ऊतक प्रणालियां होती है, जिन्हे धातु कहते है। वे है रस, रक्त, मांस, मेदस्, अस्ति, मज्जा तथा शुक्र। ये सातों अपने अपने रूप में स्थित रहकर शरीर का धारण एवं पोषण करते है [6]–

एते सप्त स्वयं स्थित्वा देहं दधति यन्नृणाम्।
रसासृगमांसमेंदोऽस्थिमज्जाशुक्राणि धातवः ।।

मल -- मल का अर्थ है अपशिष्ट उत्पाद या गंदगी । यह शरीर की तिकड़ी यानी दोषों और धातुओं में तीसरा है। मल के तीन मुख्य प्रकार है जैसे मल, मूत्र और पसीना। मानव का उचित स्वास्थ्य बनाए रखने के लिए मल का शरीर से उचित उत्सर्जन आवश्यक है। इस प्रकार जिस मानव के वातादि त्रिदोष, रसादि धातुएं, पुरीषादि मल, पाचकादि त्रयोदश अग्नियां (१ जठारग्नि, २ पंचभूताग्नि ३ सप्तधात्वाग्नि) शरीरानुरूप व्यापार सम अवस्था में हो, आत्मा श्रोत्रादि इन्द्रियां तथा मन प्रसन्न विषाद रहित हो वह स्वस्थ कहा जाता है।

१.३.३ राशि एवं ग्रहों द्वारा दोष, धातु तथा शरीरावयों का ज्ञान

दोष, धातु एवं मलादि तत्वों को ज्योतिषशास्त्र में ग्रह, राशि एवं भावों के अनुसार विभाजित किया गया है। किस राशि एवं किस ग्रह में किस दोष एवं धातु की प्रधानता हैं। शरीर के किन किन अंगो पर राशि एवं ग्रहों का विशेष अधिकार है। अस्थि, रूधिर इत्यादि शारीरिक पदार्थो पर किस ग्रह का आधिपत्य है। इन सब तत्वों को समझने के लिए नीचे एक ग्रहचक्र दिया जाता है।

क्रम सं.	ग्रह	शरीर (अवयव)	तत्व	शारीरिक (सप्तधातु)	शारीरिक शक्ति	दोष
१	सूर्य	सिर	अग्नि	अस्थि	प्राणाधार एवं मर्म स्थानीय शक्ति	पित
२	चन्द्र	मुख	जल	रक्त (रूधिर)	पालन शक्ति पौष्टिक तत्व	वातश्लेष्मिक
३	मंगल	कान	अग्नि	मज्जा	सोथ एवं जलन	पित
४	बुध	पेट	भूमि	चर्म (त्वचा)	शारीरिक नसों की शक्ति	वात,कफ,पित (त्रिदोष)
५	गुरू	गुर्दा	आकाश	वसा (मांस एवं चर्बी)	रक्ताधिक्य एवं स्थूलता	कफ
६	शुक्र	नेत्र	जल	वीर्य	शारीरिक नसों	कफ एवं

[6] भा.प्र.ग.प्र.श्लो 159

					के अन्तर्गत रस	वायु
७	शनि	पैर	वायु	स्नायु	प्रगाढ़ता	वातश्लेष्मिक

इस प्रकार ज्योतिषशास्त्र में ग्रहों को शरीर में सप्तधातु एवं त्रिदोषों के साथ-साथ शारीरिक अवयवों एवं शारीरिक शक्ति का कारक भी माना है। जैसे सूर्य पितदोष कारक, शारीरिक शक्ति में प्राणों का आधार, अस्थि कारक, अग्नितत्वात्मक, शारीरिक अंगों में सिर का कारक है। इसी प्रकार उपरोक्त सारणी से अन्य ग्रहों के सम्बन्ध में भी जानना चाहिए। जैसा फलितज्योतिष ग्रन्थों में कहा गया है७। --

पितवातयुतं करोति दिनकृत् वातं कफं शीतगुः।
पितं भूमिसुतस्तथा शशिसुतो वातं च पितं कफम्।
जीवो वातकफौ सितोऽनिलकफौ वातं च पितं शनिः।
क्षीणेन्दुः स्थिरराशिनाथकथितं पूर्णकफं तोयभे।

ग्रहों को शरीर में सप्तधातु का कारण माना है। बृहज्जातक में आचार्य वराहमिहिर ने कहा है।८-

स्नाय्वस्थ्यसृक्त्वगथ शुक्रवसे च मज्जा-
मन्दार्कचन्द्रबुधशुक्रसुरेज्यभौमाः ।।

इसी प्रकार राशि एवं भावों के अनुसार शारीरिक अंगों, तत्वों एवं दोषो का निर्धारण किया गया है। जिसे राशि भाव चक्र के द्वारा इस प्रकार समझ सकते है -

राशि	भाव	बाहरी अंग	भीतरी अंग	तत्व	अधिकार	दोष
मेष	प्रथम	सिर	मस्तिष्क	अग्नि	जीवनी शक्ति	पित
बृष	द्वितीय	मुख	नेत्र,यन्त्र	भूमि	हड्डी एवं मास	वात
मिथुन	तृतीय	कण्ठ	श्वायक्रिया	वायु	श्वासक्रिया	त्रिदोष
कर्क	चतुर्थ	वक्षस्थल	फेफड़ा	जल	रूधिर	कफ
सिंह	पंचम	हृदय	रक्त,आंत	अग्नि	जीवनी शक्ति	पित
कन्या	षष्ठ	उदर	आमाशय	भूमि	हड्डी एवं मास	वात
तुला	सप्तम	कमर	गुर्दा	वायु	श्वासक्रिया	त्रिदोष
वृश्चिक	अष्टम	गुप्तांग	गुदा	जल	रूधिर	कफ
धनु	नवम	जंघा	जांघ,नसें	अग्नि	जीवनी शक्ति	पित
मकर	दशम	घुटने	जोड़	भूमि	हड्डी एवं मास	वात

[7]प्र.मा.अ.12 श्लो.11
[8]बृहज्जातक अ. 2 श्लो. 11

कुम्भ	एकादश	पिंड़ली	हड्ड़ी,नस	वायु	श्वासक्रिया	त्रिदोष
मीन	द्वादश	पैर	अंगुलियां,जोड़	जल	रूधिर	कफ

इन दोनों ग्रहचक्र और राशिचक्र के अनुसार रोग निर्धारण करते समय यह देखना होगा कि कुण्ड़ली में भिन्न तत्वों में कितने ग्रह है। लग्न किस तत्व की राशि में है। जिस राशि तत्व में अधिक ग्रहों का समावेश होता है। उसी तत्वों के प्रकोप से प्रायः जातक रोग ग्रस्त होता है।

आयुर्वेद के अनुसार पंचभूतात्मक शरीर में पंचभूतात्मक जगत के समान आकाश एवं पृथ्वी तत्व तो क्रियाहीन ही हैं तथा कफ (जल तत्व) पित (अग्नि तत्व) और वात (वायु तत्व) ही क्रियाशील हैं। दोषी तत्वों को जानने की दूसरी विधि इस प्रकार से है।

१. सूर्य स्थित राशि ।
२. लग्न स्थित राशि ।
३. षष्ठस्थान की राशि ।
४. षष्ठस्थ ग्रह ।
५. षष्ठस्थान पर पूर्ण दृष्टि ड़ालने वाला ग्रह ।

इन पांचो में विशेषता जिस तत्व की होगी उन्हीं तत्वों से रोगोत्पति की सम्भावना बनेगी। यदि दोनों विचारो में एक ही परिणाम हो, तो फल भी निश्चय है। यदि परिणाम में विभिन्नता हो, तो द्वितीय नियम की प्रधानता होगी।

रोगोत्पति के कारण के पश्चात् अब आप फलित ज्योतिषशास्त्र के कतिपय ग्रन्थों में दिये गए वस्तिस्थूल एवं मूत्राशय से सम्बन्धित रोगों के बारे में जानेगें।

१.४ प्रमेह एवं मधुमेह

वस्ति एवं मूत्राशय के रोगों में प्रमेह एवं मधुमेह प्रमुख रोग है। जिन्हें ;क्पंइमजमे क्पेमेमद्ध भी कहते है। यह रोग अनेक रोगों का समूह है। जिसमें लम्बे समय तक रक्त में शर्करा का स्तर उच्च होता है। जियके कारण पेशाब मूत्र में शक्कर की मात्रा बढ़ जाती है। प्यास और भूख में बृद्धि होती है। उपचार न होने पर मृत्यु हो सकती है। इसके दीर्घकालीन बने रहने पर हृदयरोग, पक्षाघात, स्ट्रोक, क्रोनिक किड़नी की विफलता, पैर, अल्सर, आंखो को नुकसान शामिल है। त्रिदोष प्रकोप से उत्पन्न धातुओं की विषमता में विकार होने के कारण इस रोग में अनेक विषमताएं देखी जाती है। यह रोग शरीर को क्षीण कर देता है। ज्योतिष शास्त्र के अनुसार निम्नलिखित ग्रहयोगों के कारण यह रोग होता है --

१. धनु या मीन राशि में स्थित बुध पर सूर्य की दृष्टि हो, तो जातक प्रमेह रोगयुक्त होता है।[९]

शूरं प्रमेहपीड़ितमश्मर्योपहतमातुरं शान्तम्।
जनयति रविणा दृष्टो जीवगृहे चन्द्रज पुरूषम्।।

[9]सारावली अ. 26 श्लो. 55

इस योग में अकेला बुध त्रिदोष कारक है।

२. शनि, सूर्य एवं शुक्र ये तीनों पंचम स्थान में हो ।
३. लग्न में सूर्य सप्तम में मंगल हो।
४. राहु यदि अष्टमस्थान में बैठा हो तो जातक प्रमेह रोग से पीड़ित होता है।
५. दशमस्थान में स्थित मंगल शनि ये युत या दृष्ट हो।
६. षष्ठस्थान में मंगल हो षष्ठेश पापग्रह के साथ हो।
७. अष्टमभाव पर मंगल की दृष्टि हो तो मूत्राशय रोग होता है।
८. सप्तम में शनि एवं राहू हो, तो मूत्ररोग होता है।
९. षष्ठभाव में जलराशि हो, उसमें चन्द्रमा हो। तो मूत्र-कृच्छ रोग होता है।

सुश्रुत संहिता के मतानुसार मूत्र-कृच्छ प्रमेह मधुमेह का ही भेद है।

१०. सप्तम में मंगल पापयुक्त या दृष्ट हो, तो मूत्र-कृच्छ रोग हो।
११. षष्ठेश पापयुक्त नवम में हो या षष्ठेश व्ययेश युक्त कहीं भी हो, पर शनि से दृष्ट हो तो मूत्र-कृच्छ रोग होता है।

निम्नलिखित कुण्ड़ली में षष्ठेश शनि द्वादशेश सूर्य के साथ होकर द्वादश भाव में बैठा है। सप्तमेश बृहस्पति केतु के साथ चतुर्थ भाव में है। अष्टमेश मंगल अपनी नीचराशि कर्कराशि में शुक्र के साथ एकादश भाव में बैठा है। अष्टमेश मंगल चन्द्रमा और षष्ठभाव को देख रहा है। सप्तमेश बृहस्पति षष्ठेश शनि और द्वादशेश सूर्य को देख रहा है तथा षष्ठेश शनि और द्वादशेश सूर्य की षष्ठभाव पर दृष्टि है।

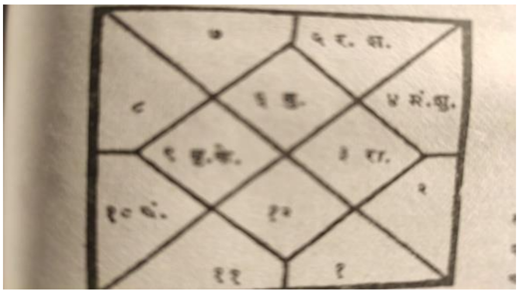

चन्द्र कुण्ड़ली के अनुसार षष्ठभाव में राहु तथा सप्तम भाव में नीचस्थ मंगल और शुक्र की युति है। जिससे जातक मधु-प्रमेह रोग से पीड़ित रहने के कारण पैर में व्रण हुआ जिसकी शल्य चिकित्सा होने के बाद इनकी मृत्यु हो गई। शनि और सुर्य द्वादशस्थ है। द्वादश स्थान से पैर का व्रण सूचित होता है। परन्तु मृत्यु का मुख्य कारण मधु-प्रमेह रोग माना गया।

१२. यदि चन्द्रमा जलराशि गत हो और चन्द्र स्थित राशि का स्वामी षष्ठस्थान में हो यदि जलराशिगत बुध की दृष्टि उस पर पड़ती हो, तो जातक को मूत्र-कृच्छ रोग होता है।
१३. यदि तृतीयेश बुध और मंगल के साथ लग्न में बैठा हो, तो मूत्र-कृच्छ रोग होता है।
१४. यदि षष्ठेश अथवा सप्तमेश, द्वादशेश के साथ हो और शनि से दृष्ट हो तो मूत्र-कृच्छ प्रमेहादि रोग होता है।

निम्नलिखित कुण्ड़ली में षष्ठेश बृहस्पति तथा सप्तमेश मंगल दोनों ही दशम स्थान में बैठे है। द्वादशेश बुध के साथ बृहस्पति और मंगल नही है परन्तु द्वादशेश बुध

का बृहस्पति और मंगल से अन्योन्य दृष्टि सम्बन्ध है तथा बृहस्पति और मंगल पर शनि की पूर्ण दृष्टि है। इस कारण ये प्रमेह रोग से पीड़ित हुए।

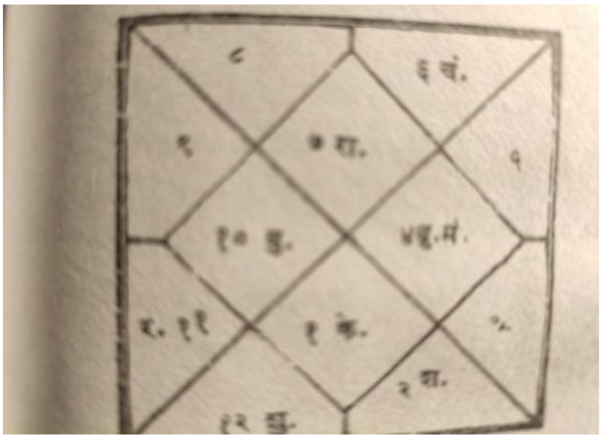

यह रोग त्रिदोष के कारण शारीरिक धातु रक्त, स्नायु, अस्थि इत्यादि के क्षरण के कारण शरीर को क्षीण कर देता है। ज्योतिष शास्त्र में मिथुन, तुला एवं कुम्भ त्रिदोषकारक राशियां है। ग्रहों में बुध त्रिदोष्कारक है। मंगल को भी उपर्युक्त अधिकांश योगों में इसका कारण पाया गया है। मूत्र रोग कारक ग्रहों को भी इसका कारण माना जा सकता है। इस प्रकार ज्योतिष शास्त्र में षष्ठ, सप्तम एवं अष्टमभाव में राशि एवं ग्रहों के दोष तथा तत्वादि को जानकर प्रमेह एवं मधुमेह ;क्पंइमजमे क्पेमेंमद्ध रोग का ज्ञान सरलता से किया जा सकता है।

१.४.१ मूत्रस्थली जनितरोग एवं जननेन्द्रिय रोग

मूत्रस्थली जनितरोग बारह प्रकार के होते है। ज्योतिष रत्नाकर में देवकीनन्दन सिंह ने कहा है ---

१. वात-कुण्ड़ली - इसमें वायु कुपित होकर वस्तीदेश में कुण्ड़ली के आकार में टिक जाती है। जिससे पेशाब बन्द हो जाता है।
२. वातष्टीला - इसमें वायु मूत्र द्वारा वस्तिदोष में गोले के आकार में होकर पेशाब रोकता है।
३. वात-वस्ति - जो मूत्र के वेग के साथ ही वस्ति की वायु, वस्ति का मुख रोक देती है।
४. मूत्रातीत - इसमें बार-बार पेशाब लगता है और थोड़ा-थोड़ा होता है।
५. मूत्र-जठर - इसमें मूत्र का प्रवाह रूकने से अधोवायु कुपित होकर नाभि के नीचे पीड़ा उत्पन्न करती है।
६. मूत्रोत्संग - इसमें उतरा हुआ पेशाब वायु की अधिकता से मूत्रनाल या वस्ति में एक बार ही रूक जाता है और फिर बड़े वेग के साथ कभी-कभी रक्त लिये हुए निकलता है।
७. मूत्रक्षय - इसमें खुशकी के कारण वायु-पित के योग से दाह होता है और मूत्र सुख जाता है।

८. मूत्रग्रन्थि - इसमें वस्तिमुख के भीतर पथरी की गांठ सी हो जाती है जिससे पेशाब करने में बहुत कष्ट होता है।
९. मूत्र-शुक्र - इसमें मूत्र के साथ आगे पीछे शुक्र निकलता है।
१०. उष्णवात - इसमें व्यायाम या अधिक परिश्रम करने, गर्मी या धूप सहने से पित कुपित होकर वस्तिदेश में वायु से आवृत हो जाता है इसमें दाह होता है और मूत्र हल्दी की तरह पीला या कभी-कभी रक्त मिला आता है इसें कड़क भी कहते है।
११. पितज मूत्रौकसाद - इसमें पेशाब कुछ जलन के साथ गाढ़ा-गाढ़ा होकर निकलता है और सुखने पर गोरोचन के चूर्ण की तरह हो जाता है।
१२. कफज मूत्रौकसाद - इसमें सफेद और लुआबदार पेशाब कष्ट से निकलता है।

मूत्रस्थली रोग -- मूत्रस्थली रोगों को एक प्रकार से जननेन्द्रिय रोग भी कहा जाता है -

१. यदि राहु अष्टम नवांश में हो और अष्टमेश अष्टमस्थान से त्रिकोण में हो, तो जननेन्द्रिय रोग होता है।
२. यदि चतुर्थ एवं सप्तमस्थान का स्वामी षष्ठ, अष्टम अथवा द्वादश स्थान में हो, अथवा चतुर्थ एवं सप्तम स्थान के स्वामी शत्रुराशि गत होकर पापदृष्ट हो तो मूत्रस्थली जनित रोग होते है।
३. यदि लग्नेश और द्वितीयेश, शुक्र के षड्वर्ग में हो तो जननेन्द्रिय रोग होता है।
४. यदि शुक्र षष्ठ, अष्टम अथवा द्वादश स्थान गत हो, अथवा षष्ठेश के साथ हो तो जननेन्द्रिय में पीड़ा होती है।
५. षष्ठेश और लग्नेश, बुध तथा राहु के साथ हों तो जननेन्द्रिय रोग होता है।
६. शुक्र सप्तमस्थ होकर शनि एवं मंगल के साथ हो अथवा शनि, मंगल से दृष्ट हो तो जननेन्द्रिय रोग होता है।
७. यदि लग्नाधिपति षष्ठ स्थान में हो और षष्ठेश बुध के साथ हो तो जननेन्द्रिय रोग होता है।

इस कुण्ड़ली में लग्नाधिपति शुक्र षष्ठस्थान में हैं। तथा षष्ठेश बृहस्पति सप्तमेश मंगल के साथ दशम स्थान में बैठा है। चतुर्थ स्थान का स्वामी शनि अष्टम स्थान में है। षष्ठेश बृहस्पति का बुघ से अन्योन्य दृष्टि सम्बन्ध है तथा षष्ठेश बृहस्पति लग्नेश को भी पूर्ण दृष्टि से देख रहा है। अतः जातक जननेन्द्रिय रोग से पीड़ित था।

इस रोग में वात और कफ को मुख्य कारण के रूप में पाया गया है। चन्द्रशुक्र (जलतत्व) एवं शनिराहु (वायुतत्व) इसके कारक ग्रह माने गये है, क्योंकि इनमें कफ और वात की प्रधानता है। षष्ठ, सप्तम एवं अष्टम भाव इसके मुख्य भाव है। अतः इन भावों में वात और कफ की अधिकता होने पर राशि एवं ग्रहो के पीड़ित होने पर रोग की सम्भावना बनती है।

१.४..२ बृद्धि-उपदंश शूक आदि लिंग रोग

बृद्धिरोग सात प्रकार का होता है यथा वातजन्य, पितजन्य, कफजन्य, रक्तजन्य, मेदोजन्य, मूत्रजन्य एवं आन्त्रजन्य। इसमें मूत्रजन्य तथा आन्त्रतन्य बृद्धि का कारण वायु है। वायु के कारण बृद्धि होती है। कोई एक दोष नीचे की ओर नाभि से नीचे कुपित होकर अण्ड़कोष वाहिनी धमनी मे पहुंचकर फलकोषो में बृद्धि उत्पन्न करता है। इसको बृद्धिरोग कहते है तथा इसे एपीड़ीड़ीमिटस ;म्चपकपकलउपजपेद्ध भी कहते है। बृद्धिरोग में बस्ति मूत्राशय में वेदना, कटिशूल, मुष्क में वेदना, लिंग में वेदना, वायु का अवरोध एवं फलकोष में सूजन ;व्तबीपजपेद्ध होती है। ज्योतिष शास्त्र में निम्नलिखित ग्रहयोगों के प्रभाववश बृद्धिरोग होता है।

१. मंगल, शनि एवं राहु षष्ठस्थान में हो तो वृषण रोग होता है।
२. लग्न में गुरू एवं राहु दोनों हो तो वृषण रोग होता है।
३. शनि या मंगल के साथ राहु लग्न में हो तो अण्ड़बृद्धि होती है।
४. लग्नेश राहु के साथ अष्टमस्थान में हो तो अण्ड़बृद्धि होती है।
५. सप्तमभाव या सप्तमेश पर शनि व राहु की दृष्टि हो तो वातकोप से अण्ड़बृद्धि होती है।

निम्नलिखित कुण्ड़ली में सप्तमभाव और सप्तमेश शुक्र पर शनि एवं राहु की दृष्टि यौन रोग की सम्भावना दे रही है। लग्नस्थ शनि का षष्ठेश मंगल तथा सप्तमेश शुक्र से दृष्ट होकर लग्नस्थ होना अनिष्टप्रद है। लग्नस्थ शनि का राहु, सप्तमस्थ शुक्र तथा मंगल गुरू से दृष्टि संबंध जटिल रोग का संकेतक है। चन्द्र कुण्ड़ली से षष्ठेश, सप्तमेश की युति तथा शनि से दृष्टि होना रोग को दर्शाता है। चन्द्रमा से अष्टमभाव तथा अष्टमेश पर शनि एवं राहु की दृष्टि के कारण पाप पीड़ित हो गया जो गुप्तांग पीड़ा की पुष्टि करता है। अतः ये जातक अंड़कोष की सूजन व पीड़ा से व्यथित रहा।

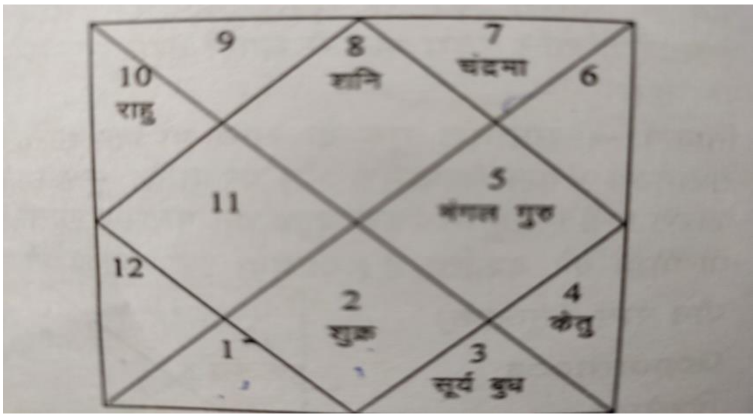

६. गुलिक के साथ लग्नेश अष्टमस्थान में हो तो अण्ड़बृद्धि होती है।
७. लग्न में राहु त्रिकोण में गुलिक तथा अष्टम में मंगल एवं शनि हो तो अण्ड़बृद्धि होती है।
८. लग्नेश से आक्रांत नवांश का स्वामी राहु, मंगल या गुलिक के साथ हो तो अण्ड़बृद्धि हो।
९. राहु एवं शनि एक साथ हो तो अण्ड़बृद्धि होती है।
१०. मंगल एवं राहु एक साथ हो तो अण्ड़बृद्धि होती है।

११. अष्टम सथान में शुक्र एवं मंगल हो तो वात कोप से अण्ड़बृद्धि होती है।
१२. शुक्र एवं मंगल, मंगल की राशि में हो तो वात कोप से तो अण्ड़बृद्धि हो।

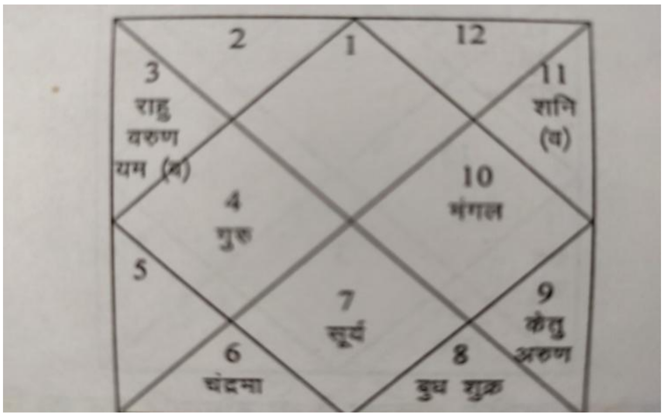

इस कुण्ड़ली में षष्ठेश बुध की सप्तमेश शुक्र के साथ अष्टमभाव में युति है। शुक्र लग्नेश एवं अष्टमेश मंगल की राशि में स्थित है तथा अष्टमभाव पर व्ययेश गुरू एवं शनि की दृष्टि गुप्त रोग का संकेत देती है। चन्द्र कुण्ड़ली के अनुसार षष्ठस्थान पर षष्ठेश शनि का राहु से दृष्ट होना मंगल का अष्टमेश होकर अष्टमभाव को देखना, शनि एवं केतु की भी अष्टमभाव पर दृष्टि गुह्य अंग रोग की पुष्टि करती है। अतः लग्न से अष्टमभाव बुध शुक्र की युति तथा शनि की दृष्टि से पापी हुआ है तथा चन्द्रमा से अष्टमभाव भी मंगल, शनि तथा केतु की दृष्टि के कारण पाप पीड़ित हुआ है। ये अण्ड़शोथ से पीड़ित था।

१३. मंगल की राशि में स्थित चन्द्रमा एवं शुक्र ये दोनों गुरू एवं शनि से दृष्ट हों, तो वीर्य एवं रक्त इन दोनों से मिश्रित विकार से अतिशय अण्ड़बृद्धि होती है।
१४. अष्टमेश का नवांश स्वामी राहु के साथ हो तो अण्ड़बृद्धि होती है।
१५. अष्टम भावगत नवांश की राशि में शुक्र, मंगल एवं चन्द्रमा हो तो अण्ड़बृद्धि होती है।
१६. लग्न एवं अष्टम स्थान में बलवान पापग्रह हो तो बहुमूत्र रोग से अण्ड़बृद्धि होती है।
१७. यदि लग्नेश अष्टमगत हो और अष्टम स्थान में राहु तथा मान्दि भी बैठा हो तो अण्डकोष. बृद्धिरोग होता है।
१८. यदि बृहस्पति, सूर्य और राहु तृतीय स्थानगत हो तो अण्ड़बृद्धि होती है।
१९. यदि राहु लग्न में हो और गुलिक त्रिकोण में हो तथा अष्टमस्थान में मंगल और शनि बैठे हो तो अण्ड़बृद्धि होती है।

निम्नलिखित कुण्ड़ली में राहु अधीष्ठित राशि का स्वामी तथा अष्टमेश बुध लग्नस्थ है। षष्ठेश युक्त शनि तथा बृहस्पति की दृष्टि लग्न पर है। केतु व शनि की दृष्टि षष्ठभाव पर है। चन्द्रमा से अष्टमभाव में मंगल व अष्टमेश शनि की युति तथा राहु की दृष्टि के कारण अष्टमभाव पाप पीड़ित है। अतः ये जातक अंड़कोष की सूजन व पीड़ा से व्यथित रहा।

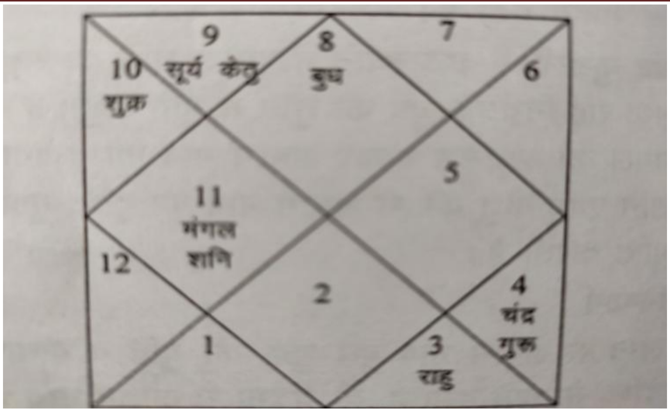

२०. लग्नाधिपति राहु केतु अथवा और किसी एक दूसरे पापग्रह के साथ अष्टम स्थान में हो तो अण्ड़बृद्धि होती है।

२१. राहु, मंगल, शनि और मान्दि लग्न के नवांशपति के साथ हो तो अण्ड़बृद्धि होती है।

२२. यदि शनि मंगल से युक्त होकर अष्टमस्थ हो तो वात प्रकोप से अण्ड़बृद्धि होती है।

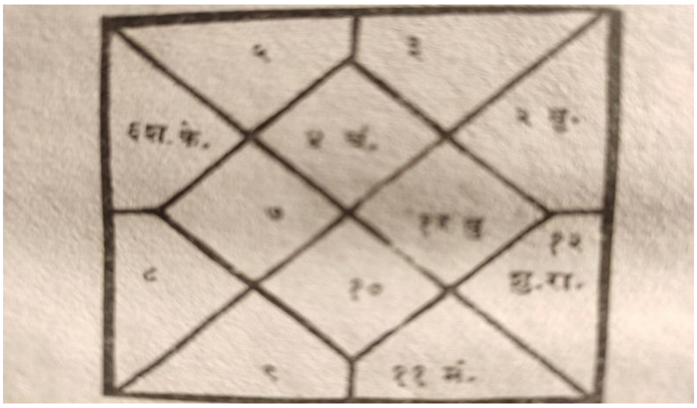

इस कुण्ड़ली में अष्टमस्थान में मंगल कुम्भराशि गत है और कुम्भराशि के स्वामी शनि पर मंगल की पूर्ण दृष्टि है। इस कारण यद्यपि शनि मंगल के साथ अष्टमस्थान में नही है परन्तु अष्टमस्थ मंगल को शनि से साधर्म्म सम्बन्ध है। अतः ये बहुत काल से सांजर अर्थात् ''फायलेरिया'' रोग पीड़ित हुए।

२३. शुक्र मंगल की राशि में हो और मंगल भी साथ हो तो भूमि संसर्ग और वातकोप से तो अण्ड़बृद्धि होती है।

२४. यदि मंगल और चन्द्रमा मेष अथवा बृष राशि में तथा गुरू एवं शनि से दृष्ट हों, तो वीर्ययुक्त दोष के कारण अण्ड़बृद्धि होती है।

इस रोग के मुख्य कारक राहु एवं मंगल प्राय सभी ग्रहयोगों में मुख्यरूप से देखे जा रहे है। राहु वात कारक मंगल पित कारक ,शरीर के अधो अंग भी वात कारक है। यदि इन अंगों में वात और पित कारक राशियों का योग हो तो रोग होने की सम्भावना पूर्ण होती है। उपर्युक्त योगों को होरा के प्रमाणिक ग्रन्थों जैसे सारावली, जातक पारिजात, प्रश्नजातक, बृहज्जातक, ज्योतिष एवं रोग, ज्योतिष पीयूष, ज्योतिष

रत्नाकर से संग्रहिंत किया गया है। इसके अतिरिक्त आयुर्वेद में रोगो के लक्षण, कारण धातु एवं दोषों का ज्योतिषशास्त्र के अनुसार अध्ययनकर रोगों एवं रोग से प्रभावित अंगों का सरलता से ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। रोगों की साध्यता, असाध्यता, रोगों के होने का समय, ग्रहयोगों, योगकारक ग्रहों की महादशा, अन्तर्दशा, प्रत्यन्तर्दशा के आधार पर निर्णय किया जा सकता है तथा मणि, मन्त्र, औषधि के अनुसार उपचार किया जा सकता है।

उपदंश एवं शुकादि रोग

लिंग में घाव होने को उपदंश तथा सूजन आने को शूक कहते है। यह उपदंश रोग पांच प्रकार का होता है यथा तीनो दोषों से पृथक् वातजन्य, पितजन्य, कफजन्य तीनों के सन्निपात से एक और पांचवा रक्तजन्य[१०]--

स पंचविधास्त्रिभिदोषै पृथक् समस्तैरसृजा चेति।।

ज्योतिष शास्त्र में ये रोग निम्नलिखित ग्रहयोगों के प्रभाववश होते है -

१. षष्ठ स्थान में शुक्र हो तो उपदंश रोग होता है।
२. चन्द्र बुध और लग्नेश सूर्ययुक्त राहु के साथ हो तो उपदंश हो।
३. शुक्र की महादशा में चन्द्रमा की अन्तर्दशा या चन्द्रमा की महादशा शुक्र की अन्तर्दशा हो।
४. षष्ठेश मंगल के साथ हो तो उपदंश रोग होता है।

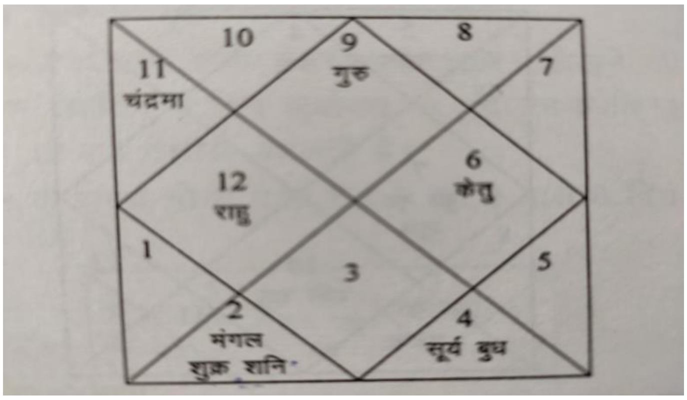

इस कुण्ड़ली में षष्ठेश शुक्र एवं व्ययेश मंगल तथा शनि की षष्ठस्थान पर युति है। सप्तमेश बुध सूर्य के साथ अष्टमस्थ है तथा शनि एवं राहु से दृष्ट है। इसे यौन रोग का संकेत माना है। चन्द्र कुण्ड़ली में भी सप्तमेश सूर्य की अष्टमेश बुध से षष्ठभाव में युति यौन रोग दर्शाती है। जातक यौन रोग से पीड़ित हुआ।

५. लग्नेश मंगल के साथ षष्ठ स्थान में हो तो से लिंग में रोग हो।
६. बुध एवं राहु के साथ षष्ठेश लग्न में हो तो लिंग कट जाता है।
७. कर्क या वृश्चिकराशि में पापग्रहों के साथ चन्द्रमा हो।
८. अष्टम स्थान में पापग्रह हो।

[10]सु.सं.नि.स्था.अ.12 श्लो. 9

९. गुरू द्वादशस्थान में हो।
१०.षष्ठेश एवं बुध दोनों मंगल के साथ हो।
११.षष्ठेश एवं मंगल एक साथ हों तथा इन्हे शुभग्रह न देंखता हो।
१२.शुक्र सप्तम या अष्टम स्थान में हो, तो उपदंश रोग हो।

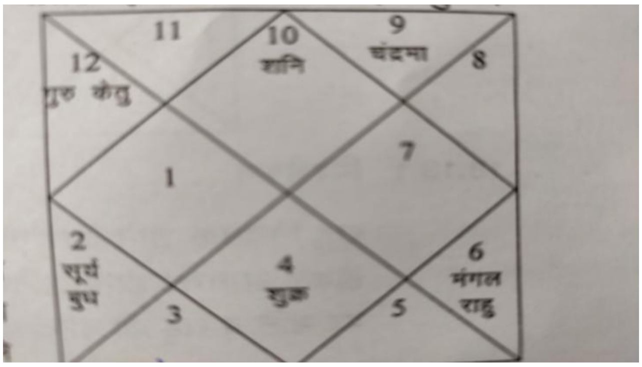

इस कुण्ड़ली मे शनि लग्न में स्वगृही होकर सप्तमस्थ शुक्र तथा नवमस्थ मंगल एवं राहु से दृष्ट है। लग्न व लग्नेश का शुक्र तथा राहु से दृष्ट होना अशुभ व अनिष्टप्रद है। शुक्र एवं सप्तमभाव पर शनि, गुरू एवं केतु की दृष्टि सप्तमभाव को पीड़ित करती है। शुक्र की दोनों राशियां वृष एवं तुला सूर्य बुध की युति तथा शनि की दृष्टि से पीड़ित है।

चन्द्र कुण्ड़ली में राहुयुक्त मंगल की चन्द्रमा पर दृष्टि रोगप्रद है। चन्द्रमा से षष्ठभाव में सूर्य बुध की युति तथा षष्ठेश का अष्टमस्थ होना रोग व पीड़ा देता है। अतः शुक्र का शनि, गुरू व केतु से दृष्ट होना, षष्ठेश तथा अष्टमेश की युति का चन्द्रमा से षष्ठस्थ होना सूजाक का कारण बना।

१३.बुधयुक्त षष्ठेश लग्न में हो तो शूक रोग हो।
१४.चन्द्रमा कर्क, वृश्चिक या कुम्भराशि के नवांश में शनियुक्त हो। तो उपदंश रोग हो।
१५.षष्ठेश शनियुक्त अष्टम में हो तो रोग के कारण शल्य चिकित्सा चीरफाड़ हो।
१६.शुभग्रह की दृष्टि से रहित शनियुक्त षष्ठेश लग्न में हो।
१७.यदि षष्ठेश मंगल सहित हो उस पर शुभग्रह की दृष्टि न हो। तो उपदंश रोग के कारण शल्य चिकित्सा हो।

इस रोग का मुख्यकारक षष्ठभाव एवं षष्ठेश का विभिन्न ग्रहों के साथ योग मुख्यरूप से देखा जा रहा है। चन्द्र, शुक्, राहु या मंगल इसके मुख्यकारक के रूप में दिखाई दे रहे है। जिसमें चन्द्रमा और शुक्र कफ कारक एवं राहु वातकारक मंगल पितकारक है। साथ में चन्द्र एवं शुक्र जल तत्व के भी कारक है। षष्ठ भाव में यदि इन तत्वों से सम्बन्धित राशि पाप ग्रहयोगों से युक्त हो तो उपर्युक्त रोगों की सम्भवना बन सकती है। ग्रहयोगों को होरा के प्रमाणिक ग्रन्थो से संग्रहित किया गया है।

१.४.३ स्त्रीरोग -

मासिकधर्म में गड़बड़ी , प्रदर, योनि मार्ग में व्रण एवं सूजन तथा योनि कन्द आदि रोगों को स्त्रीरोग कहते है। ये रोग निम्नलिखित ग्रह योगों के कारण होते है। -

१. यदि मंगल और राहु सप्तम स्थान में हों तो स्त्री को मासिक धर्म में रूधिर प्रवाह विशेष होता है।[11]

कुजांशेऽस्तगते सौरिदृष्टे नारी सरूग्भगा ।

२. यदि किसी स्त्री की कुण्ड़ली में सप्तम भाव में मंगल का नवांश हो तथा उस पर शनि की दृष्टि हों, तो योनि अथवा गर्भाशय में रोग होता है।

निम्न कुण्ड़ली लग्नेश एवं अष्टमेश मंगल की नीचस्थ सूर्य तथा षष्ठेश बुध से सप्तम भाव में युति तथा लग्न पर दृष्टि है। षष्ठेश एवं सप्तमेश का राशि परिवर्तन तथा शुक्र का षष्ठस्थ होकर व्ययभाव में स्थित चन्द्रमा तथा व्ययेश गुरू से दृष्टि सम्बन्ध, यौन रोग का संकेतक है। अष्टमभाव मे शनि एवं केतु की स्थिति तथा व्ययेश गुरू तथा द्वितीयस्थ राहु की दृष्टि गुप्तांग रोग दे सकती है।

चन्द्र कुण्ड़ली के अनुसार चन्द्रमा से सप्तमभाव में स्थित शुक्र पर राहु की दृष्टि है। चन्द्रमा से अष्टमभाव में षष्ठेश सूर्य तथा सप्तमेश बुध की युति है। चन्द्र सप्तमेश व अष्टमेश का राशि परिवर्तन तथा अष्टमेश का सप्तमभाव में नीचस्थ होना गुप्तांग रोग व पीड़ा देता है। ये महिला अष्टमभाव व अष्टमेश के पाप पीड़ित होने से योनि में अल्सर से पीड़ित हुई।

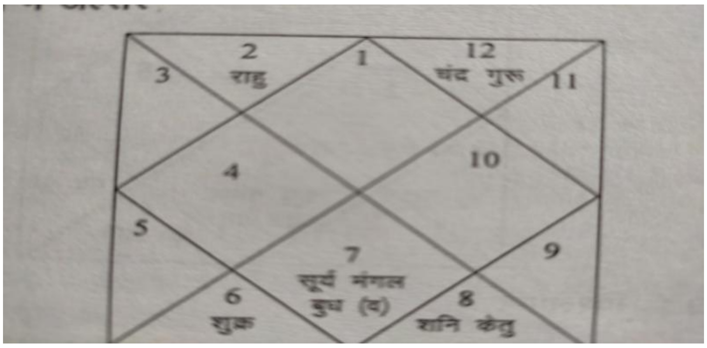

३. यदि मंगल पापयुक्त होकर सप्तमभाव या सप्तमेश से सम्बन्ध करें तो प्रदर रोग होता है।

निम्नलिखित कुण्ड़ली में लग्न से सप्तम भाव में षष्ठेश मंगल की अष्टमेश शनि से युति तथा राहु की दृष्टि मासिकधर्म में गड़बड़ी दे सकती है। लग्नेश बुध, सूर्य एवं शुक्र के साथ अष्टमस्थ है। चन्द्र कुण्ड़ली के अनुसार षष्ठेश शुक्र की सप्तमेश बुध से युति तथा षष्ठस्थ गुरू की दृष्टि रोग की पुष्टि करती है। शुक्र में शनि की अन्तर्दशा ने महिला को अवसाद युक्त बनाया। जिसका कारण चन्द्रमा (मन) की शनि (दुख) से युति है।

[11] बृहत्पाराशरहोराशास्त्रम् अध्याय 82 श्लो. 35

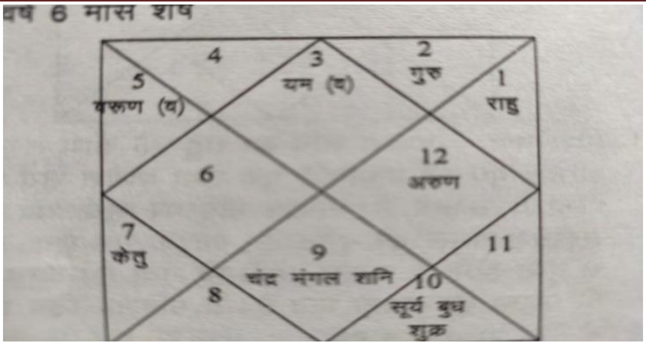

४. आश्लेषा, कृतिका या शतभिषा नक्षत्र में, रवि, शनि या मंगलवार में तथा द्वितीया, सप्तमी या द्वादशी में यदि किसी कन्या का जन्म हो तो स्त्रीरोग होता है।
५. लग्न में एक शुभ तथा एक पापग्रह हो तथा षष्ठभाव में दो पापग्रह हो।
६. सप्तमेश पापग्रह की राशि में पापग्रह से युति करें।
७. तुलाराशि, सप्तमभाव, सप्तमेश तथा मंगल पर पाप प्रभाव रजोधर्म सम्बन्धी रोग देता है।

इस कुण्ड़ली में लग्नेश शुक्र षष्ठेश होकर षष्ठभाव में सप्तमेश मंगल से युक्त है तथा राहु एवं शनि से दृष्ट है। षष्ठभाव तुलाराशि में चन्द्र, मंगल शुक्र की युति तथा राहु एवं शनि की दृष्टि रोग व पीड़ा दिया करती है।

चन्द्र कुण्ड़ली के अनुसार षष्ठेश गुरू, व्ययेश बुध तथा एकादशेश सूर्य की षष्ठस्थान पर दृष्टि तथा चन्द्र कुण्ड़ली से षष्ठभाव पर शनि की दृष्टि रोग की पुष्टि करती है। ये महिला पीड़ा युक्त रजोधर्म से व्यथित रही।

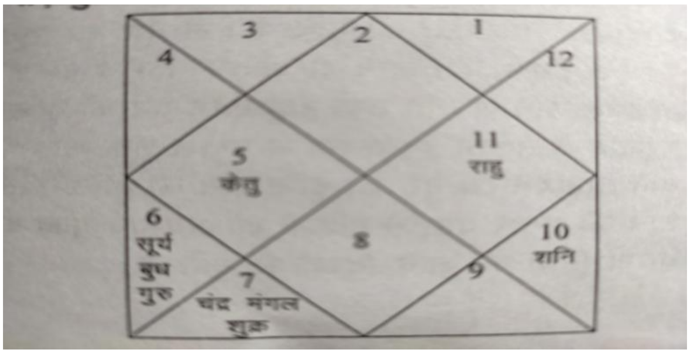

८. गर्भाशय पर शुक्र का अधिकार माना गया है। यदि शुक्र का संबन्ध मंगल, राहु षष्ठभाव या षष्ठेश तथा वृश्चिकराशि से हो तो गर्भाशय रोग देता है।

निम्नलिखित कुण्ड़ली में लग्नेश एवं अष्टमेश मंगल की षष्ठेश बुध से पंचमभाव में युति है तथा व्ययेश गुरू की दृष्टि रोगप्रद है। शनि की षष्ठभाव और चन्द्रमा पर दृष्टि रोग व पीड़ा का संकेतक है। सप्तम स्थान में शुक्र और राहु की युति गुप्तरोग कारक है।

चन्द्र कुण्ड़ली के अनुसार षष्ठेश शुक्र की राहु से युति सप्तमेश बुध की व्ययेश मंगल और सूर्य से युति करना रोग की पुष्टि करता है। ये महिला गर्भाशय के रोग से पीड़ित

रही। क्योंकि गर्भाशय पर शुक्र का अधिकार माना गया है और शुक्र का संबन्ध राहु से है ।

१.५ सारांश

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप प्राचीन भारतीय ज्योतिष शास्त्र के सुमान्य नियमों द्वारा मनुष्य के स्वास्थ्य तथा उसमें उत्पन्न होने वाले विकारों का गम्भीरता पूर्वक विचार करेंगे। ज्योतिष शास्त्र में रोग का विचार करने के लिए जितने योग बतलाये गये है, उनमें तीन तत्व प्रधान है -- ग्रह, राशि एवं भाव। जिनके द्वारा रोगों के कारण एवं लक्षण, रोगारम्भ एवं समाप्ति का काल, रोगों का साध्यत्व एवं असाध्यत्वादि को कुण्ड़ली के द्वारा अध्ययनकर सरलता से जाना जा सकता है। इस इकाई में ज्योतिषशास्त्र के विविध व्याधि योगों के अन्तर्गत अधो अंग रोगाधिकार में वस्तिरोग नामक शीर्षक से प्रमेह, मधुमेह, मूत्रस्थली जनितरोग एवं जननेन्द्रिय रोग, बृद्धि-उपदंश शूक आदि लिंग रोगों का आप अवलोकन करेंगे। आयुर्वेद के अनुसार रोगों के कारणों एवं लक्षणों को ज्योतिष शास्त्र में ग्रह, राशि एवं भावों के आधार पर जानकर रोगों का निर्णय करने मे सक्षम होंगे। चिकित्सा शास्त्र शरीर में रोग होने पर ही रोग का निर्धारण करता है, जबकि ज्योतिषशास्त्र जन्मकाल में ग्रहयोगों के द्वारा शरीर में होने वाले विकारों का कालसहित निर्धारण करता है।

१.६ अभ्यास प्रश्न

१. आयुर्वेद के अनुसार दोष कितने है ?
   (क) ४ (ख) ७ (ग) ३ (घ) २

२. मंगल किस तत्व का कारक है ?
   (क) अग्नि (ख) जल (ग) वायु (घ) भूमि

३. त्रिदोष कारक कौन सा ग्रह है ?
   (क) मंगल (ख) चन्द्रमा (ग) राहु (घ) बुध

४. स्नायु का ज्ञान किस ग्रह से होता है।
   (क) शनि (ख) चन्द्रमा (ग) सूर्य (घ) बुध

५. त्रिदोष कारक राशि कौन सी है
(क) मेष (ख) वृष (ग) सिंह (घ) कुम्भ

६. रक्त (धातु) कारक कौन सा ग्रह है ?
(क) मंगल (ख) चन्द्रमा (ग) शुक्र (घ) गुरू

७. सप्तम में शनि राहु हो तो किस रोग की सम्भावना होती है।
(क) मूत्ररोग (ख) उपदंश (ग) मधुमेह (घ) ज्वर

८. मल कितने प्रकार है।
(क) ४ (ख) १ (ग) ३ (घ) २

९. वातदोष कारक कौन सा ग्रह है ?
(क) सूर्य (ख) राहु (ग) चन्द्र (घ) गुरू

१०. शुक्र सप्तम या अष्टमस्थान में हो तो कौन सा रोग होता है।
(क) शूक (ख) उपदंश (ग) मधुमेह (घ) अश्मरी

११. कालपुरूष के वस्तिस्थल में कौन राशि होनी है।
(क) कर्क (ख) वृष (ग) सिंह (घ) तुला

१.७ पारिभाषिक शब्दावली

आयुर्वेद - जीवन का विज्ञान

वस्ति - कमर एवं जननांग के बीच का भाग

दोष - जिसके द्वारा शरीर में रसादि धातु तथा पुरीषादि मल दूषित होते है। वात, पित एवं कफ ये तीनों दोष कहलाते है।

धातु - ंशरीर गें सात ऊतक प्रणालियां होती है। जिन्हे धातु कहते है। वे है रस, रक्त, मांस, मेदस्, अस्ति, मज्जा तथा शुक्र। ये सातों अपने अपने रूप में स्थित रहकर शरीर धारण एवं पोषण करते है।

मल - अपशिष्ट उत्पाद या गन्दगी।

मधुमेह - शुगर या डायबिटीज।

उपदंश - लिंग में घाव

शूक - सूजन।

षष्ठेश - षष्ठ भाव का स्वामी।

लग्नाधिपति - लग्न का स्वामी।

१.८ अभ्यास प्रश्नों के उतर

१. (ग) ३
२. (क) अग्नि
३. (घ) बुध
४. (क) शनि
५. (घ) कुम्भ
६. (ख) चन्द्रमा
७. (क) मूत्ररोग
८. (ग) ३
९. (ख) राहु
१०. (ख) उपदंश
११. (घ) तुला

१.९ संदर्भ ग्रन्थ सूची

ग्रन्थ नाम	प्रकाशन
१. जातकपारिजातः	चौखम्भा सुरभारती वाराणासी
२. सारावली	रंजन पब्लिकेशन्स नई दिल्ली - २
३. बृहत्पाराशरहोराशास्त्रम्	चौखम्भा सुरभारती वाराणासी
४. फलदीपिका	मोतीलाल बनारसीदास नई दिल्ली
५. प्रश्न मार्ग	रंजन पब्लिकेशन्स नई दिल्ली - २
६. ज्योतिष पीयूष	श्री वेदमाता गायत्री ट्रस्ट शान्तिकुंज हरिद्वार (उतराखण्ड) २४९४११
७. सुश्रुतसंहिता	मोतीलाल बनारसीदास नई दिल्ली
८. भावप्रकाशः	मोतीलाल बनारसीदास नई दिल्ली
९. चरक संहिता	मोतीलाल बनारसीदास नई दिल्ली
१०.ज्योतिषशास्त्र में रोग विचार	मोतीलाल बनारसीदास नई दिल्ली
११. ज्योतिष-रतनाकर	मोतीलाल बनारसीदास नई दिल्ली

१.१० निबन्धात्मक प्रश्न

१. ज्योतिष शास्त्र के अनुसार राशि एवं ग्रहों के तत्वों पर प्रकाश डाले।
२. मधुमेह रोग का ग्रहयोगों के अनुसार विवेचन करें।
३. मूत्रस्थलीजनितरोगों का ज्योतिषशास्त्र के अनुसार विवेचन करें ।
४. उपदंश रोगकारक योगों पर विचार करें।

इकाई - ०२ गुर्दा रोग

इकाई की संरचना

२.१ प्रस्तावना
२.२ उद्देश्य
२.३ मुख्य भाग गुर्दा रोग
२.३.१ सहज एवं आगन्तुक रोग
२.३.२ राशि एवं ग्रहों के अनुसार गुर्दे के रोग
२.४ मुख्य खण्ड अश्मरी रोग
२.४.१ गुर्दे के अन्य रोग
२.४.२ मूत्रकृच्छ ;किडनी कारकद्ध रोग
२.४.३ विभिन्न लग्नों में गुर्दा रोग के कारण
२.५ सारांश
२.६ अभ्यास प्रश्न
२.७ पारिभाषिक शब्दावली
१.८ अभ्यास प्रश्नो के उतर
२.९ संदर्भ ग्रन्थ सूची
२.१० निबन्धात्मक प्रश्न

२.१ प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई चिकित्सा ज्योतिष में डिप्लोमा पाठ्यक्रम (क्डइ्ठ दृ २०) के तृतीय पत्र ज्योतिषशास्त्र में विविध व्याधि योग के अन्तर्गत ''तृतीय खण्ड'' अधो अंग रोगाधिकार की द्वितीय इकाई गुर्दा रोग नामक शीर्षक से सम्बन्धित हैं। वैदिक दर्शनों में ''यथा पिण्डे तथा ब्रह्मण्डे'' का सिद्धान्त प्राचीन काल से चला आ रहा है। जिस पर आज भी अनेक शोधात्मक कार्य चल रहे है, यह सिद्धान्त बतलाता है कि मानव शरीर सहित ब्रह्माण्ड में सभी वस्तुएं पांच मूलतत्त्वों (पंचमहाभूत्तों) अर्थात् पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश से बनी है। सौर जगत में सूर्य चन्द्रादि ग्रहों की विभिन्न गति - विधियों एवं क्रियाकलापों में जो नियम काम करते हैं, ठीक वही नियम प्राणी मात्र के शरीर में स्थित सौर जगत की इकाई का संचालन करते है। हमारे शरीर में कोशाणु बन्धुता नियम (लां आंफ एफीनिटी) के अनुसार दलबद्ध होकर शरीर की ऊतकें (टिश्यूज) और उनके द्वारा अंग बनते है। जिसके परस्पर मिलने से हमारा स्थूल शरीर बन जाता है। हमारे शरीर एवं मन में उत्पन्न होने वाले विकार, जिनसे हमें किसी भी प्रकार का शारीरिक एवं मानसिक दुःख मिलता है, उसको रोग कहते है।

इस इकाई में आप चिकित्सा ज्योतिष में ग्रहयोगों से बनने वाले विविध व्याधि योगों के अन्तर्गत गुर्दे (किडनी) से सम्बन्धित रोगों का अध्ययन करेंगे तथा विशेषरूप से रोगों के मूल कारणों को समझ सकेगे।

२.२ उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप शरीर के अधो अंग रोगाधिकार में गुर्दे (किडनी) से सम्बन्धित रोगों को समझ सकेंगे कि -

७. ज्योतिषशास्त्र के द्वारा गुर्दे (किडनी) के रोगों को कैसे समझा जा सकता है।
८. शरीर पर राशि एवं ग्रहों का प्रभाव क्या है।
९. गुर्दे (किडनी) का शरीर में क्या कार्य है।
१०. राशि एवं ग्रहों से रोगोत्पति को जान सकेंगे।
११. ग्रहों के अनुसार रोगों की साध्यता, असाध्यता को समझ सकेंगे।
१२. कौन - कौन से ग्रह गुर्दे (किडनी) में रोगोत्पति. के कारक है ।

२.३ गुर्दा रोग

किडनी और गुर्दा एक ही चीज है। गुर्दे को ही किडनी इंग्लिश में कहते है। वृक्क या गुर्दे का जोड़ा एक मानव अंग है।मनुष्य केशरीर में गुर्दे उदर गुहा में रेट्रोपेरिटोनियम ;त्मजतवचमतपजवदमनउद्ध नामक रिक्त स्थान में स्थित होते है। इनमें एक-एक गुर्दा मेरूदण्ड के दोनों तरफ स्थित होता है। मुख्य तौर पर किडनी, वृक या गुर्दा ग्रन्थियों की वह जोड़ी है, जो शरीर में नमक और पानी को संतुलित करने का कार्य करती है। इसके अलावा और भी कई काम जैसे रक्त बनाना, हड्डियों को मजबूत

करना यानी विटामिन डी बनाना, ब्लडप्रेशर (रक्तचाप) नियन्त्रित करना और टॉक्सिन यानी विषैले तत्वों को शरीर से बाहर निकालने जैसे काम किडनी करती है।

गुर्दे की कार्यप्रणाली के अध्ययन को वृक्कीय शरीर विज्ञान कहा जाता है, जबकि गुर्दे की बीमारियों से सम्बन्धित चिकित्सीय विधा मेघविज्ञान ;छमचीतवसवहलद्ध कहलाती है। गुर्दे के रोग विविध प्रकार के है। इन्हें दो भागों में विभक्त किया गया है। जन्मजात एवं आगन्तुक।

२.३.१ ज्योतिष शास्त्र के अनुसार सहज एवं आगन्तुक रोग

ज्योतिषशास्त्र के जातक ग्रन्थों में रोगों का गम्भीरतापूर्वक विचार करने से पूर्व उनके भेदों का विचार किया गया है।[१२]

रोगास्तु द्विविधा ज्ञेया निजागन्तुविभेदतः ।
निजाश्चागन्तुकाश्चापि प्रत्येकं द्विविधाः पुनः ।।
निजा शरीरचित्तोत्था दृष्टादृष्टनिमितजाः ।
तथैवागन्तुकाश्चैवं व्याधयः स्युश्चतुर्विधाः ।।

इस शास्त्र में रोगों को दो प्रकार का माना गया है। सहज एवं आगन्तुक ।

१. सहज रोग - जन्मजात रोगों को सहज रोग कहते है। सहज रोगों के दो भेद है । -

शारीरिक तथा मानसिक।

शारीरिक रोग - वात, पित एवं कफ त्रिदोष के विकार से उत्पन्न, इनमें से किन्ही दो के संसर्ग से उत्पन्न तथा सन्निपात आदि दोषों से उत्पन्नरोगों को शारीरिक रोग कहा जाता है [१३]–

वातपितकफोद्भूताः पृथक्संसर्गजास्तथा।
सन्निपातभवाश्चैते शारीराः कीर्तिता गदा।।

लूलापन, लंगड़ापन, कुबड़ापन, अन्धकत्व, मूकत्व, बधिरत्व, हीनांग एवं अधिकांग आदि कुछ शारीरिक रोग जन्मजात होते है।

मानसिक रोग - क्रोध, हर्ष और शोक आदि आवेगों से उत्पन्न रोग मानसिक रोग कहे जाते है।[१४]**क्रोधसाध्वसशोकादिवेगजातास्तुमानसाः।**
ज्ञेया रन्ध्रमनोनाथमिथोयोगेक्षणादिभिः।।

क्रोध, हर्ष और शोक आदि आवेगों से उत्पन्न रोग मानसिक रोग कहे जाते है। इन मानसिक रोगों का विचार अष्टमेश और चतुर्थेश की युति एवं दृष्टि आदि के आधार पर करना चाहिए। जड़ता, उन्माद एवं पागलपन आदि कुछ मानसिक रोग भी जन्मजात होते है।

इस प्रकार के समस्त जन्मजात रोगों को सहज रोग कहा जाता है। जन्मजात रोगों का कारण जातक का पूर्व जन्मकृत कर्म एवं माता पिता द्वारा किया गया

---

[12]प्रश्नमार्ग अ. 12 श्लो. 17/18

[13]प्र.मा.अ.12 श्लो.20

[14]प्रश्नमार्ग अ. 12 श्लो. 21

कर्म माना गया है। अतः ज्योतिषशास्त्र में जन्मजात रोगों का विचार गर्भाधान कुण्डली एवं जन्मकुण्डली से किया जाता है[15]–

अष्टमेन तदीशेन तद्द्रष्ट्रा तद्गतेन वा ।
विज्ञातव्याः स्युरेतेषां वीर्यतस्तत्कृत्ता गदाः ।।

इस श्लोक के अनुसार निम्नलिखित योगों के द्वारा जन्मजात शारीरिक रोगो का विचार होता है -

१. गर्भाधान कुण्डली एवं जन्मकुण्डली मे अष्टमस्थान।
२. अष्टमस्थान का स्वामी ग्रह (अष्टमेश)
३. अष्टम स्थान में स्थित ग्रह
४. अष्टम स्थान को देखने वाला ग्रह।

इन योगों द्वारा कुण्डली में अन्यग्रहों एवं राशियों के प्रभावित होने से जन्मजात एवं शारीरिक रोगों का विचार करना चाहिए।

२. आगन्तुक रोग - जन्म के बाद होने वाले रोगों को आगन्तुक रोग कहते है। आगन्तुक रोग भी दो प्रकार के होते है। दृष्टनिमितजन्य एवं अदृष्टनिमितजन्य।
दृष्टनिमितजन्य रोग - जिन रोगों का कारण प्रत्यक्षरूप से जाना जा सकता है, उन रोगों को दृष्टनिमितजन्य रोग कहते है। भय, शाप, अभिचार, घात, संसर्ग, महामारी एवं दुर्घटना जैसे प्रत्यक्ष कारणों से उत्पन्न रोग दृष्टनिमितजन्य रोग कहलाते हैं।
अदृष्टनिमितजन्यरोग - जिन रोगों का कारण प्रत्यक्षरूप से दिखलाई नही देता, उन रोगों को अदृष्टनिमितजन्य रोग कहते है। इस प्रकार के रोगो के कारण का विचार करते हुए ज्योतिषशास्त्र के आचार्यों ने कहा है कि अदृष्टनिमितजन्य रोगों का मुख्य कारण बाधक ग्रहों का प्रभाव है। सूर्यादि ग्रह मनुष्य के शरीर के समस्त अंग, धातु तथा वात, पित एवं कफ आदि त्रिदोष, आन्तरिक संरचना एवं संचालन प्रक्रिया का प्रतिनिधित्व करते है। कुण्डली में जो ग्रह बाधक होता है, वह शरीर के जिस अंग, धातु या दोष आदि का प्रतिनिधित्व करता है। उसमें बाधा या विकार की सूचना देता है और इस प्रकार के विकारों से उक्त रोगों कि उत्पति होती है। आगन्तुक रोग (दृष्टनिमितजन्य एवं अदृष्टनिमितजन्य) भी शारीरिक एवं मानसिक भेद से दो प्रकार के होते है।

इस प्रकार गुर्दे ;ज्ञपकदमलद्ध के रोग सहज एवं आगन्तुक दोनो रूपो में पाये जाते है।

२.३.२ राशि एवं ग्रहों के अनुसार गुर्दे के रोग

ज्योतिष शास्त्र में कालपुरूष के शरीर में राशि एवं नक्षत्रों की स्थापना की गई है। जिसमें सिंहराशि उदर का प्रतिनिधित्व करती है। उदर, आंते, यकृत ;सपअमतद्ध तिल्ली (प्लीहा) चसममदद्ध गुर्दा ;ज्ञपकदमलद्ध नाभि एवं आमाशय समूचे पाचनतन्त्र पर सिंहराशि का अधिकार है।

द्वितीय तुलाराशि प्रजनन अंगों के भीतरी हिस्से यथा मूत्राशय, गर्भाशय, मूत्रनलिका किडनी या वृक्क द्वारा रक्त से अलग हुए मूत्र पदार्थ को मूत्रवाहिनी द्वारा मूत्राशय में

[15] प्रश्नमार्ग अ. 12 श्लो. 22

पहुंचाती है। इससे भी वृक्क शोथ ;छमचीतपजपेद्ध (गुर्दे की सूजन) गुर्दे में पथरी ;त्मदंस बंसबनसनेद्ध तथा गुर्दे के अन्य रोगों की सम्भावना रहती है।
इसके अतिरिक्त किडनी में रक्त प्रवाह का कार्य वायुतत्व का है। नाभि से अधोभाग में वायुतत्व का विशेष प्रभाव रहता है। मिथुन, तुला एवं कुम्भ वायुतत्व राशियां हैं तथा शनि एवं राहु वायुतत्व ग्रह है। इनमें गुर्दे के रोगों की सम्भावना रहती है।
सप्तम भाव या सातवी राशि तुला चन्द्रमा एवं गुरू गुर्दे के रोगों के कारक माने गये है।

२.४ मुख्य खण्ड अश्मरी रोग

आयुर्वेद में किडनी में होने वाली पत्थरी को अश्मरी कहा जाता है। अश्मरी कफजन्य है, क्योंकि शरीर में कफ एक चिकास वाला पदार्थ है। इसके न्युक्कीयस (केन्द्र) के चारों ओर दोष एकत्रित होकर अश्मरी बनाते है। अश्मरी रोग चार प्रकार का है। श्लेष्मा इन अश्मरियों का अधिष्ठान समवायी कारण है[१६]। यथा - कफजन्य, वातजन्य, पितजन्य और शुक्रजन्य।

चतस्रोऽश्मर्यो भवन्ति, श्लेष्माधिष्ठानाः तद्यथा - श्लेष्मणा, वातेन, पितेन, शुक्रेण चेति।।

किडनी स्टोन या गुर्दे की पत्थरी (वृक्कीय कैल्कली, रीनल कंल्क्युली, नेफरोलिथियासिस) गुर्दे एवं मूत्रनलिका की बिमारी है। गुर्दे में एक समय में एक या अधिक पथरी हो सकती है। ज्योतिषशास्त्र में निम्न ग्रहयोगों से अश्मरी रोग की सम्भावना रहती है।

१. यदि तृतीयेश बुध, मंगल और शनि के साथ लग्नगत हो। तो अश्मरी रोग होता है।
२. यदि मंगल बुध के साथ षष्ठ स्थान में पाप नवांशगत हो और उन पर चन्द्रमा तथा शुक्र की दृष्टि पड़ती हो, तो जातक अश्मरी रोग से पीड़ित होता है।
३. यदि शनि का सम्बन्ध मंगल से हो तथा मंगल का सम्बन्ध सप्तमभाव से हो तो मूत्रमार्ग में पत्थरी की सम्भावना बढ़ती है।

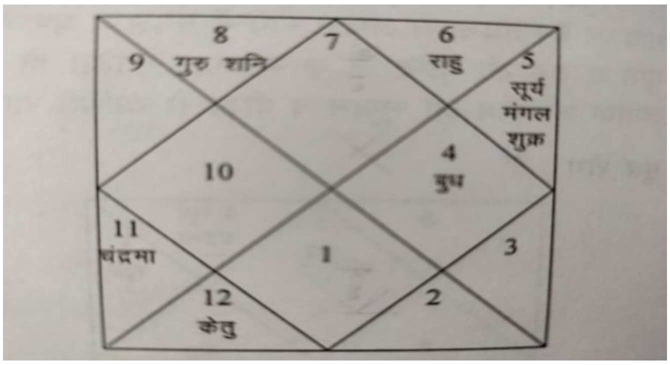

इस कुण्डली में षष्ठेश गुरू से युक्त शनि का लग्नेश से दृष्टि सम्बन्ध अनिष्ट का संकेतक है। लग्न पाप मध्यत्व में है। सप्तमेश मंगल तथा अष्टमेश शुक्र सूर्य के साथ

[16] सुश्रुतसंहिता निदानस्थानम् अ. 3 श्लो. 3

एकादश भाव में है। सप्तमेश मंगल षष्ठेश गुरू एवं शनि से दृष्टि सम्बन्ध, एवं चन्द्रमा तथा षष्ठस्थ केतु से दृष्टि सम्बन्ध अनिष्टप्रद है।

चन्द्र कुण्डली से सप्तमभाव में स्थित सूर्य, मंगल तथा शुक्र की युति का गुरू एवं शनि से दृष्टि सम्बन्ध तथा अष्टमभाव में राहु की स्थिति मूत्रमार्ग में पत्थरी का कारण बना।

४. यदि चन्द्रमा जलचर राशि में स्थित हो और उस चन्द्राधिष्ठित राशि का स्वामी षष्ठभाव में स्थित होकर जलचरराशिस्थ ग्रह से दृष्ट हो, तो जातक अश्मरी रोग से पीड़ित होता है।

५. जलचरराशियों में चन्द्रमा की स्थिति और इनके स्वामी षष्ठभाव में हो , इन राशियों में स्थित पापग्रहों की दृष्टि षष्ठभाव पर हो, तो मूत्रकृच्छ रोग होता है।

इस रोग से मूत्र-निष्क्रमण से परेशानी होती है। मूत्राशय में पत्थरी आदि के विकसित होने पर तथा मूत्रवाहिनी नलिकाओं मे अवरोधादि से अश्मरी रोग होता है [१७]।

जलचरगृहगेन्दौ तत्पतौ षष्ठयाते।
जलगृहगतखेटैरीक्षिते मूत्रकृच्दम् ।।

६. लग्न में पापग्रह अथवा राहु स्थित हो, लग्नेश पापग्रह के मध्य हो और अष्टमभाव में शनि हो तो पत्थरी की सम्भावना होती है।

७. धनु या मीन राशि में स्थित बुध पर सूर्य की दृष्टि हो तो शूल, प्रमेह एवं पत्थरी होती है [१८]।

शूरं प्रमेह पीड़ितमश्मर्योपहतमातुरं शान्तम्।
जनयति रविणा दृष्टो जीवगृहे चन्द्रजः पुरूषम्।।

८. सूर्य, शुक्र एवं शनि तीनों एक स्थान में हो, तो अश्मरी रोग होता है।

९. निम्नलिखित कुण्डली में लग्नेश बुध की गुरू बाधकेश से युति तथा पंचमेश षष्ठेश शनि से दृष्टि उदर रोग को दर्शाती है। षष्ठस्थ राहु का व्ययेश सूर्य से दृष्टि सम्बन्ध तथा अष्टमेश मंगल की चन्द्रमा से युति एवं व्ययभाव में स्थित केतु पर दृष्टि (शल्य क्रिया) आपरेशन को दर्शाती है। शनि को पत्थरी का कारक माना गया है। यहां पर षष्ठेश शनि सप्तमभाव पर दृष्टि तथा तुलाराशि पर शनि एवं राहु की दृष्टि गुर्दे की पथरी का कारण बन रही है।

---

[17]जतक पारिजात अ. 6 श्लो. 88
[18]सरावली अ. 26 श्लो. 55

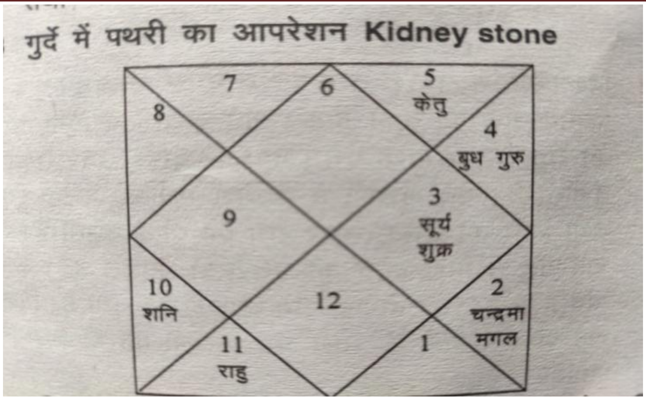

१०. पंचम भाव पर पापग्रह तथा पंचमेश पापग्रह के मध्य में हो, षष्ठस्थ चन्द्रमा हो, तो पितकोष के कारण अश्मरी की संभावना होती है।

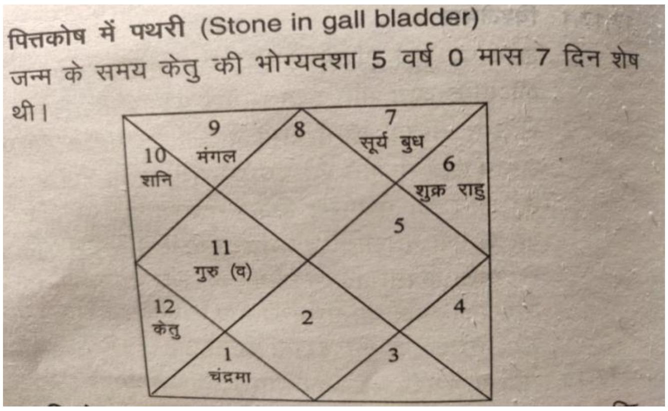

उपरोक्त कुण्ड़ली में लग्नेश एवं षष्ठेश मंगल की पंचमभाव पर दृष्टि, पंचमेश गुरू का वक्री होकर पाप मध्यत्व होना, व्ययेश शुक्र की राहु से युति तथा पंचमभाव पर दृष्टि उदर सम्बन्धी रोग को दर्शाती है।

चन्द्र कुण्डली में पंचमेश सूर्य की षष्ठेश बुध से युति तथा शनि की दृष्टि, उदर रोग की पुष्टि करती है। ये महिला राहु की महादशा में राहु की अन्तर्दशा आने पर पितकोष की पत्थरी से पीड़ित हुई। चन्द्रमा से षष्ठस्थ होकर राहु रोग कारक बन गया। अतः जन्म कुण्डली के साथ चन्द्र कुण्डली का भी अध्ययन करना चाहिए।।

२.४.१ गुर्दे के अन्य रोग

गुर्दे में दर्द, सूजन, गुर्दे में शोथ, फोड़ा या उनका निष्क्रिय होना कुछ जटिल गुर्दे के रोग है। इसके अतिरिक्त मूत्रकृच्छ भी गुर्दे की खराबी के कारण होता है। ये रोग निम्नलिखित ग्रहयोगों के कारण होते है।

१. षष्ठ एवं सप्तम भाव या सातवी राशि तुला चन्द्रमा एवं गुरू गुर्दे के रोगों के कारक माने गये है।
२. शुक्र को वस्ति का कारक माना गया है। मूत्रकृच्छ आदि रोग वस्तिस्थान में होने पर भी गुर्दे की खराबी के कारण बनते है।

३. यदि पापयुक्त गुरू तथा चन्द्रमा, सप्तमभाव तुलाराशि या सप्तमेश पर पापग्रह प्रभाव डाले, तो वृक रोग होता है।
४. मंगल एवं बुध पापयुक्त या पापदृष्ट होकर यदि तुलाराशि सप्तमभाव या सप्तमेश दृष्टि-युति सम्बन्ध करें तो गुर्दे में फोड़ा या सूजन होती है।

निम्नलिखित कुण्डली में षष्ठस्थ शुक्र (षष्ठेश, अष्टमेश एवं व्ययेश) का पाप मध्यत्व में राहु से दृष्ट होने के कारण गुप्तांग में पीड़ा या रोग का कारक है। एकादशेश चन्द्रमा अष्टमभाव में केतु से युक्त तथा राहु से दृष्ट है। राहु की दृष्टि षष्ठ व अष्टमभाव में होने से चन्द्रमा भी शुक्र सम्बन्धी रोग दर्शाता है। चन्द्र कुण्ड़ली में राहु सप्तमभाव में षष्ठेश बुध से युक्त अष्टमेश मंगल से दृष्ट है। शनि का मंगल एवं राहु दोनों से दृष्टि सम्बन्ध है। अतः सप्तमेश गुरू के साथ षष्ठेश शनि की युति, तथा अष्टमेश मंगल का सप्तमस्थ तथा शनि से दृष्ट होना, शुक्र का षष्ठस्थ होना गुप्तांग रोग या पीड़ा को दर्शाता है। जातक गुर्दे में सूजन इस व्याधि से पीड़ित हुआ।

५. पंचम, षष्ठ एवं सप्तमभाव पाप ग्रह से पीड़ित, दृष्ट या पापग्रह से युत हो, तो उदर, मूत्राशय एवं गुर्दे के रोग की सम्भावना रहती है।
६. अष्टम भाव यदि मंगल शनि से युत या दृष्ट हो।

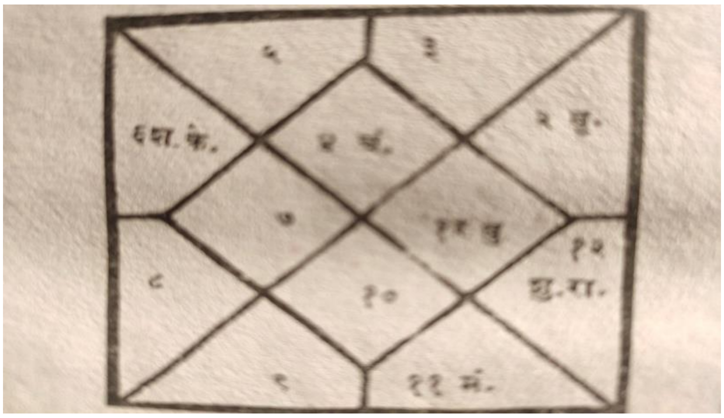

इस कुण्डली में अष्टमस्थान में मंगल कुम्भराशि गत है और कुम्भराशि के स्वामी शनि पर मंगल की पूर्ण दृष्टि है। इस कारण यद्यपि शनि मंगल के साथ अष्टमस्थान में नही है परन्तु अष्टमस्थ मंगल का शनि से साधर्म्य सम्बन्ध है। अतः ये बहुत काल से सांजर अर्थात् ''फायलेरिया'' रोग पीड़ित हुए।

७. सप्तम भाव में शनि राहु की युति हो, तो गुर्दे के रोग या मूत्ररोग की सम्भावना रहती है।

निम्नलिखित कुण्डली में षष्ठेश शनि सप्तमस्थ होकर लग्न में एकादशेश बुध को देख रहा है। कारक शुक्र एकादश भाव में अष्टमेश गुरू तथा राहु युक्त मंगल से दृष्ट है। मंगल तथा मंगल की मेष राशि पर षष्ठेश शनि की दृष्टि मंगल को अधिक पापी बनाती है।

चन्द्र कुण्डली में षष्ठेश गुरू का षष्ठस्थान में स्वगृही होकर व्ययस्थ शुक्र से दृष्टि सम्बन्ध करना शुक्र सम्बन्धी यौन रोग दे सकता है। अष्टमस्थ शनि का स्वगृही होकर राहु युक्त मंगल से दृष्ट होना गुप्तांग में पीड़ा देता है। सूर्य व चन्द्रमा की युति कर्क या सिंहराशि में होना रोग शोक का कारक माना है। लग्नेश व्ययेश की युति व्ययभाव में होने से देहसुख में कमी होती है। शनि का षष्ठेश होकर लग्नस्थ बुध से दृष्टि सम्बन्ध करना तथा स्वयं सप्तमभाव में बैठकर राहु युक्त मंगल से दृष्ट होना मूत्र रोग का परिचायक बना।

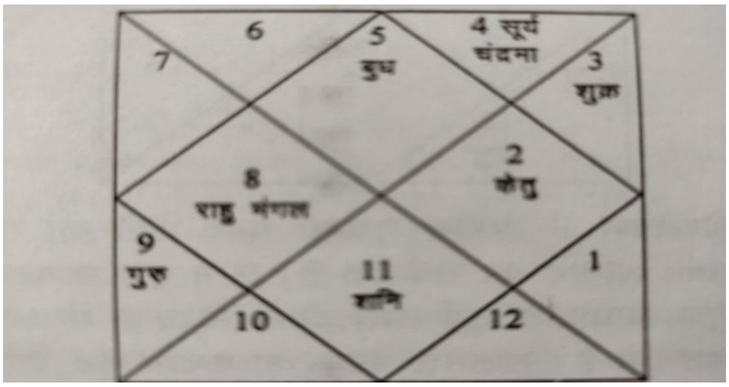

८. बृहस्पति, सूर्य और शनि के तृतीय स्थान में रहने से किडनी खराब होने की सम्भावना होती है।
९. शनि, सूर्य एवं शुक्र ये तीनों पंचम स्थान में हो।
१०. लग्न में सूर्य सप्तम में मंगल हो।
११. दशमस्थान में स्थित मंगल शनि से युत या दृष्ट हो।
१२. षष्ठस्थान में मंगल हो षष्ठेश पापग्रह के साथ हो।
१३. षष्ठभाव का सम्बन्ध शुक्र एवं शनि से हो, तो गुर्दे सम्बन्धि व्याधि देता है।

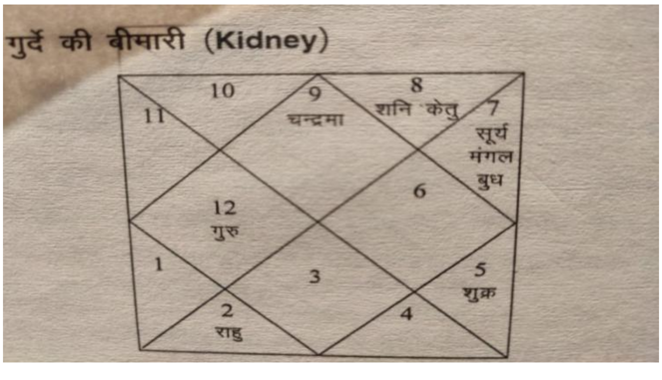

इस कुण्डली में लग्नेश गुरू केन्द्रभाव चतुर्थस्थान में स्थित होकर अष्टमभाव एवं द्वादशभाव को पूर्ण दृष्टि से देख रहा है। द्वादश भाव में शनि व केतु से दृष्टि सम्बन्ध बना रहा है। अष्टमेश चन्द्रमा लग्नस्थ है तथा सप्तम भाव को पूर्ण दृष्टि से देख रहा है। पंचम भाव का स्वामी मंगल बाधकेश बुध से युति कर पंचम भाव तथा षष्ठस्थ राहु से दृष्टि सम्बन्ध कर रहा है। शनि का षष्ठेश शुक्र तथा षष्ठस्थ राहु से दृष्टि सम्बन्ध वृक रोग की पुष्टि करता है। अतः षष्ठभाव का सम्बन्ध शुक्र एवं शनि से हो, तो गुर्दे सम्बन्धि व्याधि देता है।

१४. सप्तम स्थान में स्थित सूर्य एवं शुक्र का शनि से दृष्टि सम्बन्ध हो, तो वृक्करोग की सम्भावना बनती है।

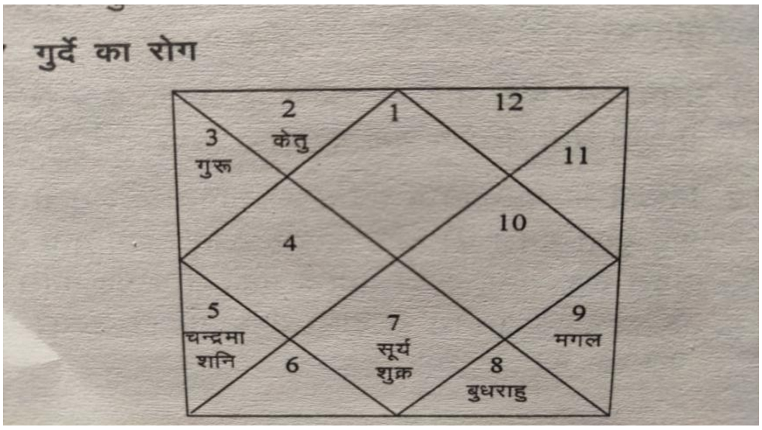

इस कुण्डली में सप्तमस्थ सूर्य और शुक्र की लग्न पर दृष्टि है। सूर्य पंचमेश (उदर का कारक) तथा शुक्र सप्तमेश (मूत्ररोग कारक) है। लग्नेश मंगल की दृष्टि व्ययभाव तथा व्ययेश गुरू पर है। लग्नेश का व्ययेश से समसप्तक होना रोगी बनाता है। षष्ठेश बुध की अष्टम भाव में राहु से युति रोग कष्टकारक है। पंचमेश सूर्य सप्तमभाव में शनि से दृष्ट है। शनि का पंचमस्थ होकर पंचमेश सूर्य से दृष्टि सम्बन्ध बनाना वृक्क रोग की संभावना बना रहा है। चन्द्र कुण्ड़ली के अनुसार षष्ठेश शनि का शुक्र से सम्बन्ध वृक्करोग की पुष्टि कर रहा है।

२.४.२ मूत्रकृच्छ (किडनी का कारक रोग)

इसके अतिरिक्त मूत्रकृच्छ रोग भी गुर्दे की खराबी के कारण होता है। इस रोग से मूत्र-निष्क्रमण से परेशानी होती है। मूत्राशय में पत्थरी आदि के विकसित होने पर तथा मूत्रवाहिनी नलिकाओं में अवरोधादि से यह रोग होता है। ज्योतिषशास्त्र में यह रोग निम्नलिखित ग्रहयोगों के कारण होता है।

१. षष्ठभाव में जलराशि हो, उसमें चन्द्रमा हो। तो मूत्र-कृच्छ रोग होता है।
२. सप्तम में मंगल पापयुक्त या दृष्ट हो, तो मूत्र-कृच्छ रोग हो।
३. षष्ठेश पापयुक्त नवम में हो या षष्ठेश व्ययेश युक्त कहीं भी हो, पर शनि से दृष्ट हो तो मूत्र-कृच्छ रोग है।

निम्नलिखित कुण्डली में षष्ठेश शनि द्वादशेश सूर्य के साथ होकर द्वादशभाव में बैठा है। सप्तमेश बृहस्पति केतु के साथ चतुर्थभाव में है। अष्टमेश मंगल अपनी नीचराशि कर्कराशि में शुक्र के साथ एकादश भाव में बैठा है। अष्टमेश मंगल चन्द्रमा और षष्ठभाव

को देख रहा है। सप्तमेश बृहस्पति षष्ठेश शनि और द्वादशेश सूर्य को देख रहा है तथा षष्ठेश शनि और द्वादशेश सूर्य की षष्ठभाव पर दृष्टि है।

चन्द्र कुण्ड़ली के अनुसार षष्ठभाव में राहु तथा सप्तम भाव में नीचस्थ मंगल और शुक्र की युति है। जिससे जातक मधु-प्रमेह रोग से पीड़ित रहने के कारण पैर में व्रण हुआ जिसकी शल्य चिकित्सा होने के बाद इनकी मृत्यु हो गई। शनि और सुर्य द्वादशस्थ है। द्वादश स्थान से पैर का व्रण सूचित होता है। परन्तु मृत्यु का मुख्य कारण मधु-प्रमेह रोग माना गया।

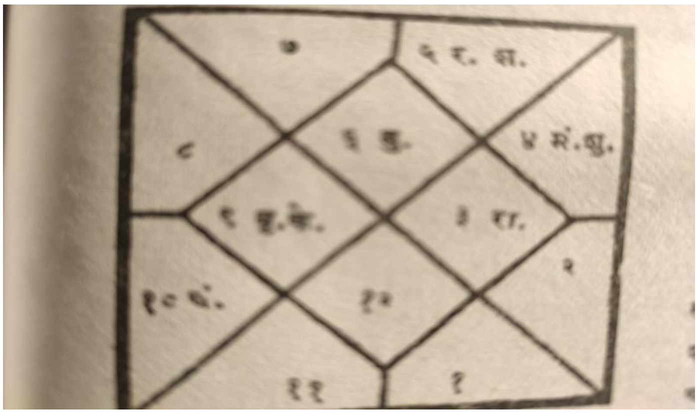

४. यदि चन्द्रमा जलराशि गत हो और चन्द्र स्थितराशि का स्वामी षष्ठस्थान में हो उस पर जलराशिगत ग्रहों की दृष्टि पड़ती हो, तो जातक को मूत्र-कृच्छ रोग होता है।
५. यदि चन्द्रमा जलराशि गत हो और चन्द्र स्थितराशि का स्वामी षष्ठस्थान में हो यदि जलराशिगत बुध की दृष्टि उस पर पड़ती हो, तो जातक को मूत्र-कृच्छ रोग होता है।
६. यदि तृतीयेश बुध और मंगल के साथ लग्न में बैठा हो, तो मूत्र-कृच्छ रोग होता है।
७. यदि षष्ठेश अथवा सप्तमेश, द्वादशेश के साथ हो और शनि से दृष्ट हो तो मूत्र-कृच्छ प्रमेहादि रोग होता है।
८. पापग्रह षष्ठ या सप्तम में हो।
९. क्रूर षष्ठ्यंश में षष्ठ, सप्तम या अष्टम स्थान में अनेक पापग्रह हो।
१०. सप्तम स्थान में जलीय ग्रह हो तथा सप्तमेश भी जलीय ग्रह हो, तो मूत्रकृच्छ होता है।
११. पंचम स्थान में पापग्रह होने पर मूत्र-कृच्छ होता है।
१२. सप्तम स्थान में जलीयराशि हो लग्न में जलग्रह हो या उस पर बलवान जलीयग्रह की दृष्टि हो, तो मूत्रकृच्छ होता है।
१३. सप्तम स्थान में जलीयराशि में शनि, सूर्य, मंगल एवं राहु हो, तो मूत्रकृच्छ होता है।
१४. षष्ठेश या सप्तमेश व्ययेश के साथ हो और उस पर शनि की दृष्टि हो, तो मूत्रकृच्छ होता है।

निम्नलिखित कुण्ड़ली में षष्ठेश बृहस्पति तथा सप्तमेश मंगल दोनों ही दशम स्थान में बैठे है। द्वादशेश बुध के साथ बृहस्पति और मंगल नही है परन्तु द्वादशेश बुध का बृहस्पति और मंगल से अन्योन्य दृष्टि सम्बन्ध है तथा बृहस्पति और मंगल पर शनि की पूर्ण दृष्टि है। इस कारण ये मूत्र-कृच्छ रोग से पीड़ित हुए।

१५. सप्तम स्थान में अनेक पापग्रहों तथा सप्तमेश षष्ठ स्थान में हो, तो मूत्रकृच्छ होता है।
१६. अष्टम स्थान में बुध हो, तो मूत्रकृच्छ होता है।
१७. सप्तम स्थान में शनि हो और उस पर राहु की दृष्टि हो, तो मूत्रकृच्छ होता है।

यह रोग त्रिदोष के कारण शारीरिक धातु रक्त, स्नायु, अस्थि इत्यादि के क्षरण के कारण शरीर को क्षीण कर देता है। ज्योतिष शास्त्र में मिथुन, तुला एवं कुम्भराशि त्रिदोषकारक राशियां है। ग्रहों में बुध त्रिदोष्कारक है। मंगल को भी उपर्युक्त अधिकांश योगों में इसका कारण पाया गया है। मूत्ररोग कारक ग्रहों को भी इसका कारण माना जा सकता है। इस प्रकार ज्योतिष शास्त्र में षष्ठ, सप्तम एवं अष्टमभाव में राशि एवं ग्रहों के दोष तथा तत्वादि को जानकर प्रमेह एवं मधुमेह ;क्पंइमजमे क्पेमेंमद्ध रोग का ज्ञान सरलता से किया जा सकता है।

२.४.३ विभिन्न लग्नों में गुर्दा रोग के कारण

१. मेष लग्न - शुक्र, बुध के साथ व्ययभाव में हो और मंगल सप्तमभाव में शनि से दृष्ट हो, चन्द्र या सूर्य राहु एवं केतु के प्रभाव में हो, तो मूत्र-कृच्छ होता है।

२. वृष लग्न - गुरू एवं मंगल लग्न में हो, शुक्र अष्टमभाव में हो, शनि पंचम में हो, सूर्य और चन्द्रमा पर राहु या केतु की दृष्टि हो, तो गुर्दा से सम्बन्धित रोग होता है।

३. मिथुन लग्न - सप्तमभाव में मंगल, शुक्र एवं शनि, दशमभाव में बुध, नवम भाव में सूर्य, अष्टमभाव में राहु हो, तो गुर्दे का रोग होता है।

४. कर्क लग्न - शुक्र और बुध सप्तम भाव में हो, द्वितीय भाव में शनि, राहु सप्तम भाव में, अष्टमभाव में सूर्य हो, तो किडनी रोग होता है।

५. सिंह लग्न - शनि, शुक्र अष्टमभाव में, सप्तमभाव में गुरू एवं बुध, सूर्य षष्ठ भाव में, राहु दशमभाव में चन्द्रमा के साथ हो, तो वृक्क रोग होता है।

६. कन्या लग्न - मंगल लग्न में, चन्द्र, शुक्र एवं शनि सप्तमभाव में, बुध अष्टमभाव में, नवमभाव में सूर्य राहु से दृष्ट हो, तो मूत्रकृच्छ रोग होता है।

७. तुला लग्न - लग्न में गुरू, अष्टमभाव में शुक्र मंगल के साथ हो, चन्द्रमा पर राहु की दृष्टि हो, तो मूत्ररोग होता है।

८. वृश्चिक लग्न - षष्ठेश युक्त शुक्र बुध लग्न में हो, द्वादशभाव में सूर्य राहु से दृष्ट हो, तो गुर्दा रोग होता है।

९. धनु लग्न - सप्तम भाव में शुक्र एवं बुध पर शनि की दृष्टि हो, सूर्य और चन्द्रमा राहु एवं केतु से पीड़ित हो तथा लग्नेश पापग्रह के साथ हो, तो जातक को वृक्क रोग होता है।

१०. मकर लग्न - सप्तमभाव में बृहस्पति, नवमभाव में चन्द्रमा से युक्त राहु, पंचमभाव में शुक्र, षष्ठभाव में शनि एवं बुध हो, तो जातक को मूत्रकृच्छ रोग होता है।

११. कुम्भ लग्न - शनि एवं शुक्र दशमभाव में हो, सप्तमभाव में चन्द्रमा हो तथा अष्टमभाव में सूर्य एवं बुध राहु से दृष्ट हो, तो जातक को गुर्दे का रोग होता है।

१२. मीन लग्न - सप्तमभाव में शनि, सूर्य लग्न में, शुक्र एवं बुध द्वादशभाव में, गुरू अष्टमभाव में, और राहु पंचमभाव में हो तो जातक को गुर्दा रोग होता है। उपर्युक्त सभी योग लग्न कुण्ड़ली के आधार पर है। जिसमें कुण्डली का पंचमभाव उदररोग तथा सप्तमभाव वस्तिरोग एवं मूत्ररोग को प्रकट करता है। गुर्दे रक्त का शोधन कर विषैले या अपशिष्ट पदार्थ को मलमूत्र के रूप में शरीर से बाहर करते है। इसलिए बिशेषरूप से ये दोनों भाव गुर्दा रोग के कारक बनते है। सम्बन्धित योग ग्रह गोचर एवं दशा अर्न्तदशा में ही जातक को रोगी होने की सम्भावना बनाते है।

२.५ सारांश

इस इकाई में ज्योतिषशास्त्र के विविध व्याधि योगों के अन्तर्गत अधो अंग रोगाधिकार में गुर्दारोग नामक शीर्षक से अश्मरी, गुर्दे में सूजन, मूत्रकृच्छ आदि गुर्दे के अन्य रोगों का अवलोकन करेंगे। ज्योतिष शास्त्र में पंचमभाव एवं सिंहराशि से उदर रोगों का विचार एवं निर्णय किया जाता है। सप्तमभाव एवं तुलाराशि से मूत्रस्थली जनितरोगों एवं किडनी के रोगों का विचार एवं निर्णय किया जाता है। ग्रहों मे शुक्र वस्तिकारक एवं मूत्रकृच्छ रोगकारक है। जो कि गुर्दे में खराबी या रोग को प्रकट करता है। बृहस्पति गुर्दे अथवा किडनी का कारक है। शनि एवं राहु वातकारक ग्रह होने से शरीर के अधोभाग में रोगों का कारण होते है। मंगल, बुध एवं केतु संक्रमण, सूजन एवं फोड़ा आदि के कारण बनते है। सूर्य सिंहराशि का स्वामी होने पर सम्पूर्ण उदर के अंगों पर नियन्त्रण करता है। चन्द्र एवं शुक्र जलीयग्रह होने से शरीर में मूत्रवाहिनी नलिकाओं एवं मूत्ररोगों का कारक होते है। इस प्रकार ज्योतिषशास्त्र में ग्रह, राशि एवं भाव तथा युति, दृष्टि एवं सम्बन्ध शुभाशुभयोगों के कारक बनते है। ज्योतिषशास्त्र के अनुसार प्रत्येक ग्रहों के शुभ और अशुभ दोनों ही प्रभाव मानव जीवन पर पड़ते हैं। जैसे प्रत्येक वरदान के पीछे कोई न कोई शाप भी छुपा होता है वैसे ही प्रत्येक ग्रह की अच्छायों के पीछे कोई न कोई समस्या अवश्य छुपी रहती है। इसलिए जन्मकुण्डली एवं प्रश्नकुण्डली के आधार पर

शरीर के विविध रोगों का ग्रहयोगों के आधार पर विचार एवं निर्णय किया जाता है। आप इस इकाई के अध्ययन से आयुर्वेद के अनुसार रोगों के कारणों एवं लक्षणों को जानकर ज्योतिषशास्त्र के अनुसार ग्रह, राशि एवं भावों के आधार पर बनने वाले रोगकारक योगों से रोग का निर्णय करने मे सक्षम होंगे। चिकित्सा शास्त्र शरीर में रोग होने पर ही रोग का निर्धारण करता है, जबकि ज्योतिषशास्त्र कालपरक शास्त्र होने से जन्मकाल में ही ग्रहयोगों के द्वारा शरीर में होने वाले विकारों का कालसहित निर्धारण करने में सक्षम है।

२.६ अभ्यास प्रश्न

१. ज्योतिषशास्त्र के अनुसार सहज रोग कितने प्रकार के होते है ?
(क) ५ (ख) ४ (ग) ३ (घ) २

२. तुला राशि किस तत्व की कारक है
(क) अग्नि (ख) जल (ग) वायु (घ) भूमि

३. त्रिदोष कारक कौन सा ग्रह है ?
(क) मंगल (ख) चन्द्रमा (ग) राहु (घ) बुध

४. वस्ति कारक कौन सा ग्रह है।
(क) शनि (ख) चन्द्रमा (ग) शुक्र (घ) बुध

५. किन ग्रहों के षष्ठेश या षष्ठभाव से सम्बन्ध होने पर गुर्दे का रोग होता है।
(क) सूर्य, चन्द्र (ख) बुध सूर्य (ग) चन्द शुक्र (घ) शुक्र शनि

६. रक्त का कारक कौन सा ग्रह है ?
(क) मंगल (ख) चन्द्रमा (ग) शुक्र (घ) गुरू

७. सप्तम में शनि राहु हो तो किस रोग की सम्भावना होती है।
(क) मूत्ररोग (ख) उपदंश (ग) मधुमेह (घ) ज्वर

८. गुर्दे का कारक कौन सा ग्रह है।
(क) मंगल (ख) गुरू (ग) राहु (घ) बुध

९. संक्रमण कारक कौन सा ग्रह है ?
(क) सूर्य (ख) केतु (ग) चन्द्र (घ) गुरू

१०. इनमें से मूत्रकृच्छ रोग का कारक ग्रह कौन सा है?
(क) गुरू (ख) शनि (ग) शुक्र (घ) बुध

११. कालपुरूष के शरीर में उदर पर किस राशि का अधिकार है।
(क) कर्क (ख) वृष (ग) सिंह (घ) तुला

१२. कालपुरूष के शरीर में गुर्दे की कारक राशि है।
(क) मेष (ख) वृष (ग) कर्क (घ) तुला

२.७ पारिभाषिक शब्दावली

सहज रोग - जन्मजात रोगों को सहज रोग कहते है।

वृक्क- गुर्दा अथवा किडनी

गुर्दे के अर्बुद ;पकदमल जनउवतेद्ध अर्बुद - टियूमर

दृष्टनिमितजन्य रोग - जिन रोगों का कारण प्रत्यक्षरूप से जाना जा सकता है,

मूत्रकृच्छ - मूत्राशय में पत्थरी आदि के विकसित होने पर तथा मूत्रवाहिनी नलिकाओं मे अवरोधादि से यह रोग होता है।

अदृष्टनिमितजन्यरोग - जिन रोगों का कारण प्रत्यक्षरूप से दिखलाई नही देता,

अश्मरी - आयुर्वेद में किडनी में होने वाली पत्थरी को अश्मरी कहा जाता है।

मल - अपशिश्ट उत्पाद या गन्दगी

वृक्क शोथ - गुर्दे में फोड़ा या सूजन।

२.८ अभ्यास प्रश्नों के उतर

१. (घ) २
२. (ग) वायु
३. (घ) बुध
४. (ग) शुक्र
५. (घ) शुक्र एवं शनि
६. (ख) चन्द्रमा
७. (क) मूत्ररोग
८. (ख) गुरू
९. (ख) केतु
१०. (ग) शुक्र
११. (ग) सिह
१२. (घ) तुला

२.९ संदर्भ ग्रन्थ सूची

	ग्रन्थ नाम	प्रकाशन
१.	जातकपारिजातः	चौखम्भा सुरभारती वाराणासी
२.	सारावली	रंजन पब्लिकेशन्स नई दिल्ली - २
३.	बृहत्पाराशरहोराशास्त्रम्	चौखम्भा सुरभारती वाराणासी
४.	फलदीपिका	मोतीलाल बनारसीदास नई दिल्ली
५.	प्रश्न मार्ग	रंजन पब्लिकेशन्स नई दिल्ली - २
६.	ज्योतिष पीयूष	श्री वेदमाता गायत्री ट्रस्ट शान्तिकुंज हरिद्वार (उतराखण्ड) २४९४११
७.	सुश्रुतसंहिता	मोतीलाल बनारसीदास नई दिल्ली
८.	भावप्रकाशः	मोतीलाल बनारसीदास नई दिल्ली
९.	चरक संहिता	मोतीलाल बनारसीदास नई दिल्ली
१०.	ज्योतिषशास्त्र में रोग विचार	मोतीलाल बनारसीदास नई दिल्ली
११.	ज्योतिष-रतनाकर	मोतीलाल बनारसीदास नई दिल्ली

२.१० निबन्धात्मक प्रश्न

१. ज्योतिष शास्त्र के अनुसार रोगों के भेदो का वर्णन करे।
२. अश्मरी रोग का ग्रहयोगों के अनुसार विवेचन करें।
३. मूत्रकृच्छ रोगों का ज्योतिषशास्त्र के अनुसार विवेचन करें ।
४. गुर्दे में होने वाले रोगकारक योगों पर विचार करें।

इकाई -०३ चर्मरोग

इकाई की संरचना

३.१ प्रस्तावना
३.२ उद्देश्य
३.३ मुख्य भाग चर्म रोग
    ३.३.१ त्वचा रोग के सामान्य लक्षण
    ३.३.२ त्वचा रोग के कारक ग्रह और भाव
३.४ मुख्य खण्ड विषय चर्मविकार दाद, खाज एवं खुजली के योग
    ३.४.१ विसर्प एवं स्फोट के योग
    ३.४.२ फोड़ा, फुन्सी, छाले एवं घाव होने के योग
३.५ सारांश
३.६ अभ्यास प्रश्न
३.७ पारिभाषिक शब्दावली
३.८ अभ्यास प्रश्नो के उतर
३.९ संदर्भ ग्रन्थ सूची
३.१० निबन्धात्मक प्रश्न

३.१ प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई चिकित्सा ज्योतिष में डिप्लोमा पाठ्यक्रम (क्डइ्न दृ २०) के तृतीय पत्र ज्योतिषशास्त्र में विविध व्याधि योग के अन्तर्गत ''तृतीय खण्ड'' अधो अंग रोगाधिकार की तृतीय इकाई चर्म रोग नामक शीर्षक से सम्बन्धित हैं। वैदिक दर्शनों में ''यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे'' का सिद्धान्त प्राचीन काल से चला आ रहा है। जिस पर आज भी अनेक शोधात्मक कार्य चल रहे है, यह सिद्धान्त बतलाता है कि मानव शरीर सहित ब्रह्माण्ड में सभी वस्तुएं पांच मूलतत्त्वों (पंचमहाभूत्तों) अर्थात् पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश से बनी है। सौर जगत में सूर्य चन्द्रादि ग्रहों की विभिन्न गति - विधियों एवं क्रियाकलापों में जो नियम काम करते हैं, ठीक वही नियम प्राणी मात्र के शरीर में स्थित सौर जगत की इकाई का संचालन करते है। हमारे शरीर में कोशाणु बन्धुता नियम (लां आंफ एफीनिटी) के अनुसार दलबद्ध होकर शरीर की ऊतकें (टिश्यूज) और उनके द्वारा अंग बनते है। जिसके परस्पर मिलने से हमारा स्थूल शरीर बन जाता है। हमारे शरीर एवं मन में उत्पन्न होने वाले विकार, जिनसे हमें किसी भी प्रकार का शारीरिक एवं मानसिक दुःख मिलता है उसको रोग कहते है।

इस इकाई में आप चिकित्सा ज्योतिष में ग्रहयोगों से बनने वाले विविध व्याधि योगों के अन्तर्गत चर्मरोगों का अध्ययन करेंगे तथा विशेषरूप से रोगों के मूल कारणो को समझ सकेंगे।

३.२ उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप शरीर के अधो अंग रोगाधिकार के अन्तर्गत चर्मरोगों को समझ सकेंगे कि -

१. चर्मरोगों में दाद, खुजली एवं कुष्ठरोगों को कैसे समझ सकते है।
२. शरीर की त्वचा पर ग्रहों का प्रभाव क्या है।
३. त्वचा रोग के सामान्य लक्षण क्या है।
४. राशि एवं ग्रहों से चर्मरोगों जान सकेंगे।
५. ग्रहों के अनुसार रोगों की साध्यता, असाध्यता को समझ सकेंगे।
६. कौन - कौन से ग्रह चर्मरोग के कारक है ।

३.३ चर्म रोग

त्वचा शरीर का सबसे विस्तृत अंग एवं शरीर का बाह्य अवयव है, जो बाह्य जगत के संपर्क ;ब्वदजंबजद्ध में रहता है। जिसके चलते बाहर की धूप, लू, धूल, मिट्टी, गंदगी, प्रदूषण, बाहरी, वातावरण में मौजूद बैक्टीरिया आदि सभी त्वचा को प्रभावित करते है। यही कारण है कि इसे अनेक वस्तुओं से हानि पहुचंती है। त्वचा के किसी भाग के असामान्य अवस्था को चर्मरोग ;क्मतउंजवेपेद्ध कहते है। चर्म रोग त्वचा पर होने वाला संक्रमण या रोग है। जो त्वचा के बाहरी हिस्से पर कहीं पर भी हो सकता है। त्वचा सम्बन्धी कुछ रोग जन्म से होते है, जिनका कारण त्वचा का कुविकास ;डंसकमअमसवचउमदजद्ध है। कुछ मनुष्य की त्वचा सूखी और मंछली की त्वचा की

भांति होती है, तथा जन्मभर ऐसी ही रहती है। त्वचा पर भौतिक कारणों से भी कुछ रोग होते है। इस इकाई में आप त्वचा सम्बन्धित चर्मरोगों जैसे दाद, खाज, खुजली, फोड़ा, फुन्सी, गण्ड़, विसर्प, स्फोट एवं कुष्ठ आदि के बारे में ग्रहों के द्वारा बनने वाले योगों के माध्यम से समझेगें।

३.३.१ त्वचा रोग के सामान्य लक्षण

सामान्यतः त्वचा रोग के लक्षण प्रारम्भिक स्तर पर दिखाई दे जाते हैं, उस स्तर पर यदि उपचार किया जाए, तो ठीक रहता है अन्यथा उसके दीर्घकालिक रोग का रूप लेने की आशंका रहती है। शरीर में हार्मोन्स के परिवर्तन के कारण भी त्वचा रोग दिखाई देता हैं यथा किशोरावस्था में होने वाली फुंसिया, जो कि कुछ समय पश्चात् स्वतः ही ठीक हो जाती हैं, लेकिन इसे त्वचा रोग नही मानना चाहिए, क्योंकि ये एक सामान्य प्रक्रिया है, जो कि प्रत्येक व्यक्ति के साथ उस उम्र में होती है। इसके अतिरिक्त जले हुए स्थान या गिरने पर छिले हुए स्थान पर पड़ने वाले सफेद दाग भी त्वचा रोग की श्रेणी में नही आते है, क्योंकि इस स्थिति का मुख्य कारण कोई त्वचा रोग नही है, अपितु जलना या गिरना है। यहां कहने का उदेश्य यह है कि इस त्वचा रोग का निर्धारण करते समय मुख्य कारण का भी विचार कर लेना चाहिए। इसके अतिरिक्त होने वाले अन्य त्वचा सम्बन्धित रोगों के सामान्य लक्षण निम्नलिखित है :-

१. त्वचा पर लाल-लाल चकते होना ।
२. धूप में निकलने पर त्वचा का रंग लाल हो जाना ।
३. ग्रीष्म ऋतु के आरम्भ होते ही फोड़े-फुंसियां निकलना आरम्भ हो जाना।
४. झाइयां होना या त्वचा पर अनेक जगह काले निशान होना ।
५. दाद या एग्जिमा।
६. किसी मौसम विशेष में या सदैव खुजली होना।
७. त्वचा पर दर्द रहित छोटे-छोटे दाने होना।

उक्त सभी लक्षणों में से कोई लक्षण सामने आने पर चिकित्सक से उपचार लेना चाहिए तथा अपनी जन्मपत्रिका को किसी सुयोग्य ज्योतिषी को दिखाकर इस रोग के कारक ग्रहों का यथाविधि उपचार करना चाहिए। सम्बन्धित ग्रह के उपचार से न केवल शीघ्र ही इस रोग से मुक्ति प्राप्त होती है, अपितु भविष्य में इस रोग के होने की आशंका से भी बचा जा सकता है।

३.३.२ त्वचा रोग के कारक ग्रह और भाव

पंचमहाभूतों में भूमि तत्वात्मक बुधग्रह को ज्योतिष शास्त्र में त्वचा का कारक माना गया है। बुध यदि शुभ अवस्था में है, तो व्यक्ति की त्वचा अत्यन्त स्निग्ध होती है एवं त्वचा से सम्बन्धित कोई भी रोग उसे नही होता है, लेकिन यदि बुध पापयुक्त एवं पापदृष्ट हो, अथवा त्रिकभाव षष्ठ, अष्टम एवं द्वादश में स्थित हो, तो उस व्यक्ति की त्वचा कठोर होती है एवं उसे त्वचा सम्बन्धित रोग होने की पूर्ण आशंका रहती है। त्वचा सम्बन्धी रोगों में शनि, राहु आदि पापग्रहों की भी अहम भूमिका होती है। त्वचा रोगों के जितने भी योग देखे गए है, उनमें शनि, राहु एवं मंगल तथा क्षीण चन्द्रमा का स्थान अवश्य

होता है। सम्पूर्ण शरीर पर इसका आवरण होने के कारण जन्मकुण्ड़ली के सभी भाव इस रोग के कारक हो सकते है, लेकिन फिर भी स्वास्थ्य के प्रतीक लग्नभाव एवं रोगों का कारक षष्ठभाव को इसके लिए प्रमुखरूप से जिम्मेदार माना जा सकता है। द्वादशभाव शरीर के विभिन्न अंगों का प्रतिनिधित्व करते हैं। अतः जन्मपत्रिका में बुध पापग्रहों से पीड़ित होकर जिस भी भाव में स्थित होता है। उस भाव से सम्बन्धित अंग की त्वचा रोग से सर्वाधिक प्रभावित होती है या उस स्थान से ही रोग का प्रारम्भ होता है। त्वचा से सम्बन्धित रोग का विचार करते समय यह भी ध्यान रखना चाहिए कि मंद गति के ग्रह शनि और राहु का अशुभ प्रभाव यदि लग्न या बुध पर हो रहा हो, तो वह रोग दीर्घकालिक हो जाता है। इसके विपरीत यदि सूर्य और चन्द्रमा की स्थिति जन्मकुण्डली में शुभ है अथवा लग्नेश सबल है, तो रोगों से शीघ्र ही मुक्ति प्राप्त हो जाती है।

३.४ चर्मविकार दाद, खाज एवं खुजली के योग --

दाद, खाज एवं खुजली ये चर्मरोग निम्नलिखित ग्रहयोगों के कारण होते है -

१. द्वितीयभाव में जलीयराशि में स्थित चन्द्रमा पर शनि की दृष्टि हो तो दाद होती है।
२. यदि चन्द्रमा जलचर राशि (कर्क, मकर, कुम्भ एवं मीन) द्वितीय भाव में शनि के साथ द्वितीयभाव में बैठा हो तो जातक दादरोग से पीड़ित होता है।
३. द्वितीयभाव में जलचर राशि में चन्द्रमा एवं लग्न में सूर्य बैठा हो तो दाद रोग होता है [१९]।

कोशे पीयूषभानुर्जलचरगृहगः सौरिणा संयुतो वा।
मार्तण्ड़े भूमिकेन्द्रे यदि भवति तदा दद्रुमान् पुरूषः स्यात्।।

४. सप्तम स्थान में कर्क, वृश्चिक या मीनराशि में चन्द्रमा हो और वह भूमि भावगत शनि से युक्त हो तो दाद रोग होता है।
५. सप्तम स्थान में बुध, सूर्य एवं चन्द्रमा हो तथा अन्यग्रह चतुर्थ स्थान में हो तो १६वें वर्ष में दाद रोग होता है।
६. यदि षष्ठेश पापग्रह के साथ हो और उस पर लग्नस्थ, अष्टमस्थ एवं दशमस्थ पाप ग्रह की दृष्टि हो तो चर्मरोग होता है।

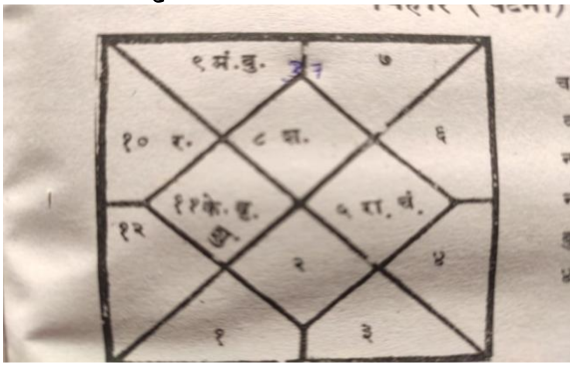

[19] जतक पारिजात अ. 3 श्लो. 24

इस कुण्ड़ली में मंगल लग्नेश एवं षष्ठेश होते हुए अष्टमेश बुध के साथ द्वितीयभाव में स्थित है तथा चन्द्रमा और राहु दशमस्थान में स्थित है। मंगल और बुध राहु से दृष्ट है। ये जातक बहुत काल से एक्जिमा ;म्रमउंद्ध से पीड़ित था

७. लग्न में सूर्य हो तो दाद रोग होता है।

८. पापग्रह के साथ चन्द्रमा नवमभाव में हो तो खाज होती है।

६. कारकांश में मिथुन एवं मकर राशि हो तो खुजली होती है।

१०. यदि मंगल शनि के साथ तृतीयभाव में बलवान होकर स्थित हो तो जातक कण्डु (खुजली) रोग से पीड़ित होता है।[२०]

भौमान्विते भानुसुते बलाढये तृतीयराशौ यदि कण्डुरोगम्।।

११. सूर्य की दशा में बुध की अन्तर्दशा हो तो दाद, खाज या खुजली होती है।[२१]

दद्रुविचर्चिकाद्यैः पाम्ना कुष्ठैश्च गर्हितशरीरः।
तरणिदशायां प्रविशति बुधो यदा स्यादरेवृद्धिः।।

१२.लग्न में मेष, मकर या जलचर राशि हो उस पर शनि की दृष्टि हो तो खुजली होती है।

१३. नवम भाव में पापग्रह के साथ चन्द्रमा हो तथा उस पर पापग्रह की दृष्टि हो तो खुजली होती है।

१४. जलचर राशि में स्थित चन्द्रमा जलचर राशिगत शनि से दृष्ट या युत हो तो खुजली होती है।

१५. नवमभाव में पापयुक्त चन्द्रमा हो तो खुजली होती है।

१६. तृतीय भाव में मंगल के साथ बलवान शनि हो तो खुजली होती है।

१७. यदि सप्तमस्थ चन्द्रमा स्निग्ध राशिगत हो और उस पर शनि की दृष्टि हो तो दादरोग होता है।

१८. यदि मंगल एवं केतु षष्ठ अथवा अष्टम स्थानगत हो तो चर्मरोग होता है।

१६. यदि मंगल षष्ठेश के साथ हो तो चर्मरोग होता है।

२०. यदि बुध और राहु षष्ठेश एवं लग्नेश के साथ हो तो चर्म रोग होता है।

२१. यदि षष्ठेश पापग्रह होकर लग्न, अष्टम एवं दशमस्थान में बैठा हो तो चर्मरोग होता है।

२२. यदि षष्ठेश शत्रुगृही, नीच, वक्री अथवा अस्त हो, तो चर्मरोग होता है।

---

[20]जातक पारिजात अ. 12 श्लो. 43

[21] सारावली अ. 42 श्लो.14

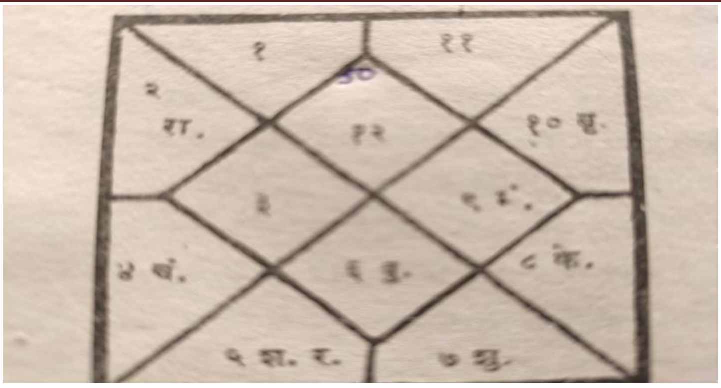

इस कुण्ड़ली में षष्ठेश सूर्य अपने परमशत्रु शनि के साथ है पुनः शनि शत्रुगृही है। ये जातक बहुत काल से ठर्रा एक्जिमा ;म्श्रमउंद्ध से पीड़ित था।

कुण्ड़ली नं. २

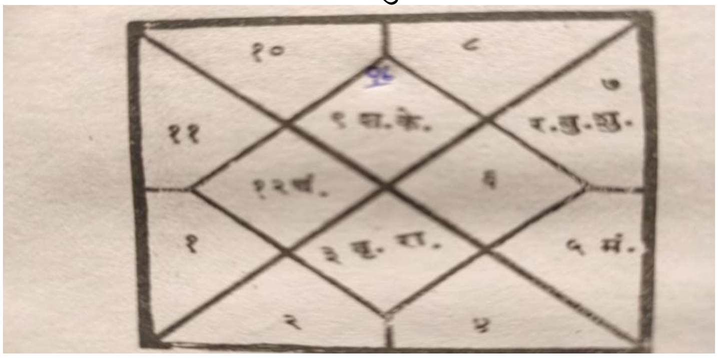

इस कुण्ड़ली में षष्ठेश शुक्र एकादश भाव में सूर्य एवं बुध के साथ स्वराशिस्थ है। सूर्य अपनी नीचराशि में बैठा है। सप्तम भाव में स्थित गुरू और राहु की शुक्र पर दृष्टि है। अतः यह जातक दाद और एक्जिमा ;म्श्रमउंद्ध से पीड़ित था।

३.४.१विसर्प एवं स्फोट के योग

त्वचा, मांस एवं रक्त के दूषित होने पर सर्प की तरह चारों ओर फैलने वाला रोग चिसर्प कहलाता है। इसे जहरवाद या सेप्टिक भी कहते है।

स्फोट रोग में त्वचा, मांस, रक्त एवं अस्थि के दोष से आग से जुलसे हुए व्यक्ति के समान, शरीर पर छाले या चकते पड़ जाते हैं तथा इन छालों या फफोलों की जगह मांस चमडी फट जाती है। ये चर्मरोग निम्नलिखित ग्रहयोगों के कारण होते है।

१. अष्टम् स्थान में स्थित सूर्य पर मंगल की दृष्टि हो तो विसर्प या स्फोट रोग होता है।[२२]
   निधनस्थे दिवानाथे भूसुतेन विलोकिते।
   विसर्पस्फोटका रोगा जायन्ते तस्य जन्मिनः ।।
२. लग्न, द्वितीय, सप्तम या अष्टमस्थान में सूर्य हो तथा उस पर मंगल की दृष्टि हो तो विसर्प या स्फोट रोग होता है।

[22]वीरसिंहावलोक

३. मंगल लग्न, द्वितीय, सप्तम या अष्टम स्थान में हो तथा उस पर सूर्य की दृष्टि हो तो स्फोट रोग होता है।
४. अष्टमेश तृतीयेश के साथ लग्न में बैठा हो तो स्फोट से मृत्यु होती है।
५. मंगल के साथ अष्टमेश लग्न में बैठा हो तो स्फोट से मृत्यु होती है।
६. यदि लग्नेश और षष्ठेश मंगल के साथ हों तो जातक को स्फोटक रोग होता है।

३.४.२ फोड़ा, फुन्सी, छाले एवं घाव होने के योग

शरीर में होने वाले फोड़ा, फुन्सी, छाले एवं घाव को भी चर्मरोग का प्रकार माना गया है। ये निम्नलिखित ग्रहयोगों के प्रभाववश होते है :-

१. लग्न, सप्तम या अष्टमभाव में स्थित सूर्य पर मंगल की दृष्टि हो तो शरीर के किसी अंग विशेष पर व्रण होता है।
२. लग्न, षष्ठ, सप्तम या द्वादश भाव में स्थित गुलिक एवं मंगल को सूर्य देखता हो तो शरीर के किसी अंग विशेष पर व्रण होता है।
३. यदि मंगल लग्न, द्वितीय, सप्तम या अष्टमभाव में स्थित हो उस पर सूर्य की दृष्टि हो तो शरीर के किसी अंग विशेष पर व्रण होता है।
४. वृश्चिक राशि में स्थित मंगल पर गुरू या शुक्र की दृष्टि न हो तो शरीर में फुंसिया होती है।
५. सप्तम स्थान में केतु मंगल हो तो शरीर में फुंसिया होती है।
६. यदि मंगल और शनि षष्ठ एवं द्वादश स्थान में हो तो व्रण होता है।
७. यदि शनि अष्टमस्थ और मंगल सप्तमस्थ हो तो जातक को पन्द्रह से तीस वर्ष की अवस्था में मुख पर फुन्सी फोड़े आदि होते है।

निम्नलिखित कुण्ड़ली में धनु लग्न है। षष्ठभाव में वृषराशि पर शनि तथा द्वादशभाव में स्वराशिगत मंगल है। शनि एवं मंगल में परस्पर दृष्टि सम्बन्ध है। मंगल की सप्तमभाव पर पूर्ण दृष्टि है। जातक को बाल्यकाल में कठिन व्रण हुए थे जिनकी चीर फाड़ की आवश्यकता पड़ी थी, उनमें से एक घाव के अच्छा होने में बड़ी कठिनाई हुई थी। उक्त कुण्ड़ली ज्योतिष रत्नाकर नामक ज्योतिष ग्रन्थ मे पृष्ठ १०४० पर दी है।

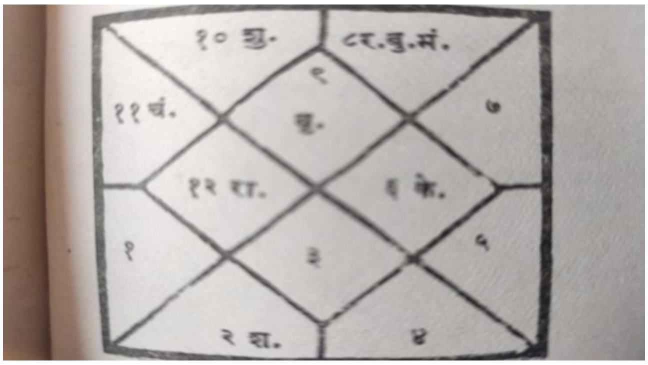

८. यदि लग्नेश, मंगल के साथ लग्नगत हो और उसके साथ पापग्रह हो अथवा पापग्रह की दृष्टि पड़ती हो, तो पत्थर या किसी शस्त्र के द्वारा शरीर में व्रण इत्यादि होते है।

९. यदि लग्नेश, शनि के साथ लग्न में बैठा हो और उस पर पापग्रह की दृष्टि हो अथवा लग्न में और भी कोई पापग्रह हो तो जातक के शरीर में चोट लगने से अथवा अग्नि से व्रणादि होते है।

१०. यदि षष्ठेश, लग्न अथवा अष्टमस्थान में बैठा हो और उसके साथ कोई पापग्रह भी हो अथवा शुभग्रह से दृष्ट न हो तो जातक को व्रणादि होते है।

देखिए कुण्ड़ली आदिगुरू शंकराचार्य की।

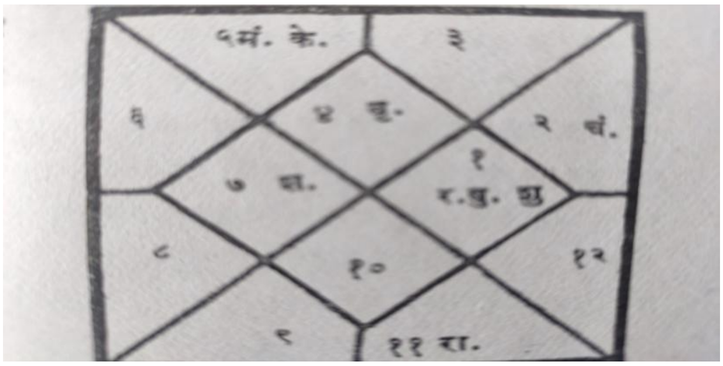

इस कुण्ड़ली में षष्ठेश बृहस्पति लग्नगत है। चतुर्थभाव में शनि बैठा है, जो बृहस्पति को पूर्ण दृष्टि से देख रहा है। अष्टमभाव में राहु बैठा है। शनि की गुरू पर दृष्टि होने से बृहस्पति पापदृष्ट है। अनुमान किया जा सकता है कि भगन्दर इसी कारण हुआ। वैद्यक शास्त्र में भगंदर को व्रण रोग का एक विशेष भेद बतलाया है।

११. यदि षष्ठेश राहु अथवा केतु के साथ लग्न में बैठा हो, तो जातक के शरीर में व्रण होता है।

१२. यदि षष्ठेश किसी पापग्रह के साथ दशमस्थान में हो और उस पर किसी शुभग्रह की दृष्टि न हो, तो जातक के शरीर में व्रण होता है।

१३. लग्नेश एवं मंगल त्रिक स्थान में हों तो शरीर में गांठ तथा उसके फूटने से घाव होते है।

१४. षष्ठेश चन्द्रमा के साथ लग्न या अष्टम में हो तो मुंह में छाले होते है।

१५. षष्ठेश मंगल के साथ लग्न या अष्टम में हो तो गले में छाले या घाव होते है।

१६. षष्ठेश बुध के साथ लग्न या अष्टम में हो तो हृदय या वक्षस्थल पर घाव होता है।

१७. षष्ठेश बृहस्पति के साथ लग्न या अष्टम में हो तो नाभि के पास घाव होता है।

१८. षष्ठेश शुक्र के साथ लग्न या अष्टम में हो तो नेत्र में गुहेरी या रोहे होते है।

१९. षष्ठेश शनि के साथ लग्न या अष्टम में हो तो पैरो में छाले या घाव होते है।

२०. षष्ठेश राहु या केतु के साथ लग्न या अष्टम में हो तो होठों में छाले या घाव होते है।

२१. व्यय स्थान में चन्द्रमा एवं गुरू तथा त्रिक स्थान में बुध हो तो गुदा में घाव होता है।

३.४.३ कुष्ठरोगएवं उसके योग

विरूद्ध भोजन, अध्यशयन, असात्म्य भोजन, मलमूत्रादि के उपस्थित वेगों को रोकने से, स्नेहादि कार्यो के ठीक प्रकार न करने से, पापाचरण एवं पुरातन किये कर्मो के कारण त्वग् रोग होते है।[२३]

विरूद्धाध्यशनासात्म्यवेगविघातैः स्नेहादीनां चायथारम्भैः पापक्रियया पुराकृतकर्मयोगाच्च त्वग्दोषाः भवन्ति।

त्वग्दोष - त्वग्रोग ये सब कुष्ठ के ही नाम है। कुष्ठरोग में त्वचा दूषित हो जाती है, अतः इसे त्वग्दोष कहते हैं। कुल मिलाकर कुष्ठ अठारह प्रकार के हैं। इनमें सात महाकुष्ठ और ग्यारह क्षुद्र कुष्ठ है। सम्पूर्ण कुष्ठ वात, पित, कफ एवं कृमि के दोष के कारण उत्पन्न होते हैं। इन्हें छूत का रोग भी माना जाता है, जो एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में चला जाता है। जब वात आदि दोष त्वचा, मांस एवं रक्त को दूषित कर देते है, तब यह रोग होता है। इस रोग के कारण शरीर में लाल, नीले या सफेद दाग बन जाते है। तथा शरीर के अंग धीरे - धीरे गलने लगते है। आज के युग में कुष्ठ न तो असाध्यरोग है न ही भयावह। इसकी सफल चिकित्सा व उन्मूलन चिकित्सा शास्त्र में उपलब्ध है। फलित ज्योतिष के ग्रन्थों में इसके अनेक योगों का विवेचन किया गया है। ज्योतिष शास्त्र में लग्न से शरीर का और चन्द्रमा से रूधिर का विचार होता है। लग्न एवं चन्द्रमा के दूषित रहने से प्रायः रूधिर प्रकोप के कारण कुष्ठ रोग होता है। लग्न में यदि पापग्रह हों परन्तु उनमें कोई स्वगृही न हो, तो कुष्ठरोग का भय होता है। यदि शनि लग्न में हो तो नीलकुष्ठ, सूर्य लग्न में हो तो रक्त कुष्ठ और मंगल हो तो श्वेतकुष्ठ होता है। परन्तु स्मरण रहे कि केवल एक ग्रह के लग्नगत होने से कुष्ठ रोग नही होता। यदि अन्य प्रकार से भी वह लग्नस्थ पापग्रह पीड़ित एवं निर्बल हो तभी कुष्ठ रोग निम्नलिखित ग्रहयोगों के प्रभाववश यह रोग होता है।

१. यदि चन्द्रमा शनि एवं मंगल के साथ कर्क, मकर अथवा मीन के नवांश में शुभग्रह से दृष्ट अथवा युक्त न हो तो जातक को कुष्ठरोग होता है।
२. यदि चन्द्र, शनि और मंगल कर्क, वृश्चिक अथवा मीनराशि में एक साथ बैठे हो तो रूधिरविकार से कुष्ठ होता है।
३. यदि शुक्र, मंगल, चन्द्र एवं शनि एक साथ कर्क, वृश्चिक अथवा मीनराशि में बैठे हो तो जातक रक्तकुष्ठी और महापातकी होता है।
४. यदि चन्द्र और सूर्य किसी पापग्रह के साथ कर्क, वृश्चिक अथवा मीनराशिगत हो तो श्वेतकुष्ठ होता है।
५. यदि चन्द्र, मंगल, शनि और शुक्र जलराशिगत हों एवं किसी प्रकार से पीड़ित हो तो जातक को लूताकार कुष्ठ नामक रोग होता है। अर्थात् ऐसे व्रणादि से जातक पीड़ित होता है। जिससे मरणान्तक कष्ट होता है।
   देखो कुण्डली गंगा प्रसाद सिंह की कुष्ठव्याधि से इनके हाथ और पैर की अंगुलियां खराब हो गयी और नेत्र की ज्योति भी नष्ट हो गयी।

[23] सुश्रुतसंहिता चि.स्था.अ. ९ श्लो. ३ ।

इस कुण्ड़ली में चन्द्र, शुक्र और शनि जलराशिगत है। इनको प्रथम श्वेत कुष्ठ का ही रोग हुआ था। क्रमशः इनके हाथ पैर इत्यादि और अंगो में भी कुष्ठ रोग का आक्रमण हुआ।

६. यदि शुक्र अथवा बृहस्पति षष्ठस्थान में हो और उस पर पापग्रह की दृष्टि हो तो सोफ रोग अर्थात् एक प्रकार का कुष्ठ होता है।
७. यदि चर राशि में शुक्र और चन्द्रमा किसी पापग्रह के साथ बैठे हों तो पाण्डु कुष्ठरोग होता है।
८. यदि षष्ठेश राहु अथवा केतु के साथ लग्नगत हो अथवा अष्टम तथा दशमस्थान में हो तो कुष्ठरोग होता है।
९. यदि मंगल और शनि द्वादश या द्वितीयभाव में हो, चन्द्रमा लग्नगत हो और सूर्य सप्तमस्थान में हो तो जातक को श्वेतकुष्ठ होता है।
१०. यदि चन्द्रमा बुध, राहु और सूर्य लग्नेश के साथ हो तथा उसके साथ मंगल अथवा शनि भी हो तो कुष्ठरोग होता है।
११. यदि षष्ठेश, अष्टमेश और लग्नेश षष्ठस्थान में हो तथा उसके साथ मंगल अथवा शनि हो तो एक प्रकार का कुष्ठरोग होता है।
१२. यदि चन्द्र अथवा बुध लग्न स्वामी होकर राहु या केतु से युति करके शनि से देखे जाते हो तो कुष्ठरोग होता है।
१३. यदि मंगल अथवा बुध लग्नस्वामी हो और ऐसे लग्न के स्वामी के साथ चन्द्रमा हो तथा उस पर शनि की दृष्टि हो, अथवा राहु की सप्तम दृष्टि हो तो कुष्ठरोग होता है।
१४. यदि षष्ठेश राहु के साथ सप्तम स्थान में बैठा हो उस पर मंगल की दृष्टि हो तो किसी रोग से अंग भंग होता है, अन्त में कुष्ठव्याधि होती है।
१५. चन्द्रमा मेष या वृषराशिगत हो, उसके साथ शनि या मंगल बैठे हों, तो जातक कुष्ठरोगी होता है।
१६. यदि कर्क, वृश्चिक और मीनराशि में क्रूर ग्रह बैठे हों तो एक प्रकार का चकता कुष्ठरोग होता है।
१७. यदि सूर्य मंगल और शनि ये तीनों किसी भाव में एक साथ बैठे हो, तो कुष्ठरोग होता है।

श्वेतकुष्ठ के योग –

१. कारकांश से चतुर्थ में चन्द्रमा हो और उस पर शुक्र की दृष्टि हो, तो श्वेत कुष्ठ होता है।
२. चन्द्रमा एवं शुक्र - ये दोनों पापग्रहों के साथ जलराशियों में हो, तो श्वेत कुष्ठ होता है।
३. यदि लग्नेश किसी भी स्थान में राहु या केतु के साथ हों तो जातक के शरीर के किसी भी अंग में सफेद दाग होते है।
४. यदि चन्द्रमा एवं मंगल ये दोनों राहु या केतु के साथ हो तो शरीर के किसी भाग में सफेद दाग होते है।
५. शनि, चन्द्र एवं मंगल मेष या वृषराशि में हो, तो श्वेत कुष्ठ होता है।
६. शनि एवं मंगल क्रमशः द्वादश एवं द्वितीय स्थान में, लग्न में चन्द्रमा तथा सप्तम में सूर्य हो, तो श्वेत कुष्ठ होता है।
७. लग्नेश एवं बुध ये दोनों तथा चन्द्रमा एवं मंगल ये दोनों साथ-साथ हो और राहु या केतु से युक्त हो, तो श्वेत कुष्ठ होता है।
८. मेष या वृषराशि में मंगल एवं शनि के साथ चन्द्रमा हो तो श्वेत कुष्ठ होता है।
९. कर्क, वृश्चिक या मीन में पापग्रहों के साथ सूर्य या चन्द्रमा हो तो श्वेत कुष्ठ होता है।
१०. अष्टम स्थान में लग्नेश हो और पापग्रहों से दृष्ट-युत हो तो श्वेत कुष्ठ होता है।
११. यदि लग्नेश अष्टमगत और पापग्रह के साथ हो अथवा पापदृष्ट हो तो जातक श्वेतकुष्ठ, दाद, खुजली वा मन्दाग्नि से पीड़ित होता है।

३.५ सारांश

इस इकाई में ज्योतिषशास्त्र के विविध व्याधि योगों के अन्तर्गत अधो अंग रोगाधिकार में चर्मरोग नामक शीर्षक से दाद, खाज, खुजली, फोड़ा, फुन्सी, गण्ड़, विसर्प, स्फोट एवं कुष्ठ आदि रोगों का अवलोकन करेंगे। पंचमहाभूतों में भूमि तत्वात्मक बुधग्रह को ज्योतिष शास्त्र में त्वचा का कारक माना गया है। चन्द्र और शुक्र जलीयग्रह है और कर्क, वृश्चिक एवं मीन जलीयराशियां है इन पर पापाग्रह का प्रभाव होने से चर्मरोग की सम्भावना रहती है। यदि बुध पापयुक्त एवं पापदृष्ट हो, अथवा त्रिकभाव षष्ठ, अष्टम एवं द्वादश में स्थित हो, तो उस व्यक्ति की त्वचा कठोर होती है एवं उसे त्वचा सम्बन्धित रोग होने की पूर्ण आशंका रहती है। त्वचा सम्बन्धी रोगों में शनि, राहु आदि पापग्रहों की भी अहम भूमिका होती है। त्वचा रोगों के जितने भी योग देखे गए है, उनमें शनि, राहु एवं मंगल तथा क्षीण चन्द्रमा का स्थान अवश्य होता है। सम्पूर्ण शरीर पर इसका आवरण होने के कारण जन्मकुण्डली के सभी भाव इस रोग के कारक हो सकते है, लेकिन फिर भी स्वास्थ्य के प्रतीक लग्नभाव तथा रोगों के कारक षष्ठभाव को इसके लिए प्रमुख माना जा सकता है। शरीर में हार्मोन्स के परिवर्तन के कारण भी त्वचा रोग दिखाई देता हैं यथा किशोरावस्था में होने वाली फुंसिया, जो कि कुछ समय पश्चात् स्वतः ही ठीक हो जाती हैं, लेकिन इसे त्वचा रोग नही मानना चाहिए, क्योंकि ये एक सामान्य प्रक्रिया है, जो कि प्रत्येक व्यक्ति के साथ उस उम्र में होती है। इसके अतिरिक्त जले हुए स्थान या गिरने पर छिले हुए स्थान पर पड़ने वाले सफेद दाग भी त्वचा रोग की श्रेणी में नही आते है, क्योंकि इस स्थिति का मुख्य कारण कोई त्वचा रोग नही है, अपितु जलना या

गिरना है। यहां कहने का उदेश्य यह है कि इस त्वचा रोग का निर्धारण करते समय मुख्य कारण का भी विचार कर लेना चाहिए।

इस प्रकार ज्योतिषशास्त्र में ग्रह, राशि एवं भाव तथा युति, दृष्टि एवं सम्बन्ध शुभाशुभयों का कारक बनते है। ज्योतिषशास्त्र के अनुसार प्रत्येक ग्रह के शुभ और अशुभ दोनों ही प्रभाव मानव जीवन पर पड़ते हैं। जैसे प्रत्येक वरदान के पीछे कोई न कोई शाप भी छुपा होता है वैसे ही प्रत्येक ग्रह की अच्छाईयों के पीछे कोई न कोई समस्या अवश्य छुपी रहती है। इसलिए जन्मकुण्डली एवं प्रश्नकुण्डली के आधार पर शरीर के विविध रोगों का ग्रहयोगों के आधार पर विचार एवं निर्णय किया जाता है।

आप इस इकाई के अध्ययन से आयुर्वेद के अनुसार रोगों के कारणों एवं लक्षणों को जानकर ज्योतिषशास्त्र के अनुसार ग्रह, राशि एवं भावों के आधार पर बनने वाले रोगकारक योगों से रोग का निर्णय करने मे सक्षम होगें।

३.६ अभ्यास प्रश्न

१. ज्योतिषशास्त्र के अनुसार बुधग्रह किस तत्व का कारक है।

(क) अग्नि (ख) जल (ग) वायु (घ) भूमि

२. कौन सी राशि जलतत्व की कारक है ?

(क) मेष (ख) मिथुन (ग) कर्क (घ) तुला

३. त्रिदोष कारक कौन सा ग्रह है ?

(क) मंगल (ख) चन्द्रमा (ग) राहु (घ) बुध

४. त्वचा कारक कौन सा ग्रह है।

(क) शनि (ख) चन्द्रमा (ग) शुक्र (घ) बुध

५. किन ग्रहों के षष्ठेश या षष्ठभाव से सम्बन्ध होने पर चर्मरोग होता है।

(क) गुरू शुक्र (ख) बुध राहु (ग) चन्द शुक्र (घ) शुक्र शनि

६. रक्त का कारक कौन सा ग्रह है ?

(क) मंगल (ख) चन्द्रमा (ग) शुक्र (घ) गुरू

७. कर्क, वृश्चिक या मीनराशि में पापग्रहों के साथ सूर्य या चन्द्रमा हो तो किस रोग की सम्भावना होती है।

(क) मूत्ररोग (ख) कुष्ठ (ग) वस्ति (घ) ज्वर

८. वायुतत्व का कारक कौन सा ग्रह है।

(क) मंगल (ख) गुरू (ग) शनि (घ) बुध

९. संक्रमण कारक कौन सा ग्रह है ?

(क) सूर्य (ख) केतु (ग) चन्द्र (घ) गुरू

१०. इनमें से चर्मरोग का कारक ग्रह कौन सा है।

(क) गुरू (ख) शनि (ग) शुक्र (घ) बुध

३.७ पारिभाषिक शब्दावली

चर्मरोग - त्वचा के किसी भाग के असामान्य अवस्था को चर्मरोग ;क्मतउंजवेपेद्ध कहते है।

विसर्प - त्वचा, मांस एवं रक्त के दूषित होने पर सर्प की तरह चारों ओर फैलने वाला रोग विसर्प कहलाता है। इसे जहरवाद या सेप्टिक भी कहते है।

त्वग्दोष - कुष्ठरोग में त्वचा दूषित हो जाती है, अतः इसे त्वग्दोष भी कहते हैं।

पंचमहाभूत - भूमि, जल, तेज, वायु और आकाश ।

दृष्टनिमितजन्य रोग - जिन रोगों का कारण प्रत्यक्षरूप से जाना जा सकता है,

त्वग्रोग - त्वचा के रोग।

दाद - फंगल संक्रमण

त्रिक स्थान - कुण्ड़ली का षष्ठ, अष्टम एवं द्वादश भाव।

३.८ अभ्यास प्रश्नों के उतर

१. (घ) भूमि
२. (ग) कर्क
३. (घ) बुध
४. (घ) बुध
५. (ख) बुध राहु
६. (ख) चन्द्रमा
७. (ख) कुष्ठ
८. (ग) गुरू
९. (ख) केतु
१०. (घ) बुध

३.९ संदर्भ ग्रन्थ सूची

ग्रन्थ नाम	प्रकाशन
१. जातकपारिजातः	चौखम्भा सुरभारती वाराणासी
२. सारावली	रंजन पब्लिकेशन्स नई दिल्ली - २
३. बृहत्पाराशरहोराशास्त्रम्	चौखम्भा सुरभारती वाराणासी
४. फलदीपिका	मोतीलाल बनारसीदास नई दिल्ली
५. प्रश्न मार्ग	रंजन पब्लिकेशन्स नई दिल्ली - २
६. ज्योतिष पीयूष	श्री वेदमाता गायत्री ट्रस्ट शान्तिकुंज हरिद्वार (उतराखण्ड) २४९४११
७. सुश्रुतसंहिता	मोतीलाल बनारसीदास नई दिल्ली
८. भावप्रकाशः	मोतीलाल बनारसीदास नई दिल्ली
९. चरक संहिता	मोतीलाल बनारसीदास नई दिल्ली

१०. ज्योतिषशास्त्र में रोग विचार मोतीलाल बनारसीदास नई दिल्ली
११. ज्योतिष-रतनाकर मोतीलाल बनारसीदास नई दिल्ली

३.१० निबन्धात्मक प्रश्न

१. ग्रहयोग के अनुसार होने वाले चर्मरोगों का वर्णन करे?
२. दाद रोग का ग्रहयोगों के अनुसार विवेचन करें?
३. कुष्ठ रोग का ज्योतिषशास्त्र के अनुसार विवेचन करें ?
४. विसर्प एवं स्फोट रोगकारक योगों पर विचार करें?

इकाई - ०४ गुदा रोग

इकाई की संरचना

४.१ प्रस्तावना
४.२ उद्देश्य
४.३ मुख्य भाग गुदा रोग
 ४.३.१ आयुर्वेद के अनुसार शरीर का निर्माण
 ४.३.२ वातदोष के पांच भेद
 ४.३.३ गुदा रोग के कारक ग्रह और भाव
४.४ मुख्य खण्ड विषय गुदारोग में अर्शरोग ;च्पसमेद्ध के योग
 ४.४.१ गुदारोग में भगन्दर ;थ्पेजनसंद्धरोग के योग
 ४.४.२ गुदा के अन्य रोगों के योग -
४.५ सारांश
४.६ अभ्यास प्रश्न
४.७ पारिभाषिक शब्दावली
४.८ अभ्यास प्रश्नो के उतर
४.९ संदर्भ ग्रन्थ सूची
४.१० निबन्धात्मक प्रश्न

४.१ प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई चिकित्सा ज्योतिष में डिप्लोमा पाठ्यक्रम (क्डज्ञ दृ २०) के तृतीय पत्र ज्योतिषशास्त्र में विविध व्याधि योग के अन्तर्गत ''तृतीय खण्ड'' अधो अंग रोगाधिकार की चतुर्थ इकाई गुदारोग नामक शीर्षक से सम्बन्धित हैं। वैदिक दर्शनों में ''यथा पिण्डे तभा ब्रह्मण्डे'' का सिद्धान्त प्राचीन काल से चला आ रहा है। जिस पर आज भी अनेक शोधात्मक कार्य चल रहे है, यह सिद्धान्त बतलाता है कि मानव शरीर सहित ब्रह्माण्ड में सभी वस्तुएं पांच मूलतत्त्वों (पंचमहाभूत्तों) अर्थात् पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश से बनी है। सौर जगत में सूर्य चन्द्रादि ग्रहों की विभिन्न गति - विधियों एवं क्रियाकलापों में जो नियम काम करते हैं, ठीक वही नियम प्राणी मात्र के शरीर में स्थित सौर जगत की इकाई का संचालन करते है। हमारे शरीर में कोशाणु बन्धुता नियम (लां आंफ एफीनिटी) के अनुसार दलबद्ध होकर शरीर की ऊतकें (टिश्यूज) और उनके द्वारा अंग बनते है। जिसके परस्पर मिलने से हमारा स्थूल शरीर बन जाता है। हमारे शरीर एवं मन में उत्पन्न होने वाले विकार, जिनसे हमें किसी भी प्रकार का शारीरिक एवं मानसिक दुःख मिलता है, उसको रोग कहते है।

इस इकाई में आप चिकित्सा ज्योतिष में ग्रहयोगों से बनने वाले विविध व्याधि योगों के अन्तर्गत गुदा रोगों का अध्ययन करेंगे तथा विशेष रूप से रोगों के मूल कारणों को समझ सकेगे।

४.२ उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप शरीर के अधो अंग रोगाधिकार के अर्न्तगत गुदा से सम्बन्धित रोगों को समझने में सक्षम हो सकेंगे कि -

१. गुदारोगों के कारकत्व को कैसे समझा जा सकता है।

२. गुदा में होने वाले रोग कौन -कौन से है।

३. गुदा का शरीर में क्या कार्य है।

४. राशि एवं ग्रहों से गुदा सम्बन्धित रोगोत्त्पति को जान सकेंगे।

५. ग्रहों के अनुसार गुदारोगों के योगों को समझ सकेंगे।

६. कौन - कौन से ग्रह गुदा रोगोत्पति. के कारण है ।

४.३ गुदारोग

जीवों के पाचन तन्त्र के अन्तिम छोर के द्वार (छेद) को गुदा ;दनेध्द्ध कहते है। इसका कार्य मल निष्कासन या नियन्त्रण करना है। स्थूलांत्र से सम्बन्धित साढ़े चार अंगुल परिमित भाग को गुदा कहते है। इसमें तीन वलियां आधे-आधे अंगुल के अन्तर से स्थित है। इन वल्लियों के नाम प्रवाहणी, विसर्जनी और संवरणी हैं। प्रवाहिणी पुरीष का प्रवाहण करती है, उसे निकालने का प्रयत्न करती है, विसर्जनी उसे त्यागती है, संवरणी उसे रोकती है। यदि पुरीष नहीं ही रूकता तो गुदौष्ठ तब तक रोकता है, जब तक पुरीषोत्सर्गार्थ बैठा जाता है। अतः गुदा का कार्य मल (पुरीष) निष्कासन या नियन्त्रण करना है।

तत्रस्थूलान्त्रप्रतिबद्धमर्धपंचागुलं गुदमाहुः, तस्मिन् वलयस्तिस्रोऽध्यर्धागुंलान्तारसंभूताप्रवाहणी विसर्जनी संवरणी चेति च तुरङ्गुलायताः, सर्वातिर्यगेकांगुलोच्छ्रिताः ।।

गुदा के रोगों में अर्श बवासीर , भगन्दर, गुदा के फोड़े, गुदा में घाव होना, सूजन आना, गुदा कैंसर या गुदा विदर आदि रोग गुदा रोग कहलाते है। इस इकाई में आप गुदा के रोगों को समझ पायेगें। शरीर के अधोभाग नाभि के नीचे शरीरावयवों मे वायु का विशेषरूप से आश्रय है। इसलिए त्रिदोषों में वात को जानना बहुत ही आवश्यक है। क्योंकि मल (पुरीष) का निष्कासन या नियन्त्रण गुदा का कार्य है। अतः वायु का स्थान पक्वाधान (पक्वाशय - बृहदंत्र) और गुदा है। पक्वाधान - मलाशय और गुदा वायु का प्रधान स्थान है, अर्थात् उनमें विकार उत्पन्न होने पर ही वायु के विकार उत्पन्न होते हैं और उनके शुद्ध रहने पर वायु भी शुद्ध - शान्त रहता है। शरीर के अन्दर गति करती हुई वायु के लक्षणों को आयुर्वेद के अनुसार समझा जा सकता है। परन्तु इससे पूर्व शरीर के निर्माण के विषय में जानना अत्यावश्यक है।

४.३.१ आयुर्वेद के अनुसार शरीर का निर्माण

विश्व की सबसे प्राचीन चिकित्सा प्रणाली आयुर्वेद है। आयुर्वेद शब्द दो संस्कृत शब्दों आयुष और वेद से मिलकर बना है। जिसका शाब्दिक अर्थ है जीवन का विज्ञान या जीवन से सम्बन्धित ज्ञान। वस्तुतः आयुर्वेद विज्ञान कला और दर्शन का मिश्रण है। जिसका सम्बन्ध मानव शरीर को निरोग रखने तथा रोग हो जाने पर रोगमुक्त करने एवं आयु बढ़ाने से है। चरक संहिता में कहा गया है। --

हिताहितं सुखं दुःखमायुस्तस्य हिताहितम्।

मानं च तच्च यत्रोक्तमायुर्वेदः स उच्यते ।

आयुर्वेद के अनुसार मानव शरीर चार मूलतत्वों से निर्मित है जैसा कि सुश्रुत संहिता में कहा गया है –''दोषधातुमलमूलं हि शरीरम्'' अर्थात् दोष, धातु एवं मल तीनों पर शरीर आधारित है। जिसको निम्नलिखित प्रकार से जाना जा सकता है।

पंचमहाभूत	दोष	धातु	मल
पृथ्वी		रस	मल
जल	कफ	रक्त	मूत्र
तेज	पित	मांस	पसीना
वायु	वात	मेदस्	
आकाश		अस्थि	
		मज्जा	
		शुक्र	

शरीर पांच मूलतत्वों (पंचमहाभूत्तों) अर्थात् पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश के सन्दर्भ में पूर्व में विवेचन कर चुके है। इन पंचमहाभूतों में विकार उत्पन्न होने से मनुष्य रोगी बन जाता है। अग्रिम दोष, धातु और मल के बारे में आयुर्वेद और ज्योतिष दोनों के अनुसार समझने का प्रयास करेंगे।

दोष -- वात, पित एवं कफ ये तीन दोष कहलाते है। जब इनमें विकार उत्पन्न होता है, तब शरीर को रोगी या शरीर में रोग उत्पन्न करते है और जब ये अविकृत या विकार रहित रहते है तब शरीर को बढ़ाते है। वात, पित और कफ को दोष तो कहते ही हैं, धातु एवं मल भी कहते हैं, दोष इसलिए कहते हैं क्योंकि इनके द्वारा रस आदि धातु एवं पुरीष आदि मल दूषित या विकृत हो जाते है। -

धातवश्च मलाश्चापि दुष्यन्त्येभिर्यतस्ततः:

वातपितकफा एते त्रयो दोषा इति स्मृता ।।

यद्यपि ये समस्त शरीर में व्याप्त है, तथापि हृदय के उपरि भाग के शरीरावयवों में कफ का, हृदय एवं नाभि के मध्य भाग के शरीरावयवों में पित का और

नाभि के नीचे शरीरावयवों मे वायु का विशेषरूप से आश्रय है। भावप्रकाश में कहा गया है। --

वायुः पितं कफश्चेति त्रयो दोषाः समासतः।

विकृताविकृता देहं घ्नन्ति संवर्द्धयन्ति च।।

ते व्यापिन्नोऽपि हृन्नाभ्योरधोमध्योर्ध्वसंश्रयाः।

४.३.२ वातदोष के पांच भेद

वात, कफ एवं पित - ये तीन शारीरिक दोष माने गये हैं। इन दोषों की उत्पति पंवमहाभूतों से मानी गयी है। सृष्टि में व्याप्त वायु एवं आकाश महाभूतों से शरीरगत वात दोष की उत्पति होती है, अग्नि से पित दोष तथा जल एवं पृथ्वी महाभूतों से कफदोष की उत्पति होती है। यद्यपि शरीर के लिए दोष, धातु एवं मल तीनों प्रधान द्रव्य है। परन्तु शारीरिक क्रिया के लिए वातादि दोषों के अधिक क्रियाशील होने से शरीर में दोषवर्ग की प्रधानता रहती है। तीनों दोषों में सर्वप्रथम वातदोष ही प्रकुपित होता है और अन्य दोष एवं धातु को दूषितकर रोग उत्पन्न करता है। वातदोष प्राकृतरूप से प्राणियों का प्राण माना गया है। यद्यपि वायु एक ही है तथापि नाम स्थान तथा कर्म के भेद से पांच प्रकार का माना जाता है। यथा - प्राण, उदान, समान, व्यान और अपान। स्वस्थ अवस्था में ये पांचों शरीर को धारण करती हैं।

प्राणोदानौ समानश्च व्यानश्चापान एव च।

स्थानस्था मारूताः पंच यापयन्ति शरीरिणम्।।

सुश्रुतसंहिता निदानस्थानम् अ.१ श्लो. १३

१. प्राण वायु - जो वायु वक्त्र (मुख, उर, कण्ठ) में संचरण करती है, उसका नाम प्राण है। यह प्राण शरीर को धारण करता है, जीवन प्रदान करती है और जीव को जीवित रखती है। भोजन को शरीर के अन्दर प्रविष्ट करती है। जब यह वायु कुपित होती है तो हिचकी, श्वास-प्रतिश्याय आदि इन अंगों से सम्बन्धित रोगों को उत्पन्न करती है।

यो वायुर्वक्त्रसंचारी स प्राणो नाम देहधृक्।

सोऽन्नं प्रवेशयत्यन्तः प्राणांश्चाप्यवलम्बते।।

प्रायशः कुरूते दुष्टो हिक्काश्वासादिकान् गदान्।।

२. उदान वायु - जो श्रेष्ठ वायु ऊपर को जाती है उसका नाम उदान है। इसके स्थान - नाभि, उर और कण्ठ है। इसी वायु की शक्ति से मनुष्य का स्वर निकालता है, बोलता है, गीत गाता है तथा निम्न, मध्यम और उच्च स्वर में बात करता है। यह वायु नेत्र, मुख, नासिका, कान एवं शिर के रोगों को तथा कामला आदि रोगों को उत्पन्न करती है।

उदानो नाम यस्तूर्ध्वमुपैति पवनोतमः।।

तेन भाषितगीतादिविशेषोऽभिप्रवर्तते।

ऊर्ध्वजत्रुगतान् रोगान् करोति च विशेषतः।।

३. समान वायु - यह वायु पच्यमान आहार के आश्रय स्थान आमाशय में, जठराग्नि से संगत रहती है। इसका प्रभाव - अधिकार पाचन क्रिया पर है। यह समान वायु अन्न का पचन करती है, तथा अन्न से उत्पन्न होने वाले - रस, दोष, मूत्र, मलों को पृथक करती है और विकृत होने पर - गुल्म, (मन्दाग्नि) अग्निसाद, अतिसार आदि रोगों को उत्पन्न करती है।

आमपक्वाशयचरः समानो वह्निसंगतः।

सोऽन्नं पचति तज्जांश्च विशेषान्विविनक्ति हि।।

गुल्माग्निसादातीसारप्रभृतीन् कुरूते गदान्।

४. व्यान वायु - यह वायु सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त है, तथा रसादि को प्रेरित करती है। इसी वायु के प्रभाव से रस, रक्त तथा अन्य जीवनोपयोगी तत्व सारे शरीर में बहते रहते हैं। स्वेद एवं रक्त का विस्रावण करती है। शरीर के समस्त कार्यकलाप और कार्य करने की चेष्टायें बिना व्यान वायु के सम्पन्न नहीं हो सकती हैं। जब यह कुपित होती है तो सर्वशरीर व्यापी ज्वर, अतिसार, अपतन्त्रक आदि सर्वशरीर व्यापी रोगों को उत्पन्न करती है।

कृत्सनदेहचरो व्यानो रससंवहनोद्यतः।।

स्वेदासृक्स्रावणश्चापि पंचधा चेष्टयत्यपि।

क्रुद्धश्च कुरूते रोगान् प्रायशः सर्वदेहगान्।।

५. अपान वायु - जो अपान नामक वायु है उसका स्थान पक्वाशय है। यह वायु उचित समय पर पुरीष-मूत्र-शुक्र-गर्भ एवं आर्तव को नीचे की ओर

खींचती है। जब यह कुपित होती है, तो वस्ति आश्रित (अश्मरी एवं मूत्रस्थली जनित रोगों) एवं गुदा से सम्बन्धित (बवासीर एवं भगन्दरादि) भंयकर रोगों को उत्पन्न करती है ।

पक्वाधानालयोऽपानः काले कर्षति चाप्यधः।

समीरणः शकृन्मूत्रं शुक्रगर्भार्तवानि च।।

क्रुद्धश्च कुरूते रोगान् घोरान् वस्तिगुदाश्रयान्।।

इस प्रकार पितदोष एवं कफदोष भी पांच प्रकार का है। जिसका वर्णन अग्रिम इकाई में किया जायेगा। इस इकाई में पक्वाधान - मलाशय और गुदा वायु का प्रदान स्थान होने के कारण वातदोष की प्रसंगवश चर्चा की गई है।

४.३.३ गुदा रोग के कारक ग्रह और भाव

ज्योतिषशास्त्र में अष्टमराशि, अष्टमभाव तथा वायुतत्वात्मक शनिग्रह को गुदा का कारक माना गया है। अष्टमराशि वृश्चिकराशि का अधिकार क्षेत्र गर्भाशय, जननेन्द्रिय एवं गुदा है। मल एवं मूत्र उत्सर्जन प्रणाली वस्ति एवं गुदामार्ग का निचला हिस्सा वृश्चिकराशि का अधिकार क्षेत्र माना जाता है तथा वृश्चिक राशि गुप्तरोग, अर्श, भगन्दर, उपदंश, शूक एवं संसर्गजन्य रोगों की कारक है। भावों में अष्टमभाव को गुप्तांग, गर्भाशय, जननेन्द्रिय एवं गुदारोग का कारक माना गया है। ग्रहों में वायुतत्वात्मक शनि को गुदारोग का कारक माना गया है। यदि शनि पापयुक्त एवं पापदृष्ट हो, अथवा त्रिकभाव षष्ठ, अष्टम एवं द्वादश में स्थित हो, तो उस जातक को गुदा सम्बन्धित रोग होने की पूर्ण आशंका रहती है। गुदा सम्बन्धी रोगों में मंगल एवं राहु आदि पापग्रहों की भी अहम भूमिका होती है। गुदा रोगों के जितने भी योग देखे गए है, उनमें शनि, राहु एवं मंगल का स्थान अवश्य होता है। ज्योतिष शास्त्र में ग्रहों को रोगकारक बनाने वाले निम्नलिखित हेतु बतलाये गये है।

१. रोगभाव का प्रतिनिधित्व।

२. अष्टम एवं व्ययभाव का प्रतिनिधित्व।

३. रोगभाव में स्थिति।

४. लग्न में स्थिति या लग्नेश होना।

५. नीचराशि, शत्रुराशि में स्थिति या निर्बलता।

६. अवरोहीपन्न।

७. क्रूरषष्ठयंश में स्थिति।

८. पापग्रहों से प्रभावित होना।

६. अरिष्टकारकत्व या मारकत्व।

४.४ मुख्य खण्ड विषय गुदारोग में अर्श रोग के योग

पांचो प्रकार की वायु (प्राण, उदान, समान, व्यान और अपान) पित एवं कफ के साथ मिलकर अर्शरोग उत्पन्न करती है। -

पंचात्मा मारूतः पितं कफो गुदवलित्रयम्।

सर्व्व एव प्रकुप्यन्ति गुदजानां समुद्भवे।।

मलाशय के नीचे त्रिवलिमय अवयव का नाम गुद है, उसका निम्नभाग ‘‘गुदौष्ठ’’(गुद का ओंठ) कहलाता है, यह पुरीषोत्सर्ग का मार्ग है, इसमें मांसमय अंकुर-मस्से उत्पन्न हो जाते है, जो अर्श कहे जाते है। इसे ‘‘बवासीर’’ भी कहते है। ये गुदौष्ठ पर भी होते हैं, जो सर्वदा बाहर ही वर्तमान रहते है। यह अंकुर एक भी और एकाधिक भी होते हैं। अर्शांसि अधिमांसविकाराः अर्थात् ये अर्श मांस के मस्से हैं। मांस में अधिष्ठित विकार है। अर्शरोग में वायु की प्रधानता होने के कारण छेः प्रकार का होता है। वातजन्य, पितजन्य, कफजन्य, रक्तजन्य, सन्निपातजन्य और सहज। परन्तु विधि भेद से अर्शरोग दो प्रकार का होता है। सहज एवं आगन्तुक। सहज एवं आगन्तुक रोगों की व्याख्या आप पूर्व इकाई में जान गये होंगे। पुनः अर्शरोग दो प्रकार है।

१. शुष्कार्श - वातज एवं कफज । (वादी बवासीर)

२. आद्रार्श - पितज एवं रक्तज ।। (खूनी बवासीर)

इस रोग के ज्योतिषीय ग्रहयोगों का जातक ग्रन्थों में विस्तार से विचार किया गया है जो कि आप निम्नलिखित योगों से समझ पायेगें।

१. व्यय स्थान में स्थित शनि पर पापग्रह की दृष्टि हों, तो अर्श रोग होता है।

२. यदि लग्न में शनि तथा सप्तम स्थान में मंगल हो, तो बवासीर रोग होता है।

३. यदि अष्टमेश क्रूरग्रह होता हुआ सप्तम स्थान में बैठा हो और उस पर शुभग्रह की दृष्टि न हो तो जातक बवासीर रोग से पीड़ित होता है।

निम्नलिखित कर्क लग्न की कुण्ड़ली में अष्टमेश शनि सप्तमस्थ है। और शुभग्रह से दृष्ट नहीं है, परन्तु शुक्र के साथ है। चन्द्र कुण्ड़ली के अनुसार षष्ठेश शनि षष्ठ स्थान में सप्तम स्थान में पापग्रह केतु भी शूभग्रह की दृष्टि से हीन है। इस योग के कारण जातक को बवासीर रोग हुआ। परन्तु शुभग्रह अर्थात् शुक्र से युक्त होने के कारण विशेष कष्टकारी नही हुआ। यह कुण्ड़ली ज्योतिष - रत्नाकर में कुण्ड़ली नं. ८४ है। जो कि पृष्ठसंख्या १०३४ में दी है।

४. वृश्चिकराशि में सप्तम स्थान में शनि हो तथा नवमस्थान में मंगल हो और जातक का जन्म दिन के समय में हों, तो जातक अर्श रोगी होता है।

५. व्ययस्थान में शनि हो तथा सप्तम स्थान में लग्नेश एवं मंगल हो।

६. व्ययस्थान में स्थित शनि पर लग्नेश एवं मंगल की दृष्टि हो।

७. सप्तम में मंगल लग्न में शनि हो। तो अर्श रोग होता है।

८. यदि सप्तम स्थान शनि हो और दिन के समय का जन्म हो तो अर्श रोग होता है।

इस कुण्डली में सप्तम स्थान में शनि चन्द्र की युति है, षष्ठेश बुध सप्तमेश शुक्र के साथ एकादशभाव में अपनी नीचराशि मीनराशि में है।

चन्द्र कुण्ड़ली के अनुसार लग्न में शनि तथा सप्तम में मंगल है अष्टमेश शुक्र नीचराशिस्थ बुध के साथ पंचमस्थान में है तथा षष्ठेश गुरू बुध की राशि में होने से अष्टमेश शुक्र से दृष्टि सम्बन्ध बना रहा है। अतः इस कुण्डली में सप्तम स्थान में शनि तथा चन्द्र कुण्डली के अनुसार लग्न में शनि और सप्तम में मंगल अर्श रोग कारक है अतः जातक अर्श रोग से पीड़ित हुआ।

९. लग्नेश एवं मंगल एक साथ हो। तो अर्श रोग होता है।

१०. वृश्चिक राशि में लग्न में मंगल हो और उस पर गुरू या शुक्र की दृष्टि न हो।

११. जन्म से पूर्व पूर्णिमा या अमावस्या के अवसान में लग्न हो, उसमें जन्म हो और उसमें चन्द्रमा या सूर्य मंगल के साथ हो। तो अर्श रोग होता है।

१२. यदि लग्नेश, मंगल एवं बुध तीनों षष्ठ, अष्टम अथवा द्वादश राशिगत हों, अथवा किसी एक राशि में हों, और षष्ठभाव को देखते हो, तो गुह्य तथा बवासीर आदि रोग होता है।

१३. यदि शनि द्वादश स्थान में हों और उसके साथ लग्नेश तथा मंगल हो अथवा लग्नेश एवं मंगल की दृष्टि शनि पर पड़ती हो तो जातक को बवासीर रोग होता है।

१४. यदि लग्न में शनि हो, सप्तम स्थान में मंगल वृश्चिक राशिगत हो और लग्न पर बृहस्पति की दृष्टि न पड़ती हो, तो अर्श रोग होता है।

१५. यदि लग्नेश पर मंगल की दृष्टि हो तो बवासीर रोग होता है।

१६. मंगल यदि वृश्चिक राशिगत होकर नवम स्थान में हो तो अर्श रोग होता है।

१७. सप्तम में मंगल लग्न में शनि हो। तो अर्श रोग होता है।

१८. लग्न में शनि हो तथा लग्नेश पापाक्रान्त हो तो अर्शरोग होता है।

१६. यदि चन्द्रमा षष्ठ अथवा अष्टम स्थान में हों और उस पर मंगल की दृष्टि पड़ती हो तथा शनि लग्न में हो तो बवासीर रोग होता है।

कुण्डली में अष्टमेश शनि लग्नस्थ होकर व्ययेश शुक्र तथा सप्तमेश गुरू एवं राहु से दृष्ट है।

चन्द्र कुण्डली के अनुसार षष्ठेश बुध एवं अष्टमेश सूर्य की एकादश भाव में युति है तथा षष्ठ एवं अष्टम भाव पर शनि एवं केतु की स्थिति है। चन्द्र कुण्ड़ली से अष्टमभाव पर शनि, मंगल तथा राहु की दृष्टि बवासीर रोग का कारण बनी। जिसके कारण जातक बवासीर रोग से पीड़ित हुआ।

विभिन्न लग्नों में यदि निम्न योग बनते हो तो बवासीर का रोग होने की सम्भावना बनती है।

१. मेष लग्न - मेष लग्न मे शनि द्वादश भाव में, मंगल षष्ठभाव में, तथा बुध अष्टम भाव में हो तो अर्श रोग होता है।

२. वृष लग्न - वृष लग्न में बृहस्पति चतुर्थ भाव में, शनि दशमभाव में, मंगल सप्तमभाव में तथा शुक्र अष्टमभाव में हो तो जातक को बवासीर से कष्ट होता है।

३. मिथुन लग्न - गुरू एवं शनि की युति अष्टम भाव में हो, बुध और मंगल की युति चतुर्थ भाव में हो, तो जातक को अर्श रोग होता है।

४. कर्क लग्न - शनि दशम भाव में, मंगल पंचमभाव में, बुध अष्टमभाव तथा चन्द्र एवं शुक्र की युति अष्टमभाव में हो तो गुदा से सम्बन्धित रोग होता है।

५. सिंह लग्न - लग्न में शनि, सप्तमभाव में बुध एवं मंगल की युति, षष्ठभाव में सूर्य एवं अष्टमभाव में शुक्र हो तो जातक को बवासीर रोग होता है।

६. कन्या लग्न - अष्टमभाव में चन्द्र मंगल की युति हो, तृतीयभाव में शनि एवं द्वादशभाव में बुध हो तो तो जातक को बवासीर का रोग होता है।

७. तुला लग्न - अष्टमभाव में बृहस्पति, सप्तमभाव में शनि लग्नेश एवं मंगल की युति, तृतीयभाव में चन्द्रमा हो तो जातक को गुदा रोग से पीड़ा होती है।

८. वृश्चिक लग्न - द्वितीय स्थान में मंगल, अष्टमभाव में शनि-बुध की युति तथा द्वादश स्थान में बृहस्पति हो तो जातक को गुदा सम्बन्धी रोग होता है।

९. धनु लग्न - लग्न में शुक्र, अष्टम स्थान में मंगल, पंचमभाव में गुरू तथा एकादश स्थान में शनि हो तो जातक को गुदा रोग होता है।

१०. मकर लग्न - लग्न में बृहस्पति, अष्टमभाव में बुध एवं शनि की युति, पंचमभाव में मंगल हो तो जातक को अर्श रोग होता है।

११. कुम्भ लग्न - एकादश स्थान में शनि हो, पंचम भाव में मंगल तथा अष्टमभाव में बृहस्पति एवं चन्द्रमा हो तो जातक को गुदा सम्बन्धी रोग होता है।

१२. मीन लग्न - शनि अष्टमभाव में बुध के साथ युत हो, मंगल एवं शुक्र पंचमभाव में हो और एकादश स्थान में बृहस्पति हो तो जातक को गुदा रोग से कष्ट होता है।

४.४.१ गुदारोग में भगन्दर रोग के योग -

वात, पित, कफ, सन्निपात एवं आगन्तुज कारणों से क्रमशः पांच प्रकार के भगन्दर उत्पन्न होते है। यथा - शतपोनक, उष्ट्रग्रीव, परिस्राविं, शम्बूकावर्त और उन्मार्गि। ये भग स्थान, गुदा और वस्ति स्थान को धारण करते हैं। इसलिए इन्हें भगन्दर कहते है। भगन्दर रोग में गुदा के अन्दर और बाहर नली में घाव या फोड़े हो जाते है। जब इन फोड़े या घाव से फटने के कारण खून या पाक बहने लगता है। तो खून या पाक बहने के कारण इनका नाम भगन्दर है या गुदा के पास गांठ, जलन होने को भगन्दर कहते है। ज्योतिष शास्त्र के अनुसार यह रोग निम्नलिखित ग्रहयोग के कारण होता है। -

१. यदि लग्न में शनि पापग्रह से युत हो तथा षष्ठस्थान में मंगल बैठा हो तो भगन्दर रोग का भय होता है।

२. यदि बृहस्पति षष्ठेश और अष्टमेश के साथ सप्तम अथवा अष्टम स्थान में हो तो अर्श एवं भगन्दरादि रोग होते है।

३. यदि लग्नाधिपति और मंगल, कन्याराशिगत हों, तथा बुध के साथ हों अथवा बुध की उन पर दृष्टि पड़ती हो तो भगन्दरादि रोग होते है।

४. यदि षष्ठेश, लग्न में शुभग्रह से दृष्ट न हो और अष्टम स्थान में राहु बैठा हो और तो जातक गुदा, प्रमेह, भगन्दरादि रोग से पीड़ित होता है। देखिए कुण्ड़ली आदिगुरू शंकराचार्य की।

कुण्डली में षष्ठेश बृहस्पति लग्नगत है। चतुर्थभाव में अष्टमेश शनि बैठा है, जो बृहस्पति को पूर्ण दृष्टि से देख रहा है। अष्टमभाव में राहु बैठा है। शनि की गुरू पर दृष्टि होने से बृहस्पति पापदृष्ट है। अनुमान किया जा सकता है कि भगन्दर इसी कारण हुआ। वैद्यक शास्त्र में भगंदर को व्रण रोग का एक विशेष भेद बतलाया है।

५. अष्टमस्थान में शनि हो तो जातक कुष्ठ, भगन्दरादि राकगों से पीड़ित होता है।

कुष्ठभगन्दररोगैरभितप्तं हस्तजीवितं निधने।

सर्वारम्भविहीनं जनयति रविजः सदा पुरूषम्।।

६. यदि कर्कराशिगत सूर्य पर यदि मंगल की दृष्टि हो, तो जातक भगन्दर, सूजन आदि रोगों से पीड़ित होता है।

७. यदि द्वितीयभाव पर सूर्य की दृष्टि हो, तो जातक भगन्दर रोग से पीड़ित होता है।

८. द्वितीयभाव पर मंगल की दृष्टि हो।

९. अष्टम स्थान में धनुराशि हो।

१०. अष्टम स्थान में केतु हो।

११. अष्टम स्थान को सूर्य देखता हो।

१२. सप्तम स्थान में सूर्य, मंगल एवं शनि हो तो भगन्दर, वातशूल एवं अर्शरोग होते है।

१३. अष्टम स्थान में मंगल के साथ चन्द्रमा हो तो भगन्दर, अर्श एवं कुष्ठरोग होते है।

१४. अष्टम स्थान में शनि हो तो कुष्ठ एवं भगन्दर,ादि रोग होते है।

४.४.२ गुदा के अन्य रोगों के योग -

गुदा मार्ग में घाव, सूजनादि होना गुदा के अन्य रोग होते हैं। ये रोग निम्नलिखित ग्रह योगों के प्रभाववश होते है। -

लग्नेशभूपुत्राशशांकपुत्राः सह स्थिताः सौम्यतरान्यभावाः।

अपानरोगं त्वथवाऽपवित्रं पश्यन्ति षष्ठं मुनयो वदन्ति।।

१. यदि लग्नेश मंगल और बुध एक साथ केन्द्र त्रिकोण के अलावा अन्य भाव में हों, तो जातक गुदा रोग से पीड़ित होता है।

२. पापाक्रान्त लग्नेश मंगल और बुध षष्ठ भाव को देखते हों, तो जातक गुदा रोग से पीड़ित होता है।

३. यदि पापग्रह से युक्त षष्ठेश अष्टमभावगत हो तो जातक गुदा रोग से पीड़ित होता है।

४. मंगल या बुध की राशि में स्थित लग्नेश को उसका शत्रु देखता हो तो जातक गुदा रोग से पीड़ित होता है।

५. मंगल, बुध एवं लग्नेश सिंह राशि में चतुर्थ या द्वादश स्थान में हो तो जातक गुदा रोग से पीड़ित होता है।

६. षष्ठ स्थान में बुध हो तथा षष्ठेश पापग्रहों से युत दृष्ट हो तो श्लेष्मा एवं वायु विकार से उत्पन्न रोग होते है।

७. व्यय स्थान में चन्द्रमा एवं गुरू तथा त्रिक स्थान में बुध हो तो गुदा में घाव होते है।

४.५ सारांश

इस इकाई में आप ज्योतिषशास्त्र के विविध व्याधि योगों के अन्तर्गत ''अधो अंग रोगाधिकार'' में गुदारोग नामक शीर्षक से गुदा के रोगों में अर्श ;च्पसमेद्ध बवासीर , भगन्दर, ;च्पसमेद्ध गुदा के फोड़े, गुदा में घाव होना, सूजन आना, गुदा कैंसर या गुदा विदर आदि रोगों का अवलोकन करेंगे। जीवों के पाचन तन्त्र के अन्तिम छोर के द्वार (छेद) को गुदा ;दनेद्ध कहते है। इसका कार्य मल निष्कासन या नियन्त्रण करना है। स्थूलांत्र से सम्बन्धित साढ़े चार अंगुल परिमित भाग को गुदा कहते है। मलाशय और गुदा वायु का प्रदान स्थान होने के कारण पंचमहाभूतों में वातदोष कारक शनिग्रह को ज्योतिष शास्त्र में गुदा का कारक माना गया है। ज्योतिषशास्त्र में अष्टमभाव तथा अष्टमराशि वृश्चिकराशि का अधिकार क्षेत्र गर्भाशय, जननेन्द्रिय एवं गुदा है। मल एवं मूत्र उत्सर्जन प्रणाली वस्ति एवं गुदामार्ग का निचला हिस्सा वृश्चिकराशि का अधिकार क्षेत्र माना जाता है। यदि शनि पापयुक्त एवं पापदृष्ट हो, अथवा त्रिकभाव षष्ठ, अष्टम एवं द्वादश में स्थित हो, तो उस जातक को गुदा सम्बन्धित रोग होने की पूर्ण आशंका रहती है। गुदा सम्बन्धी रोगों में गुरू, मंगल एवं राहु आदि पापग्रहों की भी अहम भूमिका होती है। गुदा रोगों के जितने भी योग देखे गए है, उनमें शनि, राहु एवं मंगल का स्थान अवश्य होता है। वायु विकार से उत्पन्न समस्त रोगों को वातरोग कहा जाता है। इन रोगों का शनि से अतिरिक्त गुरू से भी विचार किया जाता है। जब गुरू अनिष्ट स्थान में होता है। तो भगन्दरादि गुदा के अनिष्ट रोग उत्पन्न होते है। इस प्रकार ज्योतिषशास्त्र में ग्रह, राशि एवं भाव की युति, दृष्टि एवं सम्बन्ध होने पर शुभाशुभयोग का परिणाम बनता हुआ दिखाई देता है। ज्योतिषशास्त्र के अनुसार प्रत्येक ग्रह के शुभ और अशुभ दोनों ही प्रभाव मानव जीवन पर पड़ते हैं। जैसे प्रत्येक वरदान के पीछे कोई न कोई शाप भी छुपा होता है वैसे

ही प्रत्येक ग्रह की अच्छाईयों के पीछे कोई न कोई समस्या अवश्य छुपी रहती है। इसलिए जन्मकुण्डली एवं प्रश्नकुण्डली के आधार पर शरीर के विविध रोगों का ग्रहयोगों के आधार पर विचार एवं निर्णय किया जाता है। आप इस इकाई के अध्ययन से आयुर्वेद के अनुसार गुदा के रोगों के कारणों एवं लक्षणों को जानकर ज्योतिषशास्त्र के अनुसार ग्रह, राशि एवं भावों के आधार पर बनने वाले गुदारोग कारक योगों से रोग का निर्णय करने मे सक्षम होगें।

४.६अभ्यास प्रश्न

१. ज्योतिषशास्त्र के अनुसार शनिग्रह किस तत्व का कारक है।

(क) अग्नि (ख) जल (ग) वायु (घ) भूमि

२. कौन सी राशि जलतत्व की कारक है ?

(क) तुला (ख) वृश्चिक (ग) कन्या (घ) सिंह

३. पितदोष कारक कौन सा ग्रह है ?

(क) मंगल (ख) चन्द्रमा (ग) राहु (घ) बुध

४. गुदा का कारक कौन सा ग्रह है।

(क) शनि (ख) चन्द्रमा (ग) शुक्र (घ) बुध

५. कौन से भाव से गुदा का विचार किया जाता है?

(क) पंचम (ख) चतुर्थ (ग) षष्ठ (घ) अष्टम

६. वातरोग का कारक कौन सा ग्रह है ?

(क) मंगल (ख) चन्द्रमा (ग) शुक्र (घ) गुरू

७. व्यय स्थान में चन्द्रमा एवं गुरू तथा त्रिक स्थान में बुध हो तो कौन सा रोग होता है ?

(क) अर्शरोग (ख) कुष्ठरोग (ग) गुदा में घाव (घ) उपदंश

८. यदि लग्न में शनि तथा सप्तम स्थान में मंगल हो, तो कौन सा रोग होता है?

(क) वस्ति (ख) मूत्ररोग (ग) भगन्दर (घ) बवासीर

९. संक्रमण कारक कौन सा ग्रह है ?

(क) सूर्य (ख) केतु (ग) चन्द्र (घ) गुरू

१०. इनमें से भगन्दर रोग का कारक ग्रह कौन सा है।

(क) चन्द्र (ख) राहु (ग) शुक्र (घ) बुध

११. अपानरोग से क्या तात्पर्य है?

(क) गुदारोग (ख) मूत्ररोग (ग) चर्मरोग (घ) कुष्ठरोग

४.७ पारिभाषिक शब्दावली

गुदारोग - जीवों के पाचन तन्त्र के अन्तिम छोर के द्वार (छेद) को गुदा ;दनेध्द्ध कहते है। उसमें होने वाले अर्श, भगन्दर आदि रोगों को गुदा रोग कहते है।

अर्शरोग - बवासीर (गुदा स्थान में मांस में अधिष्ठित विकार है)

अपानरोग - गुदा में होने वाले रोग को अपानरोग कहते है।

पंचमहाभूत - भूमि, जल, तेज, वायु और आकाश ।

पांच वायु - प्राण, उदान, समान, व्यान और अपान

दृष्टनिमितजन्य रोग - जिन रोगों का कारण प्रत्यक्षरूप से जाना जा सकता है,

आयुर्वेद - जीवन का विज्ञान या जीवन से सम्बन्धित ज्ञान।

दाद - फंगल संक्रमण

त्रिक स्थान - कुण्ड़ली का षष्ठ, अष्टम एवं द्वादश भाव।

४.८ अभ्यास प्रश्नों के उतर

१. (ग) वायुतत्व

२. (ख) वृश्चिकराशि

३. (क) मंगल

४. (क) शनि

५. (घ) अष्टम

६. (घ) गुरू

७. (ग) गुदा में घाव

८. (घ) बवासीर

६. (ख) केतु

१०. (ख) राहु

११. (क) गुदारोग

४.६ संदर्भ ग्रन्थ सूची

ग्रन्थ नाम प्रकाशन

१. जातकपारिजातः चौखम्भा सुरभारती वाराणासी
२. सारावली रंजन पब्लिकेशन्स नई दिल्ली - २
३. बृहत्पाराशरहोराशास्त्रम् चौखम्भा सुरभारती वाराणासी
४. फलदीपिका मोतीलाल बनारसीदास नई दिल्ली
५. प्रश्न मार्ग रंजन पब्लिकेशन्स नई दिल्ली - २
६. ज्योतिष पीयूष श्री वेदमाता गायत्री ट्रस्ट शान्तिकुंज हरिद्वार (उतराखण्ड) २४६४११
७. सुश्रुतसंहिता मोतीलाल बनारसीदास नई दिल्ली
८. भावप्रकाशः मोतीलाल बनारसीदास नई दिल्ली
६. चरक संहिता मोतीलाल बनारसीदास नई दिल्ली
१०. ज्योतिषशास्त्र में रोग विचार मोतीलाल बनारसीदास नई दिल्ली
११. ज्योतिष-रतनाकर मोतीलाल बनारसीदास नई दिल्ली

४.१० निबन्धात्मक प्रश्न

१. गुदा रोग किन -किन ग्रहयोगों के कारण होते है ?
२. ज्योतिष शास्त्र के अनुसार गुदारोग कारक राशि एवं भाव का वर्णन करें
३. भगन्दर रोग का ज्योतिषशास्त्र के अनुसार विवेचन करें ?
४. बवासीर रोगकारक ग्रहयोगों का वर्णन करें?

इकाई - ५ गुप्त रोग

इकाई की संरचना

५.१ प्रस्तावना
५.२ उद्देश्य
५.३ मुख्य भाग गुप्त रोग
५.३.१ रोगोत्पति एवं पीड़ित अंगो का अनुमान
५.३.२गुप्त रोग के कारक ग्रह और भाव
५.४ गुप्तरोग के योग
५.४.१ वीर्यरोग
५.४.२ नपुंसकता के योग
५.४.३ स्त्रीरोग तथा वन्ध्यात्व के योग
५.४..४ बृद्धि-उपदंश शूक आदि लिंग रोग
५.५ सारांश
५.६ अभ्यास प्रश्न
५.७ पारिभाषिक शब्दावली
५.८ अभ्यास प्रश्नो के उतर
५.९ संदर्भ ग्रन्थ सूची
५.१० निबन्धात्मक प्रश्न

५.१ प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई चिकित्सा ज्योतिष में डिप्लोमा पाठ्यक्रम (क्डइ्ज दृ २०) के तृतीय पत्र ज्योतिषशास्त्र में विविध व्याधि योग के अन्तर्गत ''तृतीय खण्ड'' अधो अंग रोगाधिकार की प्रथम इकाई गुत रोग नामक शीर्षक से सम्बन्धित हैं। श्रीमद् भगवद्गीता में महर्षि वेदव्यास ने कहा है कि ''जातस्य ध्रुवं मृत्युः ध्रुवं जन्म मृतस्य च'' परन्तु यदि कोई असमय ही काल का ग्रास बन जाए, तो वह हम सब के लिए दुख एवं शोक का कारण बन जाता है। इसी कारएा हमारे वैदिक ऋषियों ने प्रातः - सांयकालीन संध्या के वेदमन्त्रों में कहा है कि ''पश्येम शरदः शतं श्रृणुयाम शरदः शतं प्रववाम शरदः शतमदीना स्यामः शरद शतं भूयश्च शरदः शतात्'' अर्थात् सौ वर्ष पर्यन्त तक हम अदीन होकर जीयें। हम किसी के अधीन अर्थात् रोग और शोक से ग्रस्त होकर न जीयें। यह तभी सम्भव हो सकता है, जब हमारा शारीरिक, बौद्धिक एवं मानसिक बल उच्चतम होगा । क्योंकि सभी धर्मो एवं कर्मो का साधनभूत अंग शरीर है। शरीर को रोगों का घर भी माना गया है। ''शरीरं व्याधि मन्दिरम्''। परन्तु यह शरीर ईश्वर की सर्वोतम कृति है। समस्त लौकिक एवं पारलौकिक क्षमताएं/ सिद्धियां इसी के माध्यम से प्राप्त की जा सकती है। भारतीय दर्शनों में मनुष्य शरीर को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष (पुरूषार्थ चतुष्टय) का आधार माना गया है। इसी शरीर में परमात्मा का भी वास है। इसलिए ईश्वररूपी चेतना के रहने से यह शरीररूपी मन्दिर शोभायमान होता है। शरीर धर्म की साधना का आदिभूत साधन है।**''शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्''** इसलिए शरीर को सेहतमंद अर्थात् स्वस्थ रखना आवश्यक है। क्योंकि रोगी एवं अस्वस्थ शरीर से कुछ भी प्राप्त नही किया जा सकता । शरीर के स्वस्थ होने पर ही लौकिक एवं पारलौकिक सुख प्राप्त किया जा सकता है। शरीर की रक्षा और उसे निरोग रखना मनुष्य का सर्वप्रथम कर्तव्य है। पहला सुख निरोगी काया।

अतः ईश्वर ने हमें असीमित क्षमताएं प्रदान की है। जिसके द्वारा हम अनेक भौतिक और आध्यात्मिक शक्तियों को प्राप्त करते है। स्व-रोग निवारण क्षमता इन्हीं शक्तियों में से एक है, जिसके द्वारा प्रत्येक मनुष्य शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक रूप से स्वस्थ रह सकता है। ज्योतिष शास्त्र के द्वारा भौतिक जगत के वास्तविक रहस्य के साथ साथ हमारे शरीर एवं मन में उत्पन्न होने वाले विकार, जिन्हें हम रोग कहते है। जिनसे हमें किसी भी प्रकार का शारीरिक एवं मानसिक दुःख मिलता है को समझने में भी सहायता मिलती है।

इस इकाई में आप चिकित्सा ज्योतिष में ग्रहयोगों से बनने वाले विविध व्याधि योगों के अन्तर्गत गुप्त रोगों का अध्ययन करेंगे तथा विशेषरूप से रोगों के मूल कारणो को समझ सकेगे।

५.२ उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप शरीर के अधो अंग रोगाधिकार में गुप्तरोगों को समझ सकेंगे कि -

१. ज्योतिषशास्त्र के अनुसार गुप्तरोगों को कैसे समझा जा सकता है।

२. राशि एवं ग्रहों के द्वारा स्त्रीरोग को समझ पायेगें ।

३. कुण्ड़ली में किन-किन भाव से गुप्तरोग का विचार किया जाता है।

४. राशि एवं ग्रहों यौन रोगोत्पति को जान सकेंगे।

५. ग्रहों के अनुसार यौनरोगों की साध्यता, असाध्यता को समझ सकेंगे।

६. कौन-कौन से ग्रह गुप्तरोगोत्पति. के कारक है ।

५.३ गुप्तरोग

जीव योनियों में मानवजीवन ही सर्वश्रेष्ठ है। परन्तु क्या मानव जीवन को प्राप्त करना ही पर्याप्त है या जीवन में पूर्ण स्वास्थ्य प्राप्तकर अंतिम अवस्था को प्राप्त करना ? निःसदेह पहला सुख निरोगी काया ही है। यदि स्वास्थ्य अच्छा नही हो तो मानव जीवन पिंजरे में बंद पक्षी की तरह कहर जाएगा। गुप्त रोग अर्थात् ऐसे रोग जो दिखते नही है। इन्हें अदृष्ट रोग भी कहा जाता है, लेकिन वर्तमान में इनका तात्पर्य यौन रोगों से लिया जाता है। यदि समय रहते इनका चिकित्सीय एवं ज्योतिषीय उपचार दोनों कर लिये जाएं तो इन्हे घातक होने से रोका जा सकता है। ज्योतिष शास्त्र मे जननेन्द्रिय रोगो को गुप्तरोग कहते है, इस शास्त्र के अनुसार उपदंश सुजाक, व्रण, एडस और हैपेटाइइटिस बी, वीर्यरोग, क्लीब के योग, वन्ध्यात्व एवं स्त्रीरोगादि गुप्तरोग कहलाते है।

५.३.१ रोगोत्पति एवं पीड़ित अंगो का अनुमान

ज्योतिष शास्त्र के अनुसार किसी रोग विशेष की उत्पति जातक के जन्म समय के किसी राशि एवं नक्षत्र विशेष में पापग्रहों की उपस्थिति, उन पर पाप प्रभाव, पापग्रहों के नक्षत्र में उपस्थिति एवं पापग्रह अधिष्ठित राशि के

स्वामी द्वारा युति या दृष्टि रोग की सम्भावना को बताती है। इन रोगकारक ग्रहों की दशा एवं दशाकाल में प्रतिकूल गोचर रहने पर रोग की उत्पति होती है। ग्रह, नक्षत्र, राशि एवं भाव मानव शरीर के भिन्न भिन्न अंगों का प्रतिनिधित्व करते है। उनमें षष्ठ, अष्टम अथवा द्वादश भाव का स्वामी जिस भाव में पड़ता हो उस भाव से निर्दिष्ट अंग में पीड़ा होती है, अथवा जिस जिस भाव का स्वामी षष्ठ, अष्टम अथवा द्वादश भाव में पड़ता हो, उन-उन भावों से निर्दिष्ट अंगों में पीड़ा होती है।

५.३.२ गुप्त रोग के कारक ग्रह और भाव

ज्योतिषशास्त्र में अष्टमराशि, वृश्चिक राशि एवं शुक्र को यौन अंगों का, पंचमभाव को गर्भाशय, आंत एवं शुक्राणु का, षष्ठभाव को गर्भ, मूत्ररोग, गुर्दा एवं आंतरोग, गठियां और मूत्रकृच्छ आदि का ,सप्तमभाव को शुक्राशय, अंडाशय, गर्भाशय वस्ति, मूत्राशय, प्रोस्टेट ग्रन्थि, मूत्रद्वार एवं शुक्र का, अष्टमभाव भाव को गुदा, लिंग, योनि और मासिकचक्र का तथा नक्षत्रों में पूर्वफाल्गुनी को गुप्तांग, उतरफाल्गुनी को गुदा, लिंग एवं गर्भाशय, हस्त को प्रमेह एवं उदर रोग, अनुराधा को संक्रांमक रोगों का, पूर्वाषढ़ा को प्रमेह, धातुक्षय एवं गुप्तरोगों का तथा धनिष्ठा को आमाशय वस्ति एवं गर्दे के रोगों का कारक माना गया है। राशियों में कन्या राशि संक्रमक एवं गुप्तरोग, वसामेह व शोथविकार और तुलाराशि दाम्पत्य कालीन रोगों तथा वस्ति, मूत्राशय एवं गर्भाशय रोगों की कारक तथा वृश्चिकराशि जननेन्द्रिय, गर्भाशय एवं गुदा रोगों की कारक कही गयी है। ग्रहों में मंगल गर्भपात, ऋतुस्रव व मूत्रकृच्छ, बृहस्पति को वसा की अधिकता से उत्पन्न रोग व पेटरोग, शुक्र को प्रमेह, वीर्य की कमी, प्रजनन तंत्र के रोग, मूत्ररोग, गुप्तांग शोथ, शीघ्रपतन, व धातुरोग तथा शनि को गुदारोग का कारक माना गया है। इन कारकों पर अशुभ प्रभाव का आना या कारक ग्रहों का रोग स्थान या षष्ठेश से संबन्धित होना या नीच स्थान अथवा नीचराशि में उपस्थित होना गुप्त एवं यौन रोगों का कारण बनता है। गुप्तरोग में स्त्री की कुण्ड़ली में सप्तमभाव और पुरूष की कुण्ड़ली में अष्टमभाव की अहम भूमिका रहती है। यदि इनमें कोई पापग्रह हो या इन भावों को कोई पापग्रह देख रहा हो तो गुप्तरोग की सम्भावना होती है।

५.४ गुप्तरोग के योग

जननेन्द्रिय के रोगों को गुप्तरोग कहते है। ये रोग निम्नलिखित ज्योतिषीय ग्रहयोगों के प्रभाववश होते है।

१. शनि, मंगल एवं चन्द्र यदि अष्टम, षष्ठ, द्वितीय या द्वादश में हो तो काम सम्बन्धी रोग होता है। इनका किसी भी प्रकार से सम्बन्ध स्थापित करना यौनरोगों को जन्म देता है।

२. कर्क और वृश्चिक के नवांश में यदि चन्द्रमा किसी पापग्रह से युत हो तो गुप्तरोग होता है।

३. स्त्री की कुण्ड़ली में सप्तमभाव में मेष या वृश्चिक राशि हो और उसे शनि देख रहा हो तो योनि में रोग या गुप्तरोग होते है।

४. स्त्री की कुण्डली में सप्तमभाव में मकर या कुम्भराशि हो उसे मंगल देख रहा हो तो भी ऐसी जातिका को गुप्तरोग की सम्भावना होती है।

५. स्त्री की कुण्डली में सप्तमभाव में स्थित शनि को मंगल देख रहा हो या सप्तमभाव में स्थित मंगल को शनि देख रहा हो तो भी गुप्तरोग की सम्भावना होती है।

६. स्त्री की कुण्डली में सप्तमभाव या चतुर्थभाव में शुक्र, चन्द्र तथा मंगल स्थित हो तो व्यभिचारी योग के कारण आचरण में संदेह होने से गुप्तरोग होते है।

७. स्त्री की कुण्डली में नीचराशि में मंगल सप्तम या अष्टमभाव में हो तो जातिका को मासिकधर्म सम्बन्धित रोग होते है।

८. अष्टम स्थान में धनुराशि हो तो गुप्तरोग होते है।

९. द्वादश स्थान में गुरू हो और उसे शुभ ग्रह न देखता हो तो गुप्त रोग होता है।

१०. कर्क, वृश्चिक या कुम्भ के नवांश में शनि के साथ चन्द्रमा हो, तो गुप्तरोग होता है।

११. अष्टमेश की राशि में पापग्रह के साथ चन्द्रमा हो तथा अष्टमेश पर राहु की दृष्टि हो तो गुप्तरोग होता है।

१२. कुण्ड़ली में किसी भी भाव में चन्द्र, राहु एवं शनि अथवा चन्द्र,, केतु एवं शनि तथा चन्द्र, मंगल एवं शनि की युति गुप्तरोग कारक होती है।

१३. अष्टमभाव में पापग्रह हों तथा उस पर पापग्रह की दृष्टि हो तो गुप्त रोग होते है।

१४. अष्टमभाव में नीच राशिगत ग्रह हों।

१५. अष्टम स्थान में तीन या चार पापग्रह हो। तो गुप्तरोग की सम्भावना होती है।

१६ राहु अष्टम नवांश में हो और अष्टमेश अष्टमस्थान से त्रिकोण में हो, तो जननेन्द्रिय रोग होता है।

१७. यदि चतुर्थ एवं सप्तमस्थान का स्वामी षष्ठ, अष्टम अथवा द्वादश स्थान में हो, अथवा चतुर्थ एवं सप्तम स्थान के स्वामी शत्रुराशि गत होकर पापदृष्ट हो तो मूत्रस्थली जनित रोग होते है।

१८. यदि लग्नेश और द्वितीयेश, शुक्र के षड्वर्ग में हो तो जननेन्द्रिय रोग होता है।

१९. यदि शुक्र षष्ठ, अष्टम अथवा द्वादश स्थान गत हो, अथवा षष्ठेश के साथ हो तो जननेन्द्रिय में पीड़ा होती है।

२०. षष्ठेश और लग्नेश, बुध तथा राहु के साथ हों तो जननेन्द्रिय रोग होता है।

२१. यदि शुक्र सप्तमस्थ होकर शनि एवं मंगल के साथ हो अथवा शनि, मंगल से दृष्ट हो तो जननेन्द्रिय रोग होता है।

२२. यदि लग्नाधिपति षष्ठ स्थान में हो और षष्ठेश बुध के साथ हो तो जननेन्द्रिय रोग होता है।

इस कुण्ड़ली में लग्नाधिपति शुक्र षष्ठस्थान में हैं। तथा षष्ठेश बृहस्पति सप्तमेश मंगल के साथ दशम स्थान में बैठा है। चतुर्थ स्थान का स्वामी शनि अष्टम स्थान में है। षष्ठेश बृहस्पति का बुघ से अन्योन्य दृष्टि सम्बन्ध है तथा षष्ठेश बृहस्पति लग्नेश को भी पूर्ण दृष्टि से देख रहा है। अतः जातक जननेन्द्रिय रोग से पीड़ित था।

५.४.१ वीर्यरोग

स्वप्नदोष, शीघ्रपतन या धातुक्षय आदि को वीर्यरोग कहते है। ये रोग निम्नलिखित ग्रहयोगों के प्रभाववश होते है --

१. शनि, मंगल या सूर्य क्रमशः अष्टम, षष्ठ या द्वितीय स्थान में हो तो स्वप्नदोष होता है।

२. राहु, शुक्र या शनि उच्चराशि में हो, कर्क में सूर्य तथा मेष में चन्द्रमा हो तो शीघ्रपतन होता है।

३. लग्न में चन्द्रमा हो तथा गुरू एवं शनि पंचम में हो शीघ्रपतन होता है।

४. कन्यालग्न पर बुध एवं शनि की दृष्टि हो तथा शनि की राशि में शुक्र हो। तो शीघ्रपतन होता है।

५. लग्न में विषमराशि में शुक्र हो तो वीर्य विकार होता है।

६. चतुर्थ स्थान में चन्द्रमा एवं शनि हो तो वीर्य विकार होता है।

७. सप्तम स्थान में स्थित शुक्र पर लग्नेश की दृष्टि हो तो वीर्य विकार होता है।

८. शुक्र की राशि में चन्द्रमा हो तो वीर्य विकार होता है।

५.४.२ नपुंसकता के योग

सन्तानोत्पादन की शक्ति के अभाव को नपुंसकता कहते है। इस शक्ति से हीन पुरूष नपुंसक तथा स्त्री वन्ध्या कहलाती है। नपुंसकता जन्मजात तथा आगन्तुक दो प्रकार की होती है। जातक ग्रन्थों मे जन्मजात नपुंसकता सूचक निम्नलिखित छः योग बतलाये गये है, जिन्हें ''षट्क्लीब योग'' भी कहते है। इन योगों का विचार गर्भाधान कुण्डली एवं जन्मकुण्डली दोनों से किया जाता है। जिस व्यक्ति के गर्भाधान या जन्म के समय कुण्डली में निम्नलिखित योगों में से कोई एक योग हो तो वह जन्मजात नपुंसक होता है।

अन्योऽन्यं यदि पश्यतः शशिरवी यद्यार्कि सौम्यावपि,

वक्रो वा समगं दिनेशमसमे चन्द्रोदयौ चेत्स्थितौ ।

युग्मौजर्क्षगतौ अपीन्दुशशिजौ भूम्यात्मजेनेक्षितौ,

पुम्भागेसितलग्नशीतकिरणाः स्युः क्लीबयोगाश्च षट्।।

१. विषमराशि में स्थित सूर्य एवं चन्द्र एक दूसरे को देखते हों।
२. विषमराशि में स्थित शनि एवं बुध एक दूसरे को देखते हों।

३. विषम राशिगत मंगल समराशिगत सूर्य को देखता हो।

४. विषम राशिगत मंगल विषमराशिगत लग्न एवं चन्द्रमा को देखता हो।

५. विषमराशि में बुध तथा समराशि में चन्द्रमा हो और दोनों को मंगल देखता हों।

६. विषम राशि तथा विषम राशि के नवांश में लग्न, चन्द्रमा एवं बुध हों तथा उन पर शुक्र एवं शनि की दृष्टि हो।

इन छः प्रकार के योगों में से किसी एक योग के कुण्डली में रहने से जातक नपुंसक होता है। इन योगों के अतिरिक्त निम्नलिखित योगों में गर्भाधान होने पर नपुंसक जातक का जन्म होता है।

१. मिथुन या कन्याराशि में लग्न में षष्ठेश हो लग्नेश भी बुध की राशि में हो तथा इनका शनि एवं मंगल से योग हों तो जातक जन्म से ही नपुंसक होता है।

२. विषम राशि में स्थित चन्द्रमा एवं शनि एक दूसरे को देखते हो।

आगन्तुक अर्थात् जन्म के बाद होने वाली नपुंसकता को आगन्तुक कहा जाता है जो निम्नलिखित ग्रहयोगो के प्रभाववश होती है।

१. यदि षष्ठेश बुध और राहु के साथ हो और इन ग्रहों का लग्नेश से किसी प्रकार का सम्बन्ध हो तो जातक नपुंसक होता है।

२. यदि चन्द्रमा तुला राशि में हो और उस पर मंगल, रवि अथवा शनि की दृष्टि हो तो किसी एक योग से जातक नपुंसक होता है।

निम्नलिखित कुण्डली में लग्न में राहु तथा लग्नेश बुध की व्ययेश सूर्य, सप्तमेश गुरू व केतु से सप्तम भाव में युति है, तथा षष्ठेश शनि की सप्तम भाव पर दृष्टि है। लग्नस्थ राहु का दृष्टि सम्बन्ध भी षष्ठेश शनि एवं सप्तम भाव से बन रहा है। सप्तमभाव पर व्ययेश सूर्य, लग्नेश बुध एवं सप्तमेश गुरू की युति, शनि की दृष्टि के कारण नपुंसकता देने वाली बनी। चन्द्रमा पर षष्ठेश शनि तथा अष्टमेश मंगल की दृष्टि भी उक्त योग का संकेत देती है। शुक्र से द्वादश

भाव में शनि होने पर भी योग घटित हो रहा है। षष्ठेश और बुघ दोनों पर राहु की दृष्टि भी उक्त योग की पुष्टि कर रही है।

३. सूर्य, बुध एवं शनि एक साथ हो, तो जातक नपुंसक होता है।

४. शुक्र से षष्ठ या व्यय स्थान में शनि हो, तो जातक नपुंसक होता है।

यह कुण्ड़ली महाराजा लक्ष्मेश्वर सिंह जी बहादुर जी. सी. ई. दरभंगा की है जो कि ज्योतिष - रत्नाकर में ६६२ पृष्ठ पर दी है। वहां लिखा है कि शारीरिक दोष के कारण इनको संतान सुख से वंचित रहना पड़ा। इस कुण्डली में लग्नेश व षष्ठेश शुक्र, सप्तमेश एवं द्वादशेश मंगल के साथ चतुर्थ भाव में सिंह राशि पर है। शुक्र से षष्ठ भाव का स्वामी शनि, शुक्र से द्वादश भाव में है। कुण्डली में पंचमेश बुध, पापग्रह सूर्य एवं केतु के साथ में बैठा है, तथा शनि एवं राहु से दृष्ट है। सूर्य बुध की युति उस पर शनि और राहु की दृष्टि उक्त योग की कारक है। द्वितीय योग शुक्र से द्वादशभाव में शत्रुराशिगत शनि बैठा है। यह भी इस योग का कारक माना गया है।

५. नीचराशिगत शनि षष्ठ अथवा द्वादश स्थानगत हो तो जातक नपुंसक होता है।

६. सिंहराशि में स्थित बुध पर मंगल की दृष्टि हो।

७. मकर राशि में शुक्र हो।

८. सप्तमेश एवं पापग्रह नवमस्थान में बैठे हो। नवमेश अष्टमस्थान मे हो।

९. व्ययेश लग्न में हो।

१०. कारकांश में केतु हो और उस पर बुध एवं शनि की दृष्टि हो।

११. शुक्र के साथ शनि सप्तम, अष्टम एवं दशम स्थान में हो तथा उन पर शुभग्रह की दृष्टि न हो। तो जातक नपुंसक होता है।

निम्नलिखित कुण्डली में लग्न में चन्द्रमा की राहु से युति तथा शनि युक्त (लग्नेश-षष्ठेश) व केतु की दृष्टि है। लग्न व्ययेश मंगल तथा अष्टमेश गुरू के कारण पाप मध्यत्व में है। षष्ठस्थ सूर्य अपनी नीचराशि में है तथा सिंहराशि पर शनि की दृष्टि और अष्टमेश गुरू की दृष्टि सिंहराशि तथा सूर्य दोनों पर है जो पापत्व बढ़ाती है। पंचमभाव में उच्चस्थ बुध, लग्नस्थ राहु तथा व्ययेश मंगल से दृष्ट होने के कारण दूषित हो गया है। अतः सप्तमभाव

में (लग्नेश-षष्ठेश) शुक्र एवं शनि की युति तथा लग्नस्थ राहु युक्त चन्द्र पर दृष्टि तथा सप्तमेश एवं व्ययेश मंगल की बुध की राशि मिथुन में स्थिति तथा बुध पर दृष्टि नपुसंकता की पुष्टि कर रही है।

१२. मिथुन, कन्या, मकर या कुम्भ राशि में लग्न में बुध हो और उस पर शनि की दृष्टि हों।

१३. शुक्र के साथ शनि तृतीय या लाभ स्थान में हो।

१४. शुक्र से द्वादश भाव में शत्रुराशिगत शनि हो।

१५. सप्तमेश चर राशिगत हो और उसको बुघ एवं शनि देखते हो।

१६. षष्ठेश लग्न में बुध की राशि में तथा लग्नेश भी बुध की राशि में हो तो इस योग में उत्पन्न पुरूष और उसकी पत्नी दोनों नपुंसक होते है।

१७. षष्ठेश एवं बुध दोनों राहु के साथ हो तथा लग्नेश से सम्बन्ध रखते हो जातक नपुंसक होता है।

इस कुण्डली में चन्द्र कुण्ड़ली के अनुसार षष्ठेश मंगल तथा केतु के कारण लग्न पाप मध्यत्व में है। लग्नेश शनि की षष्ठभाव में सप्तमेश चन्द्रमा तथा राहु से युति है तथा षष्ठेश बुध पर दृष्टि है। चन्द्र कुण्डली के अनुसार षष्ठेश मंगल एवं सप्तमेश गुरू का परस्पर दृष्टि सम्बन्ध है। षष्ठेश व सप्तमेश का परस्पर दृष्टि सम्बन्ध, सप्तमेश की षष्ठभाव में पापग्रहों से युति तथा लग्नेश की राहु से युति एवं षष्ठेश बुध पर दृष्टि इस योग अर्थात् नपुंसकता की पुष्टि करती है।

१८. यदि सप्तमेश शुक्र के साथ षष्ठस्थान में बैठा हो तो जातक की स्त्री नपुंसक होती है अथवा जातक अपनी स्त्री के प्रति नपुंसक होता है।

१९. यदि लग्न मिथुन या कन्या हो और उसमें षष्ठेश मंगल और शनि के साथ होकर बैठा हो जातक नपुंसक होता है।

५.४.३ स्त्रीरोग तथा वन्ध्यात्व के योग -

स्त्री में प्रजजन का अभाव वन्ध्यात्व कहलाता है। पुरूष की कुण्ड़ली में जो योग नपुंसकता के सूचक होते है। वहीं योग स्त्री की कुण्ड़ली में बांझपन के सूचक माने गये है। उन योगों के अलावा स्त्री की कुण्डली में निम्नलिखित योग होने पर भी वह वन्ध्या होती है -

शशि - शुक्रौ यदा लग्ने मन्दाराभ्यां युतौ तदा।

वन्ध्या भवति सा नारी सुतभे पापदृग्युते।।

लग्नादष्टमगौ स्यातां चन्द्रार्कौ स्वर्क्षगौ तदा ।

वन्ध्याऽथ काकवन्ध्या चेदेवं चन्द्रबुधौ यदा ।।

शनिमंगलभे लग्ने चन्द्रभार्गवसंयुते ।

पापदृष्टे च सा नारी वन्ध्या भवति निश्चयात् ।।

१. जिस स्त्री के लग्न में चन्द्रमा एवं शुक्र यदि शनि या मंगल के साथ हो तथा पंचमभाव पापग्रहों से युत या दुष्ट हो तो स्त्री वन्ध्या होती है।
२. लग्न से अष्टम स्थान में सूर्य या चन्द्रमा अपनी ही राशि (कर्क, सिंह) में हो तो स्त्री वन्ध्या होती है।

३. यदि अष्टमभाव में मिथुन, कर्क या कन्या राशि हो और उसमें बुध एवं चन्द्रमा बैठे हो तो स्त्री काक वन्ध्या होती है।

४. लग्न में मेष, वृश्चिक, मकर या कुम्भराशि हो और उसमें चन्द्र, शुक्र बैठे हो तथा उन पर पापग्रहों की दृष्टि हो तो स्त्री वन्ध्या होती है।

५. अष्टम स्थान में बुध हो तो स्त्री वन्ध्या होती है।

६. अष्टम स्थान में सूर्य एवं शनि दोनों हो तो स्त्री वन्ध्या होती है।

स्त्रीरोग -

मासिकधर्म में गड़बड़ी , प्रदर, योनि मार्ग में व्रण एवं सूजन तथा योनि कन्द आदि रोगों को स्त्रीरोग कहते है। ये रोग निम्नलिखित ग्रह योगों के कारण होते है। -

१. यदि मंगल और राहु सप्तम स्थान में हों तो स्त्री को मासिक धर्म में रूधिर प्रवाह विशेष होता है।

कुजांशेऽस्तगते सौरिदृष्टे नारी सरूग्भगा ।

२. यदि किसी स्त्री की कुण्डली में सप्तम भाव में मंगल का नवांश हो तथा उस पर शनि की दृष्टि हों, तो योनि अथवा गर्भाशय में रोग होता है।

इस कुण्डली लग्नेश एवं अष्टमेश मंगल की नीचस्थ सूर्य तथा षष्ठेश बुध से सप्तम भाव में युति तथा लग्न पर दृष्टि है। षष्ठेश एवं सप्तमेश का राशि परिवर्तन तथा शुक्र का षष्ठस्थ होकर व्ययभाव में स्थित चन्द्रमा तथा व्ययेश गुरू से दृष्टि सम्बन्ध, यौन रोग का संकेतक है। अष्टमभाव मे शनि एवं केतु की स्थिति तथा व्ययेश गुरू तथा द्वितीयस्थ राहु की दृष्टि गुप्तांग रोग दे सकती है।

चन्द्र कुण्डली के अनुसार चन्द्रमा से सप्तमभाव में स्थित शुक्र पर राहु की दृष्टि है। चन्द्रमा से अष्टमभाव में षष्ठेश सूर्य तथा सप्तमेश बुध की युति है। चन्द्र सप्तमेश व अष्टमेश का राशि परिवर्तन तथा अष्टमेश का सप्तमभाव में नीचस्थ होना गुप्तांग रोग व पीड़ा देता है। ये महिला अष्टमभाव व अष्टमेश के पाप पीड़ित होने से योनि में अल्सर से पीड़ित हुई।

३. यदि मंगल पापयुक्त होकर सप्तमभाव या सप्तमेश से सम्बन्ध करें तो प्रदर रोग होता है।

निम्नलिखित कुण्डली में लग्न से सप्तम भाव में षष्ठेश मंगल की अष्टमेश शनि से युति तथा राहु की दृष्टि मासिकधर्म में गड़बड़ी दे सकती है। लग्नेश बुध, सूर्य एवं शुक्र के साथ अष्टमस्थ है।

चन्द्र कुण्डली के अनुसार षष्ठेश शुक्र की सप्तमेश बुध से युति तथा षष्ठस्थ गुरू की दृष्टि रोग की पुष्टि करती है। शुक्र में शनि की अन्तर्दशा ने महिला को अवसाद युक्त बनाया। इसका कारण चन्द्रमा (मन) की शनि (दुख) से युति है।

४. आश्लेषा, कृतिका या शतभिषा नक्षत्र में, रवि, शनि या मंगलवार में तथा द्वितीया, सप्तमी या द्वादशी में यदि किसी कन्या का जन्म हो तो स्त्रीरोग होता है।

५. लग्न में एक शुभग्रह तथा एक पापग्रह हो तथा षष्ठभाव में दो पापग्रह हो।

६. सप्तमेश पापग्रह की राशि में पापग्रह से युति करें।

७. तुलाराशि, सप्तमभाव, सप्तमेश तथा मंगल पर पाप प्रभाव रजोधर्म सम्बन्धी रोग देता है।

इस कुण्डली में लग्नेश शुक्र षष्ठेश होकर षष्ठभाव में सप्तमेश मंगल से युक्त है तथा राहु एवं शनि से दृष्ट है। षष्ठभाव तुलाराशि में चन्द्र, मंगल शुक्र की युति तथा राहु एवं शनि की दृष्टि रोग व पीड़ा दिया करती है।

चन्द्र कुण्डली के अनुसार षष्ठेश गुरू, व्ययेश बुध तथा एकादशेश सूर्य की षष्ठस्थान पर दृष्टि तथा चन्द्र कुण्डली से षष्ठभाव पर शनि की दृष्टि रोग की पुष्टि करती है। ये महिला पीड़ा युक्त रजोधर्म से व्यथित रही।

८. गर्भाशय पर शुक्र का अधिकार माना गया है। यदि शुक्र का संबन्ध मंगल, राहु षष्ठभाव या षष्ठेश तथा वृश्चिकराशि से हो तो गर्भाशय रोग देता है।

निम्नलिखित कुण्डली में लग्नेश एवं अष्टमेश मंगल की षष्ठेश बुध से पंचमभाव में युति है तथा व्ययेश गुरू की दृष्टि रोगप्रद है। शनि की षष्ठभाव और चन्द्रमा पर दृष्टि रोग व पीड़ा का संकेतक है। सप्तम स्थान में शुक्र और राहु की युति गुप्तरोग कारक है।

चन्द्र कुण्ड़ली के अनुसार षष्ठेश शुक्र की राहु से युति सप्तमेश बुध की व्ययेश मंगल और सूर्य से युति करना रोग की पुष्टि करता है। ये महिला गर्भाशय के रोग से पीड़ित रही। क्योंकि गर्भाशय पर शुक्र का अधिकार माना गया है और शुक्र का संबन्ध राहु से है ।

५.४..४ बृद्धि-उपदंश शूक आदि लिंग रोग

बृद्धिरोग सात प्रकार का होता है यथा वातजन्य, पितजन्य, कफजन्य, रक्तजन्य, मेदोजन्य, मूत्रजन्य एवं आन्त्रजन्य। इसमें मूत्रजन्य तथा आन्त्रतन्य बृद्धि का कारण वायु है। वायु के कारण बृद्धि होती है। कोई एक दोष नीचे की ओर नाभि से नीचे कुपित होकर अण्डकोष वाहिनी धमनी मे पहुंचकर फलकोषो में बृद्धि उत्पन्न करता है। इसको बृद्धिरोग कहते है तथा इसे एपीड़ीड़ीमिटस ;म्चपकपकलउपजपेद्ध भी कहते है। बृद्धिरोग में बस्ति मूत्राशय में वेदना, कटिशूल, मुष्क में वेदना, लिंग में वेदना, वायु का अवरोध एवं फलकोष में सूजन ;व्लबीपजपेद्ध होती है। ज्योतिष शास्त्र में निम्नलिखित ग्रहयोगों के प्रभाववश बृद्धिरोग होता है।

१. मंगल, शनि एवं राहु षष्ठस्थान में हो तो वृषण रोग होता है।

२. लग्न में गुरू एवं राहु दोनों हो तो वृषण रोग होता है।

३. शनि या मंगल के साथ राहु लग्न में हो तो अण्डबृद्धि होती है।

४. लग्नेश राहु के साथ अष्टमस्थान में हो तो अण्डबृद्धि होती है।

५. सप्तमभाव या सप्तमेश पर शनि व राहु की दृष्टि हो तो वातकोप से अण्डबृद्धि होती है।

निम्नलिखित कुण्डली में सप्तमभाव और सप्तमेश शुक्र पर शनि एवं राहु की दृष्टि यौन रोग की सम्भावना दे रही है। लग्नस्थ शनि का षष्ठेश मंगल तथा सप्तमेश शुक्र से दृष्ट होकर लग्नस्थ होना अनिष्टप्रद है। लग्नस्थ शनि का राहु, सप्तमस्थ शुक्र तथा मंगल गुरू से दृष्टि संबंध जटिल रोग का संकेतक है।

चन्द्र कुण्डली से षष्ठेश, सप्तमेश की युति तथा शनि से दृष्टि होना रोग को दर्शाता है। चन्द्रमा से अष्टमभाव तथा अष्टमेश शनि व राहु की दृष्टि के कारण पाप पीड़ित हो गया जो गुप्तांग पीड़ा की पुष्टि करता है। अतः ये जातक अंड़कोष की सूजन व पीड़ा से व्यथित रहा।

६. गुलिक के साथ लग्नेश अष्टमस्थान में हो तो अण्डबृद्धि होती है।

७. लग्न में राहु त्रिकोण में गुलिक तथा अष्टम में मंगल एवं शनि हो तो अण्डबृद्धि होती है।

८. लग्नेश से आक्रांत नवांश का स्वामी राहु, मंगल या गुलिक के साथ हो तो अण्डबृद्धि हो।

९. राहु एवं शनि एक साथ हो तो अण्डबृद्धि होती है।

१०. मंगल एवं राहु एक साथ हो तो अण्डबृद्धि होती है।

११. अष्टम स्थान में शुक्र एवं मंगल हो तो वात कोप से अण्डबृद्धि होती है।

१२. शुक्र एवं मंगल, मंगल की राशि में हो तो वात कोप से तो अण्डबृद्धि होती है।

इस कुण्डली में षष्ठेश बुध की सप्तमेश शुक्र के साथ अष्टमभाव में युति है। शुक्र लग्नेश एवं अष्टमेश मंगल की राशि में स्थित है तथा अष्टमभाव पर व्ययेश गुरू एवं शनि की दृष्टि गुप्तरोग का संकेत देती है।

चन्द्र कुण्डली के अनुसार षष्ठस्थान पर षष्ठेश शनि का राहु से दृष्ट होना मंगल का अष्टमेश होकर अष्टमभाव को देखना, शनि एवं केतु की भी

अष्टमभाव पर दृष्टि गुह्य अंगरोग की पुष्टि करती है। अतः लग्न से अष्टमभाव बुध शुक्र की युति तथा शनि की दृष्टि से पापी हुआ है तथा चन्द्रमा से अष्टमभाव भी मंगल, शनि तथा केतु की दृष्टि के कारण पाप पीड़ित हुआ है। ये जातक अण्डशोथ से पीड़ित था।

१३. मंगल की राशि में स्थित चन्द्रमा एवं शुक्र ये दोनों गुरू एवं शनि से दृष्ट हों, तो वीर्य एवं रक्त इन दोनों से मिश्रित विकार से अतिशय अण्डबृद्धि होती है।

१४. अष्टमेश का नवांश स्वामी राहु के साथ हो तो अण्डबृद्धि होती है।

१५. अष्टम भावगत नवांश की राशि में शुक्र, मंगल एवं चन्द्रमा हो तो अण्डबृद्धि होती है।

१६. लग्न एवं अष्टम स्थान में बलवान पापग्रह हो तो बहुमूत्र रोग से अण्ड़बृद्धि होती है।

१७. यदि लग्नेश अष्टमगत हो और अष्टम स्थान में राहु तथा मान्दि भी बैठा हो तो अण्डकोष. बृद्धिरोग होता है।

१८. बृहस्पति, सूर्य और राहु के तृतीय स्थान में रहने से अण्डबृद्धि होती है।

१६. यदि राहु लग्न में हो और गुलिक त्रिकोण में हो तथा अष्टमस्थान में मंगल और शनि बैठा हो तो अण्डबृद्धि होती है।

निम्नलिखित कुण्डली में राहु अधीष्ठित राशि का स्वामी तथा अष्टमेश बुध लग्नस्थ है। षष्ठेश युक्त शनि तथा बृहस्पति की दृष्टि लग्न पर है। केतु व शनि की दृष्टि षष्ठभाव पर है।

चन्द्रमा से अष्टमभाव में मंगल व अष्टमेश शनि की युति तथा राहु की दृष्टि के कारण अष्टमभाव पाप पीड़ित है। अतः ये जातक अंड़कोष की सूजन व पीड़ा से व्यथित रहा।

२०. लग्नाधिपति राहु केतु अथवा और किसी एक दूसरे पापग्रह के साथ अष्टम स्थान में हो तो अण्डबृद्धि होती है।

२१. राहु, मंगल, शनि और मान्दि लग्न के नवांशपति के साथ हो तो अण्डबृद्धि होती है।

२२. यदि शनि मंगल से युक्त होकर अष्टमस्थ हो तो वात प्रकोप से अण्डबृद्धि होती है।

इस कुण्डली में अष्टमस्थान में मंगल कुम्भराशि गत है और कुम्भराशि के स्वामी शनि पर मंगल की पूर्ण दृष्टि है। इस कारण यद्यपि शनि मंगल के साथ अष्टमस्थान में नही है परन्तु अष्टमस्थ मंगल को शनि से साधर्म्य सम्बन्ध है। अतः ये बहुत काल से सांजर अर्थात् ''फायलेरिया'' रोग पीड़ित हुए।

२३. शुक्र मंगल की राशि में हो और मंगल भी साथ हो तो भूमि संसर्ग और वातकोप से तो अण्डबृद्धि होती है।

२४. यदि मंगल और चन्द्रमा मेष अथवा बृष राशि में तथा गुरू एवं शनि से दृष्ट हों, तो वीर्ययुक्त दोष अण्डबृद्धि होती है।

इस रोग का मुख्य कारक राहु एवं मंगल प्राय सभी ग्रहयोगों में मुख्यरूप से देखे जा रहे है। राहु वात कारक मंगल पित कारक ,शरीर के अधो अंग भी वात कारक है। यदि इन अंगों में वात और पित कारक राशियों का योग हो तो रोग होने की सम्भावना पूर्ण होती है। उपर्युक्त योगों को होरा के प्रमाणिक ग्रन्थों जैसे सारावली, जातक पारिजात, प्रश्नजातक, बृहज्जातक, ज्योतिष एवं रोग, ज्योतिष पीयूष, ज्योतिष रत्नाकर से संग्रहिंत किया गया है। इसके अतिरिक्त आयुर्वेद में रोगो के लक्षण, कारण धातु एवं दोषों का ज्योतिषशास्त्र के अनुसार अध्ययनकर रोगों एवं रोग से प्रभावित अंगों का सरलता से ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। रोगों की साध्यता, असाध्यता, रोगों के होने का समय, ग्रहयोगों, योगकारक ग्रहों की महादशा, अन्तर्दशा, प्रत्यन्तर्दशा के आधार पर निर्णय किया जा सकता है तथा मणि, मन्त्र, औषधि के अनुसार उपचार किया जा सकता है।

उपदंश एवं शुकादि रोग

लिंग में घाव होने को उपदंश तथा सूजन आने को शूक कहते है। यह उपदंश रोग पांच प्रकार का होता है यथा तीनो दोषों से पृथक् वातजन्य, पितजन्य, कफजन्य तीनों के सन्निपात से एक और पांचवा रक्तजन्य --

स पंचविधास्त्रिभिदोषै पृथक् समस्तैरसृजा चेति।।

ज्योतिष शास्त्र में ये रोग निम्नलिखित ग्रहयोगों के प्रभाववश होते है -

१. षष्ठ स्थान में शुक्र हो तो उपदंश रोग होता है।

२. चन्द्र बुध और लग्नेश सूर्ययुक्त राहु के साथ हो तो उपदंश हो।

३. शुक्र की महादशा में चन्द्रमा की अन्तर्दशा या चन्द्रमा की महादशा शुक्र की अन्तर्दशा हो।

४. षष्ठेश मंगल के साथ हो तो उपदंश रोग होता है।

इस कुण्डली में षष्ठेश शुक्र एवं व्ययेश मंगल तथा शनि की षष्ठस्थान पर युति है। सप्तमेश बुध सूर्य के साथ अष्टमस्थ है तथा शनि एवं राहु से दृष्ट है। इसे यौन रोग का संकेत माना है।

चन्द्र कुण्डली में भी सप्तमेश सूर्य की अष्टमेश बुध से षष्ठभाव में युति यौन रोग दर्शाती है। जातक यौन रोग से पीड़ित हुआ।

५. लग्नेश मंगल के साथ षष्ठ स्थान में हो तो लिंग में रोग हो।

६. बुध एवं राहु के साथ षष्ठेश लग्न में हो तो लिंग कट जाता है।

७. कर्क या वृश्चिकराशि में पापग्रहों के साथ चन्द्रमा हो।

८. अष्टम स्थान में पापग्रह हो।

९. गुरू द्वादशस्थान में हो।

१०. षष्ठेश एवं बुध दोनों मंगल के साथ हो।

११. षष्ठेश एवं मंगल एक साथ हों तथा इन्हे शुभग्रह न देंखता हो।

१२. शुक्र सप्तम या अष्टम स्थान में हो, तो उपदंश रोग हो।

इस कुण्डली मे शनि लग्न में स्वगृही होकर सप्तमस्थ शुक्र तथा नवमस्थ मंगल एवं राहु से दृष्ट है। लग्न व लग्नेश का शुक्र तथा राहु से दृष्ट होना अशुभ व अनिष्टप्रद है। शुक्र एवं सप्तमभाव पर शनि, गुरू एवं केतु की दृष्टि सप्तमभाव को पीड़ित करती है। शुक्र की दोनों राशियां वृष एवं तुला सूर्य बुध की युति तथा शनि की दृष्टि से पीड़ित है।

चन्द्र कुण्डली में राहुयुक्त मंगल की चन्द्रमा पर दृष्टि रोगप्रद है। चन्द्रमा से षष्ठभाव में सूर्य बुध की युति तथा षष्ठेश का अष्टमस्थ होना रोग व पीड़ा देता है। अतः शुक्र का शनि, गुरू व केतु से दृष्ट होना, षष्ठेश तथा अष्टमेश की युति का चन्द्रमा से षष्ठस्थ होना सूजाक का कारण बना।

१३. बुधयुक्त षष्ठेश लग्न में हो तो शूक रोग हो।

१४. चन्द्रमा कर्क, वृश्चिक या कुम्भराशि के नवांश में शनियुक्त हो। तो उपदंश रोग हो।

१५. षष्ठेश शनियुक्त अष्टम में हो तो रोग के कारण शल्य चिकित्सा चीरफाड़ हो।

१६. शुभग्रह की दृष्टि से रहित शनियुक्त षष्ठेश लग्न में हो।

१७. यदि षष्ठेश मंगल सहित हो उस पर शुभग्रह की दृष्टि न हो। तो उपदंश रोग के कारण शल्य चिकित्सा हो।

इस रोग का मुख्यकारक षष्ठभाव एवं षष्ठेश का विभिन्न ग्रहों के साथ योग मुख्यरूप से देखा जा रहा है। चन्द्र, शुक्र, राहु या मंगल इसके मुख्यकारक के रूप में दिखाई दे रहे है। जिसमें चन्द्रमा और शुक्र कफ एवं वातकारक है राहु वातकारक मंगल पितकारक है। साथ में चन्द्र एवं शुक्र जल तत्व के भी कारक है। षष्ठभाव यदि इन तत्वों से सम्बन्धित राशि एवं ग्रहयोगों से युक्त हो तो उपर्युक्त रोगों की सम्भवना बन सकती है। ग्रहयोगों को होरा के प्रमाणिक ग्रन्थो से संग्रहित किया गया है।

५.५ सारांश

इस इकाई में आप ज्योतिषशास्त्र के विविध व्याधि योगों के अन्तर्गत ''अधो अंग रोगाधिकार'' में गुप्तरोग नामक शीर्षक से उपदंश सुजाक, व्रण, एडस और हैपेटाइइटिस बी, क्लीब के योग, वन्ध्यात्व एवं यौन रोगों में वीर्यरोग, स्त्रीरोग तथा वन्ध्यात्व के योग, बृद्धि आदि यौन रोगों का अवलोकन करेंगे। गुप्त रोग अर्थात् ऐसे रोग जो दिखते नही है। इन्हें अदृष्ट रोग भी कहा जाता है, लेकिन वर्तमान में इसका तात्पर्य यौन रोगों से लिया जाता है। यदि समय रहते इनका चिकित्सीय एवं ज्योतिषीय उपचार दोनों कर लिये जाएं तो इन्हे घातक होने से रोका जा सकता है। ज्योतिष शास्त्र मे जननेन्द्रिय रोगो को गुप्तरोग कहते है। ज्योतिषशास्त्र में अष्टमराशि, वृश्चिकराशि एवं शुक्र को यौन अंगों का, पंचमभाव को गर्भाशय, आंत एवं शुक्राणु का, षष्ठभाव को गर्भ एवं मूत्ररोग, गुर्दा एवं आंतरोग, गठियां और मूत्रकृच्छ आदि का ,सप्तमभाव को शुक्राशय, अंड़ाशय, गर्भाशय वस्ति, मूत्र व मूत्राशय, प्रोस्टेट ग्रन्थि, मूत्रद्वार एवं शुक्र, अष्टमभाव भाव को गुदा, लिंग, योनि और मासिकचक्र का तथा नक्षत्रों में पूर्वफाल्गुनी को गुप्तांग, उतरफाल्गुनी को गुदा, लिंग एवं गर्भाशय, अनुराधा को संकांमक रोगों का पूर्वाषढ़ा को प्रमेह, धातुक्षय एवं गुप्तरोगों का कारक माना

गया है। राशियों में कन्याराशि संक्रमक एवं गुप्तरोगों वसामेह व शोथविकार और तुलाराशि दाम्पत्य कालीन रोगों तथा वस्ति, मूत्राशय एवं गर्भाशय रोगों की कारक तथा वृश्चिकराशि जननेन्द्रिय, गर्भाशय एवं गुदा रोगों की कारक कही गयी है। ग्रहों में मंगल गर्भपात, ऋतुस्राव व मूत्रकृच्छ, बृहस्पति को वसा की अधिकता से उत्पन्न रोग व उदररोग, शुक्र को प्रमेह, वीर्य की कमी, प्रजनन तंत्र के रोग, मूत्ररोग, गुप्तांग शोथ, शीघ्रपतन, व धातुरोग तथा शनि को गुदारोग का कारक माना गया है। इन कारकों पर अशुभ प्रभाव का आना या कारक ग्रहों का रोग स्थान या षष्ठेश से संबन्धित होना या नीच स्थान अथवा नीचराशि में उपस्थित होना गुप्त एवं यौन रोगों का कारण बनता है। इस प्रकार ज्योतिषशास्त्र में ग्रह, राशि एवं भाव तथा युति, दृष्टि एवं सम्बन्ध शुभाशुभयोग का कारक बनता है। ज्योतिषशास्त्र के अनुसार प्रत्येक ग्रह के शुभ और अशुभ दोनों ही प्रभाव मानव जीवन पर पड़ते हैं। जैसे प्रत्येक वरदान के पीछे कोई न कोई शाप भी छुपा होता है वैसे ही प्रत्येक ग्रह की अच्छाईयों के पीछे कोई न कोई समस्या अवश्य छुपी रहती है। इसलिए जन्मकुण्डली एवं प्रश्नकुण्डली के आधार पर शरीर के विविध रोगों का ग्रहयोगों के आधार पर विचार एवं निर्णय किया जाता है। आप इस इकाई के अध्ययन से ज्योतिषशास्त्र के अनुसार ग्रह, राशि एवं भावों के आधार पर बनने वाले ग्रहयोगों से गुप्तरोगों का निर्णय करने मे सक्षम होगें।

५.६ अभ्यास प्रश्न

१. ज्योतिषशास्त्र के अनुसार बृहस्पति किस तत्व का कारक है।

(क) अग्नि (ख) आकाश (ग) वायु (घ) भूमि

२. कौन सी राशि जलतत्व की कारक है ?

(क) धनु (ख) वृश्चिक (ग) कन्या (घ) मकर

३. कफदोष कारक कौन सा ग्रह है ?

(क) मंगल (ख) चन्द्रमा (ग) राहु (घ) बुध

४. यौन रोग का कारक कौन सा ग्रह है।

(क) शनि (ख) चन्द्रमा (ग) शुक्र (घ) बुध

५. कौन से भाव से गुदा का विचार किया जाता है?

(क) पंचम (ख) चतुर्थ (ग) षष्ठ (घ) अष्टम

६. मूत्ररोग का कारक कौन सा ग्रह है ?

(क) मंगल (ख) बुध (ग) शुक्र (घ) गुरू

७. व्यय स्थान में चन्द्रमा एवं गुरू तथा त्रिक स्थान में बुध हो तो कौन सा रोग होता है ?

(क) अर्शरोग (ख) कुष्ठरोग (ग) गुदा में घाव (घ) उपदंश

८. यदि षष्ठ स्थान में शुक्र हो तो कौन सा रोग होता है?

(क) वस्ति (ख) मूत्ररोग (ग) भगन्दर (घ) उपदंश

९. संक्रमण कारक कौन सा ग्रह है ?

(क) सूर्य (ख) केतु (ग) चन्द्र (घ) गुरू

१०. इनमें से भगन्दर रोग का कारक ग्रह कौन सा है।

(क) चन्द्र (ख) राहु (ग) शुक्र (घ) बुध

११. अपानरोग से क्या तात्पर्य है?

(क) गुदारोग (ख) मूत्ररोग (ग) चर्मरोग (घ) कुष्ठरोग

५.७ पारिभाषिक शब्दावली

गुप्त रोग - ऐसे रोग जो दिखते नही है। लेकिन वर्तमान में इनका तात्पर्य यौन रोगों से लिया जाता है। ज्योतिष शास्त्र मे जननेन्द्रिय रोगो को गुप्तरोग कहते है।

अर्शरोग - बवासीर (गुदा स्थान में मांस में अधिष्ठित विकार है)

अपानरोग - गुदा में होने वाले रोग को अपानरोग कहते है।

उपदंश - लिंग में घाव

शूक - सूजन।

क्लीब - सन्तानोत्पादन की शक्ति के अभाव को नपुंसकता या क्लीब कहते है।

वन्ध्यात्व - स्त्री में प्रजजन का अभाव वन्ध्यात्व या बांझपन कहलाता है।

अदृष्टनिमितजन्य रोग - जिन रोगों का कारण प्रत्यक्षरूप से नही जाना जा सकता है,

आयुर्वेद - जीवन का विज्ञान या जीवन से सम्बन्धित ज्ञान।

त्रिक स्थान - कुण्ड़ली का षष्ठ, अष्टम एवं द्वादश भाव।

५.८ अभ्यास प्रश्नों के उतर

१. (ख) आकाशतत्व

२. (ख) वृश्चिकराशि

३. (ख) चन्द्रमा

४. (ग) शुक्र

५. (घ) अष्टम

६. (ग) शुक्र

७. (ग) गुदा में घाव

८. (घ) बवासीर

९. (ख) केतु

१०. (ख) राहु

११. (क) गुदारोग

५.९ संदर्भ ग्रन्थ सूची

ग्रन्थ नाम	प्रकाशन
१. जातकपारिजातः	चौखम्भा सुरभारती वाराणासी

२. सारावली रंजन पब्लिकेशन्स नई दिल्ली - २

३. बृहत्पाराशरहोराशास्त्रम् चौखम्भा सुरभारती वाराणासी

४. फलदीपिका मोतीलाल बनारसीदास नई दिल्ली

५. प्रश्न मार्ग रंजन पब्लिकेशन्स नई दिल्ली - २

६. ज्योतिष पीयूष श्री वेदमाता गायत्री ट्रस्ट शान्तिकुंज हरिद्वार (उतराखण्ड) २४६४११

७. सुश्रुतसंहिता मोतीलाल बनारसीदास नई दिल्ली

८. भावप्रकाशः मोतीलाल बनारसीदास नई दिल्ली

९. चरक संहिता मोतीलाल बनारसीदास नई दिल्ली

१०. ज्योतिषशास्त्र में रोग विचार मोतीलाल बनारसीदास नई दिल्ली

११. ज्योतिष-रतनाकर मोतीलाल बनारसीदास नई दिल्ली

५.१० निबन्धात्मक प्रश्न

१. गुप्तरोग का विचार किन - किन भाव से किया जाता है ?

७. ज्योतिष शास्त्र के अनुसार गुप्तरोग कारक राशि एवं ग्रहों का वर्णन करें ?

८. यौन रोगों का ज्योतिषशास्त्र के अनुसार वर्णन करें ?

९. स्त्री रोगकारक ग्रहयोगों का विवेचन करें ?

इकाई - ०६ जानु एवं पाद रोग

इकाई की संरचना

६.१ प्रस्तावना
६.२ उद्देश्य
६.३ मुख्य भाग जानु एवं पाद रोग रोग
६.३.१ ग्रहयोग के द्वारा रोग का ज्ञान
६.३.२ भावों एवं राशियों के द्वारा रोग का ज्ञान
६.३.३ जानु एवं पादरोग के कारक ग्रह और भाव
६.४ मुख्य खण्ड विषय श्लीपद या हाथीपांव तथा अन्य पैरों के रोगों के योग
६.४.१ सूखारोग ;त्पबामजे कपेमेंमद्ध के योग
६.४.२ घुटनों में दर्द एवं पंगुता के योग
६.५ सारांश
६.६ अभ्यास प्रश्न
६.७ पारिभाषिक शब्दावली
६.८ अभ्यास प्रश्नों के उतर
६.९ संदर्भ ग्रन्थ सूची
६.१० निबन्धात्मक प्रश्न

६.१ प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई चिकित्सा ज्योतिष में डिप्लोमा पाठ्यक्रम (क्डझ दृ २०) के तृतीय पत्र ज्योतिषशास्त्र में विविध व्याधि योग के अन्तर्गत ''तृतीय खण्ड'' अधो अंग रोगाधिकार की षष्ठ इकाई जानु एवं पाद रोग नामक शीर्षक से सम्बन्धित हैं। वैदिक दर्शनों में ''यथा पिण्डे तभा ब्रह्मण्डे'' का सिद्धान्त प्राचीन काल से चला आ रहा है जिस पर आज भी अनेक शोधात्मक कार्य चल रहे है। यह सिद्धान्त बतलाता है कि मानव शरीर सहित ब्रह्माण्ड में सभी वस्तुएं पांच मूलतत्वों (पंचमहाभूतों) अर्थात् पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश से बनी है। सौर जगत में सूर्य चन्द्रादि ग्रहों की विभिन्न गति - विधियों एवं क्रियाकलापों में जो नियम काम करते है, ठीक वही नियम प्राणी मात्र के शरीर में स्थित सौर जगत की इकाई का संचालन करते है हमारे शरीर में कोशाणु बन्धुता नियम (लां आंफ एफीनिटी) के अनुसार दलबद्ध होकर शरीर की ऊतकें (टिश्यूज) और उनके द्वारा अंग बनते है। जिसके परस्पर मिलने से हमारा स्थूल शरीर बन जाता है। हमारे शरीर एवं मन में उत्पन्न होने वाले विकार, जिनसे हमें किसी भी प्रकार का शारीरिक एवं मानसिक दुःख मिलता है उसको रोग कहते है।

इस इकाई में आप चिकित्सा ज्योतिष में ग्रहयोगों से बनने वाले विविध व्याधि योगों के अन्तर्गत जानु एवं पाद रोग से सम्बन्धित रोगों का अध्ययन करेंगे तथा विशेषरूप से रोगों के मूल कारणो को समझ सकेगे।

६.२ उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप शरीर के अधो अंग रोगाधिकार के अन्तर्गत जानु एवं पाद रोगों को समझ सकेंगे कि -

१. जानु एवं पाद रोगों के कारकत्व को कैसे समझा जा सकता है।

२. जानु एवं पैरों पर भाव, राशि एवं ग्रहों का क्या प्रभाव है।

३. पैरों के रोग किन -किन ग्रहों के कारण होते है।

४. राशि एवं ग्रहों से जानु एवं पाद रोगोत्त्पति को जान सकेंगे।

५. ग्रहों के अनुसार पाद रोगों को समझ सकेंगे।

६. कौन - कौन से ग्रह जानु एवं पाद रोगोत्पति के कारक है ।

६.३ जानु एवं पाद रोग

शरीर का हर अंग अहम होता है और कोई भी रोग होने से पहले शरीर के ये अंग हमें चेतावनी देते हैं कि आखिर किस हिस्से में समस्या हो रही है। किसी भी रोग के शुरूआत के लक्षण हमारे शरीर के अंगो में दिखाई देने लग जाते है। इसी कारण ज्योतिष शास्त्र के आचार्यो ने नक्षत्रों एवं राशियों की स्थापना कालपुरूष के शरीर के अंगो में की तथा कालपुरूष के आत्मादि भाव को ग्रहमय कहकर प्रदर्शित किया। क्योंकि राशियों के स्वामी ग्रह है। प्रकृति की गमन शीलता को समझकर ज्योतिषमान ग्रह पिण्डो की अनेक विध गतिविधियों का ज्ञानकर मानव किसी निष्कर्ष पर पहुच सका है। इसी उपलब्धि से मानव ने प्रकृति के अध्ययन से विश्व की गतिविधियों के साथ विश्व के चराचर जगतस्थ जड़ चेतन सभी के भावी जीवन के निर्णय का कुछ उपाय प्राप्तकर उसे व्यक्त किया है। ग्रहों की गतिविधियों को जानकर ज्योतिष शास्त्र शुभाशुभ भविष्य ज्ञान की रूपरेखा तैयार कर मानव कल्याण करता आ रहा है। ज्योतिष शास्त्र में रोगों का विचार करते समय शरीर के अंगों को द्वादशराशि एवं द्वादशभाव में विभक्त किया गया है। इन राशियों एवं भावों में पापग्रहों की युति, दृष्टि तथा सम्बन्ध रोग का कारण होता है। जानु एवं पाद रोग का विचार मकर, कुम्भ एवं मीनराशि तथा कुण्डली के दशम, एकादश एवं द्वादश भाव से किया जाता है। शनि एवं राहु पाद रोग के कारक ग्रह माने गये है। हमारे पैर हमारी सेहत के बारे में बहुत कुछ बताते है। इसे शरीर का मुख्य सिंग्नल पाइंट कहा जाता है। घुटनों में दर्द, पंगुता, सूखारोग, मुद्गर पाद, सायटिका या गृधसी, फीलपांव तथा पैर की दाद आदि को पैरों के रोग कहते है। इसके अतिरिक्त पैरों में होने वाले बदलाव शरीर में होने वाले रोगों का भी संकेत देते है। जैसे शुगर, थायरायड, हृदयघात आदि।

६.३.१ ग्रहयोग के द्वारा रोग का ज्ञान

ज्योतिष शास्त्र में ग्रहयोग के संक्षिप्त रूप को ‘‘योग’’ कहते है अथवा दो या तीन ग्रहों की एक स्थान में स्थिति अर्थात् ग्रहयुति सामान्य रूप में योग कहलाती है। ग्रहों की इष्टानिष्टस्थान में स्थितिवश जो मनुष्य को पूर्वार्जित कर्मो के परिणाम से मिलता है, उसे योग कहते है। यथा –

ग्रहाणां स्थितिभेदेन पुरूषान् योजयन्ति हि ।

फलैः कर्मसमुद्भूतैरिति योगाः प्रकीर्तिताः ।।

होरा शास्त्र में सूर्य आदि ग्रहों को मनुष्य के शरीर के अंग, धातु एवं दोषों का प्रतिनिधि माना है। जब कोई ग्रह अनिष्ट स्थानाादि में स्थित होने के कारण

अनिष्ट प्रभाव का द्योतक बन जाता है, तो वह शरीर के जिस अंग, धातु एवं दोष का प्रतिनिधित्व करता है, उसमें विकार या रोग की सूचना देता है। परन्तु जब कोई ग्रह इष्टस्थानाादि में स्थित होने के कारण इष्टप्रभावयुक्त जाता है, तो वह शरीर के जिस अंग, धातु एवं दोष का प्रतिनिधित्व करता है, उसमें समता, पुष्टि या आरोग्यता की सूचना देता है। यही कारण है कि इस शास्त्र में सभी प्रकार के रोगों का विचार ग्रहयोगों के द्वारा किया जाता है। योग का निर्माण प्रायशः तीनों तत्व से होता है और वह है - ग्रह, राशि एवं भाव।

ज्योतिष शास्त्र में सूर्यादि नवग्रहों, मेषादि द्वादश राशियों तथा लग्नादि द्वादशभावों को मनुष्य के शरीर के विविध अंग, धातु एवं दोषों का प्रतिनिधि माना है। अतः ग्रह, राशि एवं भाव द्वारा बने योग शरीर के विविध अंग, धातु एवं दोष में विकार या रोग की सूचना देते है। योग के तीन सहायक तत्व दृष्टि, युति एवं सम्बन्ध योग के फल में ह्रास या वृद्धि करते है। इस प्रकार के तीन तत्व ग्रह, राशि एवं भाव तीन सहायक तत्व दृष्टि, युति एवं सम्बन्ध कुल मिलाकर छः तत्व के योग से ग्रह योगकारक बनते है। इन योगकारक तत्वों से जातक की कुण्डली में बनने वाले शुभाशुभ योगों के योगजन्यफल की प्राप्ति योगकारक ग्रह की दशा, अन्तर्दशा अथवा प्रत्यन्तर्दशा में घटित हुआ करती है। सामान्यतः अपने स्वरूप या स्वभावानुसार कोई भी ग्रह रोगकारक नही हुआ करता। परन्तु जब वह कुछ विशेष परिस्थितियों में मनुष्य के शारीरिक या मानसिक स्वास्थ्य में विकार उत्पन्न होने की सूचना देता है, तब वह रोगकारक कहलाता है। फलितज्योतिष में ग्रहों को रोगकारक बनाने वाले निम्नलिखित नौ हेतु बतलाये गये है -

१. रोग (षष्ठ) भाव का प्रतिनिधित्व।

२. अष्टम एवं व्ययभाव का प्रतिनिधित्व।

३. रोगभाव में स्थिति।

४. लग्न में स्थिति या लग्न का प्रतिनिधित्व।

५. नीचराशि, शत्रुराशि में स्थिति या निर्बलता।

६. अवरोहीपन्न। (उच्चराशि से आगे बढ़कर नीचाभिमुख होना)

७. क्रूरषष्ठयंश में स्थिति।

८. पापग्रहों से प्रभावित होना।

९. अरिष्टकारकत्व या मारकत्व।

उक्त नौ हेतुओं से सूर्य आदि ग्रह रोगकारक बन जाते है। तथा अन्य ग्रह की युति, दृष्टि इष्ट या अनिष्ट भाव या राशि में स्थिति के अनुसार मनुष्य के शरीर में उत्पन्न होने वाले विविध रोगों की सूचना देते है।

६.३.२ भावों एवं राशियों के द्वारा रोग का ज्ञान

ज्योतिष शास्त्र में द्वादशभावों एवं द्वादश राशियों के द्वारा शरीर के विविध अंग, धातु या दोष में विकार या रोग की सूचना मिलती है। प्रत्येक व्यक्ति की जन्मकुण्ड़ली में षष्ठभाव रोग का, अष्टमभाव मृत्यु का तथा द्वादशभाव स्वास्थ्य के ह्रास का प्रतिनिधित्व करता है। अतः षष्ठ, अष्टम एवं द्वादशभाव इन तीनों भावों को त्रिकस्थान भी कहा जाता है। त्रिकस्थान अपने स्वभाव से ही रोगोत्पति करने वाले माने गये है। यदि इन भावों में इनके स्वामी बैठे हों या इन भावों को इनके स्वामी देखते हों तो मनुष्य का स्वास्थ्य हमेशा ही नरम रहता है अर्थात् अधिकतर अस्वस्थ रहता है। इन भावों का रोगोत्पति से इतना निकट का सम्बन्ध माना गया है, कि इन भावों के स्वामी ग्रह जिस भाव में स्थित हो, वह भाव शरीर के जिस अंग का प्रतिनिधित्व करता हों, उस अंग में इनकी स्थिति के प्रभाववश रोग हो जाता है। इन (त्रिक) भावों के अलावा अन्य भाव तथा राशियां स्वभावतः रोगकारक नही होती। परन्तु जब वे निम्नलिखित कारणों से अनिष्ट प्रभावग्रस्त हो जाती है, तो रोगकारक बन जाती है। लग्नादि भाव तथा मेषादि राशियों को रोगकारक बनाने वाले प्रमुख हेतु इस प्रकार है-

१. पापग्रहों के मध्य स्थिति ।

२. पापग्रहों से युति या पापग्रहों की दृष्टि ।

३. त्रिक स्थान से सम्बन्ध ।

४. भावकारक या राशि स्वामियों की अनिष्ट स्थान में स्थिति।

५. भाव, राशि या इनके स्वामियों की निर्बलता।

६. भाव से चतुर्थ, अष्टम, द्वादश या त्रिकोणस्थान में पापग्रहों की स्थिति।

७. रोगकारक ग्रहों से सम्बन्ध ।

८. शुभग्रहों के प्रभाव का अभाव ।

उक्त कारणों से अनिष्ट प्रभावग्रस्त होने पर लग्नादि द्वादशभाव तथा मेषादि द्वादश राशियां शरीर के भिन्न - भिन्न अंगों में भिन्न - भिन्न रोगों के उत्पति की सूचना देती है। इसकी संक्षिप्त तालिका इस प्रकार है

क्र.सं.	भाव	राशि	रोग
१	प्रथमभाव	मेष	शिरोरोग (शिरःशूल, गंजापन्न, उन्माद, मिरगी एवं मूर्छा आदि)
२	द्वितीयभाव	वृषभ	नेत्ररोग (अन्धत्वादि) नासारोग, मुखरोग (दन्तादि)
३	तृतीयभाव	मिथुन	कर्णरोग (बधिरत्वादि) कण्ठरोग (गलगण्ड़ादि) बाहुरोग
४	चतुर्थभाव	कर्क	हृदयरोग, वक्षरोग
५	पंचमभाव	सिंह	उदररोग
६	षष्ठभाव	कन्या	कटिरोग
७	सप्तमभाव	तुला	वस्तिरोग (अश्मरी, प्रमेह, मधुमेह, मूत्ररोग, उपदंश, शूक)
८	अष्टमभाव	वृश्चिक	गुप्तरोग (यौनरोग, अर्शरोग, भगन्दर, वीर्यरोग, गुदारोग)
९	नवमभाव	धनु	उरू रोग
१०	दशमभाव	मकर	जानुरोग
११	एकादशभाव	कुम्भ	जंघा रोग
१२	द्वादशभाव	मीन	पादरोग

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि जब कोई ग्रह, राशि या भाव पूर्वोक्त किसी कारण से रोगकारक बन जाता है तथा वह अपने सम्बन्धी, सधर्मी या पापग्रह से दृष्ट युत होता है या उससे अनिष्टस्थान में सम्बन्धी, सधर्मी या पापग्रहों की स्थिति होती है, तो वह कुण्डली में रोग का योग उत्पन्न कर मनुष्य के शरीर या मन में रोगों की सूचना देता है।

६.३.३ जानु एवं पादरोग के कारक ग्रह और भाव

घुटनों में दर्द, पंगुता, सूखारोग, मुद्गर पाद, सायटिका या गृधसी, फीलपांव तथा पैर की दाद आदि को पैरों के रोग कहते है। ज्योतिषशास्त्र में दशमभाव एवं मकरराशि को जानुरोग का, एकादशभाव एवं कुम्भराशि को जंघारोग का तथा द्वादशभाव एवं मीनराशि को पादरोग का कारक माना गया है। मीनराशि एवं द्वादश भाव तथा ग्रहों में शनि को पैरों के रोगों का प्रतिनिधित्व कारक माना गया है। इसके अतिरिक्त दुर्घटना एवं आकस्मिक रोगों का प्रतिनिधि मंगल को माना गया हैं अन्य पापग्रह उसके सहयोगी है। सूर्य को हड्डियों कारक माना जाता है। सूखारोग आदि पैरों के रोग हड्डियों की कमजोरी के कारण होते है। इन कारकों पर पापग्रहों का प्रभाव का आना या कारक ग्रहों का रोग स्थान या षष्ठेश से संबन्धित होना या नीच स्थान अथवा नीचराशि में उपस्थित होना जानु एवं पाद के रोगों का कारण बनता है। इसके अतिरिक्त पैरों में होने वाले बदलाव शरीर में होने वाले रोगों का भी संकेत देते है।

६.४ श्लीपद, फीलपांव या हाथीपांव तथा अन्य पैरों के रोगों के योग

श्लीपद, फीलपांव या हाथीपांव ;थ्पसंतपेंपे वत म्समचींदजपेंपेद्ध यह एक जटिल रोग है। इस रोग में व्यक्ति के पैर हाथी के पैर के समान फूलकर मोटे हो जाते हौ परन्तु यह आवश्यक नही की पैर ही सदा फूले, कुछ मामलो में हाथों या गुप्तांगों में अधिक सूजन हो जाती है। आजकल इसका कारण ‘‘फाईलेरियां’’ नामक कृमि माना जाता है। इस रोग के कारण पैरों में सूजन तथा भारीपन्न अनुभव होता है। सुश्रुत संहिता के अनुसार प्रकुपित वात, पित एवं कफदोष नीचे की ओर सरक कर वंक्षण, उरू, जानु और जंघा में स्थान करके कुछ समय पीछे पांव में उतरकर धीरे - धीरे सूजन उत्पन्न करते है। इस सूजन को श्लीपद कहते है। श्लीपद को फीलपांव या हाथीपांव कहते है। जब इसका वेग होता है तब शीतज्वर भी हो जाता है। यह रोग तीन प्रकार का है। यथा - वातजन्य, पितजन्य एवं कफजन्य।

कुपितास्तु दोषा वातपितश्लेष्माणोऽधः प्रपन्ना वंक्षणोरूजानुजंघास्ववतिष्ठमानाः कालान्तरेण पादमाश्रित्य शनैः शोफं जनयन्ति, तं श्लीपदमित्याचक्षते। तत्त्रिविधं वातपितकफनिमित्तमिति।

ज्योतिष शास्त्र के अनुसार निम्नलिखित ग्रहयोगों के प्रभाववश इस रोग की सम्भावना रहती है -

१. मंगल, बुध एवं शुक्र एक साथ हों तो श्लीपद अर्थात् फीलपांव होता है।

२. षष्ठ स्थान में शनि हो तो पैर में रोग होता है।

३. षष्ठ स्थान में शनि एवं शुक्र दोनों होने से पैरों में रोग होता है।

४. व्ययभाव में पापग्रहों से युत दृष्ट लग्नेश हो तो मनुष्य वैशाखी के सहारे से चलता है।

निम्नलिखित कुण्डली में षष्ठेश शनि द्वादशेश सूर्य के साथ होकर द्वादश भाव में बैठा है। सप्तमेश बृहस्पति केतु के साथ चतुर्थ भाव में है। अष्टमेश मंगल अपनी नीचराशि कर्कराशि में शुक्र के साथ एकादश भाव में बैठा है। अष्टमेश मंगल चन्द्रमा और षष्ठभाव को देख रहा है। सप्तमेश बृहस्पति षष्ठेश शनि और द्वादशेश सूर्य को देख रहा है तथा षष्ठेश शनि और द्वादशेश सूर्य की षष्ठभाव पर दृष्टि है।

चन्द्र कुण्डली के अनुसार षष्ठभाव में राहु तथा सप्तम भाव में नीचस्थ मंगल और शुक्र की युति है। जिससे जातक मधु-प्रमेह रोग से पीड़ित रहने के कारण पैर में व्रण हुआ जिसकी शल्य चिकित्सा होने के बाद इनकी मृत्यु हो गई। शनि और सुर्य द्वादशस्थ है। द्वादश स्थान से पैर का व्रण सूचित होता है।

५. जलतत्व राशि कर्क, वृश्चिक तथा मीन, चतुर्थ, अष्टम तथा द्वादशभाव इन पर किसी भी प्रकार का पापग्रह प्रभाव, श्लीपद रोग दे सकता है।

६. जलतत्व राशि में स्थित मंगल चतुर्थ, अष्टम तथा द्वादशभाव गत होकर त्रिकेश, शनि या राहु से दृष्टि - युति करें तो पैर में रोग होता है।

७. चतुर्थभाव या चतुर्थेश तथा मंगल यदि पापग्रहों से दृष्ट या युक्त हो तो हाथी पांव रोग होता है।

निम्नलिखित कुण्डली में लग्नेश बुध अष्टमभाव में सप्तमेश गुरू तथा अष्टमेश शनि से युति कर रहा है। षष्ठेश मंगल चतुर्थ भावगत है तथा चतुर्थेश बुध अष्टमभाव में पापग्रह से युक्त है।

चन्द्र कुण्डली के अनुसार षष्ठेश लग्न में स्थित होकर राहु से दृष्ट है। लग्नेश शनि व्ययभाव में द्वितीयेश गुरू तथा अष्टमेश बुध के साथ है। षष्ठभाव पर बुध, गुरू एवं शनि की दृष्टि पापत्व को बढ़ाती है। द्वादश भाव तथा शनि दोनों पैर का प्रतिनिधित्व करते है। लग्नेश का अष्टमभाव में अष्टमेश शनि से युति भी पैर के रोग का कारण बनी।

८. षष्ठस्थ शनि पापग्रहों से दृष्ट या युक्त होकर लग्नेश से सम्बन्ध करें तो पैर में रोग होता है।

९. यदि चन्द्र, मंगल, शनि और शुक्र जलराशिगत हों एवं किसी प्रकार से पीड़ित हो तो जातक को पैर का रोग होता है। अर्थात् ऐसे व्रणादि से जातक पीड़ित होता है। जिससे मरणान्तक कष्ट होता है। देखो कुण्ड़ली गंगा प्रसाद सिंह की कुष्ठव्याधि से इनके हाथ और पैर की अंगुलियां खराब हो गयी और नेत्र की ज्योति भी नष्ट हो गयी।

इस कुण्ड़ली में चन्द्र, शुक्र और शनि जलराशिगत है। इनको प्रथम श्वेत कुष्ठ का ही रोग हुआ था। क्रमशः इनके हाथ पैर इत्यादि और अंगो में भी कुष्ठ रोग का आक्रमण हुआ।.

६.४.१ सूखारोग के योग

सूखा रोग हड्डियों का रोग है जो प्रायः बच्चों में होता है। जन्म के बाद बहुधा बच्चों के पैर घुटने के पास से मुड़े ;ठंदकल समहहमकद्ध होते है। इसे धनुजानु ; ठवू समहद्ध भी कइते है। बच्चों में हड्डियों की नरमाई या कमजोर होने को सूखारोग कहते है। परिणामस्वरूप अस्थिविकार होकर पैरों का टेढ़ापन्न और मेरूदण्ड़ में असामान्य मोड आ जाते हैं। इसी प्रकार की विकृति को बड़ो में आंस्टिमैल्सिया कहा जाता है। इसका कारण लम्बे समय तक विटामिन डी की कमी होना है। इस रोग में रोगी का शरीर सूख जाता है। फलितज्योतिष में सूर्य को शुष्क तथा चन्द्रमा को जलीयग्रह माना है। अतः इन दोनों ग्रहों के परस्पर योग से यह रोग होता है। जातकग्रन्थों में इस रोग के अनेक योग बतलाये गये है, उनमें कुछ प्रमुख योग इस प्रकार है :-

जीवे समन्दे दशमेऽर्धचन्द्रे वैकल्यमंगे क्षितिजे कलत्रे।

दिनेशचन्द्रौ रविराशियुक्तौ चन्द्रर्क्षगौ वा यदि शोषणं स्यात्।

१. सूर्य एवं चन्द्रमा दोनों सूर्य की राशि सिंह में हो तो जातक सूखारोग से पीड़ित होता है।
२. सूर्य एवं चन्द्रमा दोनों चन्द्रमा की राशि कर्क में हो तो जातक सूखारोग से पीड़ित होता है।

३. सूर्य एवं चन्द्रमा परस्पर एक दूसरे की राशि में हो तो जातक सूखारोग से पीड़ित होता है।

४. सूर्य कर्क राशि में या कर्क के नवांश में हो तो जातक सूखारोग से पीड़ित होता है।

५. चन्द्रमा सिंह राशि में या सिंह के नवांश में हो तो जातक सूखारोग से पीड़ित होता है।

उक्त योगों के अलावा शुष्क ग्रह एवं शुष्क राशियों के प्रभाववश भी इस रोग के योग बनते है। ज्योतिष शास्त्र में सूर्य, मंगल एवं शनि को शुष्कग्रह तथा मेष, वृष, मिथुन, सिंह, कन्या एवं धनु राशि को शुष्क राशियां माना गया है। इन दोनों (ग्रह एवं राशि) के प्रभाववश भी इस रोग के निम्नलिखित योग बनते है :-

१. लग्नेश दुर्बल हो तथा वह शुष्क राशि में हो तो जातक सूखारोग से पीड़ित होता है।

२. लग्न में शुष्क राशि में शुष्क ग्रह हो तो जातक सूखारोग से पीड़ित होता है।

३. लग्नेश शुष्क ग्रह हो तथा वह शुष्क ग्रहों की राशि में हो।

४. लग्नेश अष्टम स्थान में शुष्क राशि में हो तो जातक सूखारोग से पीड़ित होता है।

५. लग्नेश जिस नवांश में हो उसका स्वामी शुष्क राशि में हो तो जातक सूखारोग से पीड़ित होता है।

६.४.२ घुटनों में दर्द एवं पंगुता के योग

जिस व्यक्ति की कुण्डली में निम्नलिखित ग्रहयोगों में से कोई एक योग हो, उसके घुटनों में दर्द होता है :-

१. पूर्ण चन्द्रमा एवं मंगल षष्ठ स्थान में हो तो घुटनों में दर्द होता है।

२. शनि, चन्द्रमा या मंगल द्वादश भाव में हो तो घुटनों में दर्द होता है।

३. यदि लग्नेश बृहस्पति शनि से दृष्ट हो तो वातरोग होता है।

इस कुण्डली में लग्नेश बृहस्पति सप्तम भाव में राहु से युत है तथा शनि से दृष्ट है। चन्द्रमा अष्टमेश होकर चतुर्थभाव में द्वादशेश मंगल से दृष्ट है। लग्न से दशम भाव से घुटनों का विचार किया जाता है। लग्न से दशम भाव का

स्वामी बुध चन्द्र कुण्ड़ली में सप्तमेश होकर अष्टमभाव में षष्ठेश एवं अष्टमेश दोनों से युति कर रहा है। लग्नेश का बुध की राशि में बेठकर बुध पर दृष्टि तथा शनि की लग्नेश तथा बुध की राशियों पर दृष्टि होने के कारण इस जातक के घुटनों में वात जनित पीड़ा रहने के कारण बैठने उठने में क्लेश रहता था।

पंगुता के योग

पैर का न होना या कट जाना लंगड़ापन्न अथवा पंगुता कहलाता है। अनेक बार ऐसे बच्चे का जन्म होता है, जिसका एक पैर चलने फिरने के लायक न हो। ऐसे बच्चों को पंगु कहते है। इसके अतिरिक्त अंगहीनता किसी एक अंग का न होना आदि ऐसे अनेकों योगों का विचार जातक ग्रन्थों में आधान कुण्डली तथा जन्म कुण्डली दोनों से किया जाता है। यदि आधान कुण्डली में निम्नलिखित योगों में से कोई एक योग हो तो गर्भस्थ शिशु लंगड़ा होता है :-

१. यदि गर्भाधान कुण्ड़ली में मीन लग्न हो और उस पर चन्द्रमा, मंगल एवं शनैश्चर की दृष्टि हो तो गर्भस्थ शिशु लंगड़ा होता है।

२. यदि नवमभाव में मंगल का द्रेष्काण हो उस पर पापग्रहों की दृष्टि हो तो गर्भस्थ शिशु के पैर नही होते है।

३. आधान लग्न में बुध या शनि हो और उस पर पापग्रहों की दृष्टि हो, तो हाथ पैर आदि रहित पिण्डाकार बालक का जन्म होता है।

यदि जन्मकुण्डली में निम्नलिखित योगों में से कोई एक योग हों तो जातक लंगड़ा या पंगु होता है।

१. मेष, कर्क, वृश्चिक, मकर तथा मीनराशि में (त्रिकोण भाव) पंचम या नवम स्थान में पापग्रह के साथ चन्द्रमा एवं शनि हो।

२. षष्ठ स्थान में सूर्य, मंगल एवं शनि की युति हो।

३. व्यय भाव में शनि एवं षष्ठेश हो तथा उन पर पापग्रहों की दृष्टि हो।

४. पापग्रहों के साथ चतुर्थ स्थान में अष्टमेश एवं नवमेश की युति हो।

५. कर्क राशि में स्थित चन्द्रमा एवं शनि की युति शुभग्रहों की दृष्टि से वंचित हो।

६. शनि एवं शुक्र एक साथ हों उन पर शुभग्रह की दृष्टि न हो।

७. सप्तमेश शनि किसी पापग्रह के साथ युति करें।

८. यदि नवमस्थान के द्रेष्काण में मंगल बैठा हो, और सूर्य, शनि तथा चन्द्रमा की दृष्टि हो तो जातक पाद-विहीन होता है।

९. यदि षष्ठ या अष्टम स्थान में बुध और मंगल दोनों एक साथ बैठे हो तो जातक के हाथ और पैर नष्ट होने की सम्भावना रहती है।

१०. यदि मंगल, शनि और राहु एक साथ षष्ठ भाव में बैठे हों तो जातक लंगड़ा होता है।

११. यदि शुक्र चतुर्थ स्थान में हो और बृहस्पति, शनि, मंगल तथा बुध एक साथ किसी भाव में हो तो जातक के कमर, हाथ और पांव आदि में विकलता होती है।

६.४.३ दुर्घटना से लंगड़ेपन के योग :-

वह आकस्मिक घटना, जिससे शरीर या उसके किसी अंग को आघात या हानि पंहुचती है, दुर्घटना कहलाती है। दुर्घटना के कारण पत्थर, हथियार या लकड़ी आदि के प्रहार से , ऊपर से गिर जाने या किसी भारी चीज के शरीर पर गिर जाने आदि से शरीर को चोट लगती है। इस प्रकार दुर्घटना एवं चोट से शरीर में होने वाली पंगुता का विचार निम्नलिखित ग्रहयोगों से किया जाता है।

१. शनि के साथ षष्ठेश लग्न या अष्टम स्थान में हो तो पैर में घाव होते है।

२. बुध, शनि एवं राहु दशम स्थान में हों तो पैर कट जाता है।

३. शनि लग्न में, राहु सप्तम में, शुक्र कन्या में तथा क्षीण चन्द्रमा सप्तम में हो तो हाथ एवं पैर दोनों कट जाते है।

४. पापग्रहों के साथ चतुर्थ स्थान में अष्टमेश एवं नवमेश की युति हो।

५. षष्ठस्थान में चन्द्रमा, मंगल तथा व्ययस्थान में सूर्य हो।

६. चन्द्र, मंगल, शनि की युति षष्ठ स्थान में हो।

७. षष्ठेश एवं शनि द्वादश भाव में पापग्रह से दृष्ट हो।

८. शुक्र एवं शनि की युति अथवा सप्तमेश शनि कर्क या सिंह लग्न में पापग्रहों से युति करें।

९. व्ययभाव में स्थित लग्नेश पर पापग्रहों की दृष्टि-युति जातक को लंगड़ा बना सकती है।

६.५ सारांश

इस इकाई में आप ज्योतिषशास्त्र के विविध व्याधि योगों के अन्तर्गत ‘‘अधो अंग रोगाधिकार’’ में जानु एवं पादरोग नामक शीर्षक से घुटनों में दर्द, पंगुता, सूखारोग, मुद्गर पाद, सायटिका या गृधसी, फीलपांव तथा पैर की दाद आदि अनेक पैरों के रोगों का अवलोकन करेंगे। जानु या पादरोगों में ऐसे रोग जो दिखते है। इन्हें दृष्टनिमितजन्य रोग भी कहा जाता है। यदि समय रहते इनका चिकित्सीय एवं ज्योतिषीय उपचार दोनों कर लिये जाएं तो इन्हें घातक होने से रोका जा सकता है। ज्योतिषशास्त्र में दशमराशि, मकरराशि एवं दशमभाव से जानुरोग का, कुम्भराशि एवं एकादशभाव से जंघारोग का विचार किया जाता है। मीनराशि एवं द्वादश भाव से पादरोग का विचार किया जाता है। मीनराशि एवं द्वादश भाव तथा शनि पैर का प्रतिनिधित्व करते है। यदि इन कारको पर पापग्रहों का प्रभाव हो या इनका षष्ठभाव रोगभाव से सम्बन्ध हो तो जानु या पैरों में विकार की सूचना देते है। परिणाम स्वरूप मनुष्य चलने फिरने लायक नही होता। इसके अतिरिक्त दुर्घटना या चोट से भी पंगुता अर्थात् पैरों के अंग भंग हो जाने के योग बनते देखे जाते है। जिन्हें आकस्मिक व्याधियां भी कहा जाता है। इसका प्रतिनिधि ग्रह मंगल माना गया है तथा राहु, केतु एवं अन्य पापग्रह उसके सहयोगी माने गये है। सूर्य को हड्डियों कारक माना जाता है। सूखारोग आदि पैरों के रोग हड्डियों की कमजोरी के कारण होते है। इन कारकों का अशुभ प्रभाव में आना या कारक ग्रहों का रोग स्थान या षष्ठेश से संबन्धित होना या नीच स्थान अथवा नीचराशि में उपस्थित होना जानु एवं पाद रोगों का कारण बनता है। इस प्रकार ज्योतिषशास्त्र में ग्रह, राशि एवं भाव तथा उसके सहायक तत्व युति, दृष्टि एवं सम्बन्ध का पापग्रह से योग का जानु एवं पादरोग का कारक होता है। ज्योतिषशास्त्र के अनुसार प्रत्येक ग्रह के शुभ और अशुभ दोनों ही प्रभाव मानव जीवन पर पड़ते हैं। जैसे प्रत्येक वरदान के पीछे कोई न कोई शाप भी छुपा होता है वैसे ही प्रत्येक ग्रह की अच्छाईयों के पीछे कोई न कोई समस्या अवश्य छुपी रहती है। इसलिए जन्मकुण्डली एवं प्रश्नकुण्डली के आधार पर शरीर के विविध रोगों का ग्रहयोगों के आधार पर विचार एवं निर्णय किया जाता है।

आप इस इकाई के अध्ययन से ज्योतिषशास्त्र के अनुसार ग्रह, राशि एवं भावों के आधार पर बनने वाले ग्रहयोगों से जानु एवं पाद रोगों का निर्णय करने मे सक्षम होगें।

६.६ अभ्यास प्रश्न

१. ज्योतिषशास्त्र के अनुसार पैरों का प्रतिनिधि भाव है?

(क) षष्ठ (ख) अष्टम (ग) द्वादश (घ) दशम

२. कौन सी राशि जलतत्व की कारक है ?

(क) मीन (ख) कुम्भ (ग) धनु (घ) मकर

३. वातदोष कारक कौन सा ग्रह है ?

(क) मंगल (ख) चन्द्रमा (ग) शनि (घ) बुध

४. पादरोग का प्रतिनिधित्व कौन सा ग्रह करता है?

(क) शनि (ख) चन्द्रमा (ग) शुक्र (घ) बुध

५. कौन से राशि से जानु रोग का विचार किया जाता है?

(क) कुम्भ (ख) मीन (ग) मकर (घ) वृश्चिक

६. दुर्घटनाजन्य रोग का कारक कौन सा ग्रह है ?

(क) मंगल (ख) बुध (ग) शुक्र (घ) गुरू

७. विटामिन डी की कमी से कौन सा रोग होता है ?

(क) श्लीपद (ख) सूखारोग (ग) पैरों में घाव (घ) ज्वर

८. इनमें कौन सी राशि शुष्क राशि है?

(क) कर्क (ख) तुला (ग) वृष (घ) मीन

९. षष्ठस्थान में किस ग्रह के कारण पैर का रोग होता है ?

(क) सूर्य (ख) शनि (ग) चन्द्र (घ) गुरू

१०. इनमें से सूखारोग का कारक ग्रह कौन सा है।

(क) शनि (ख) राहु (ग) सूर्य (घ) बुध

११. अपानरोग से क्या तात्पर्य है?

(क) गुदारोग (ख) मूत्ररोग (ग) चर्मरोग (घ) कुष्ठरोग

६.७ पारिभाषिक शब्दावली

श्लीपद - श्लीपद, फीलपांव या हाथीपांव ;थ्पसंतपेंपे वत म्समचींदजपेंपेद्ध रोग में व्यक्ति के पैर हाथी के पैर के समान फूलकर मोटे हो जाते है।

सूखारोग - सूखारोग ;त्पबामजे कपेमेंमद्ध हड्डियों का रोग है जो प्रायः बच्चों में होता है। जन्म के बाद बहुधा बच्चों के पैर घुटने के पास से मुड़े ;ठंदकल समहहमकद्ध होते है। बच्चों में हड्डियों की नरमाई या कमजोर होने को सूखारोग कहते है।

जीव - बृहस्पति, गुरू

मन्द - शनि

दुर्घटना - वह आकस्मिक घटना, जिससे शरीर या उसके किसी अंग को आघात या हानि पंहुचती है, दुर्घटना कहलाती है।

पंगुता - पैर का न होना या कट जाना लंगड़ापन्न अथवा पंगुता कहलाता है। अनेक बार ऐसे बच्चे का जन्म होता है, जिसका एक पैर चलने फिरने के लायक न हो। ऐसे बच्चों को पंगु कहते है।

दृष्टनिमितजन्य रोग - जिन रोगों का कारण को प्रत्यक्षरूप से जाना जा सकता है,

आयुर्वेद - जीवन का विज्ञान या जीवन से सम्बन्धित ज्ञान।

त्रिक स्थान - कुण्डली का षष्ठ, अष्टम एवं द्वादश भाव।

६.८ अभ्यास प्रश्नों के उतर

१. (ग) द्वादश

२. (ख) मीनराशि

३. (ग) शनि

४. (क) शनि

५. (ग) मकर

६. (क) मंगल

७. (ख) सूखारोग

८. (ग) वृषराशि

९. (ख) शनि

१०. (ग) सूर्य

११. (क) गुदारोग

६.९ संदर्भ ग्रन्थ सूची

ग्रन्थ नाम	प्रकाशन
१. जातकपारिजातः	चौखम्भा सुरभारती वाराणासी
२. सारावली	रंजन पब्लिकेशन्स नई दिल्ली - २
३. बृहत्पाराशरहोराशास्त्रम्	चौखम्भा सुरभारती वाराणासी
४. फलदीपिका	मोतीलाल बनारसीदास नई दिल्ली
५. प्रश्न मार्ग	रंजन पब्लिकेशन्स नई दिल्ली - २
६. ज्योतिष पीयूष	श्री वेदमाता गायत्री ट्रस्ट शान्तिकुंज हरिद्वार (उतराखण्ड) २४६४११
७. सुश्रुतसंहिता	मोतीलाल बनारसीदास नई दिल्ली
८. भावप्रकाशः	मोतीलाल बनारसीदास नई दिल्ली
९. चरक संहिता	मोतीलाल बनारसीदास नई दिल्ली

१०. ज्योतिषशास्त्र में रोग विचार मोतीलाल बनारसीदास नई दिल्ली

११. ज्योतिष-रतनाकर मोतीलाल बनारसीदास नई दिल्ली

६.१० निबन्धात्मक प्रश्न

१. जानु एवं पादरोग के कारकत्व का वर्णन करें ?

२. सूखारोग के कारक राशि एवं ग्रहों का वर्णन करें ?

३. पाद रोगों का ज्योतिषशास्त्र के अनुसार वर्णन करें ?

४. श्लीपद रोगकारक ग्रहयोगों का विवेचन करें ?

खण्ड-चतुर्थ
रोग विशेष

इकाई-01 अस्थिरोग

इकाई की संरचना

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 अस्थिरोग-एक परिचय
    1.3.1. अस्थिरोग के विविध प्रकार
1.4. अस्थिरोग के ज्योतिषीय कारण।
    1.4.1. अस्थिरोग का ज्योतिषीय उदाहरण
1.5 सारांश
1.6 पारिभाषिक शब्दावली
1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची
1.9 सहायक पाठ्य सामग्री
1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

इस संसार में प्रत्येक मानव अपने जीवन में समय-समय पर किसी ना किसी रोग से पीड़ित होता रहता है ,इसलिए शरीर को व्याधिमन्दिर कहा गया है, अर्थात् शरीर रोगों का घर है । प्रत्येक राष्ट्र , संस्कृति तथा सभ्यता में विविध प्रकार के शास्त्रों तथा विज्ञान के माध्यम से इन रोगों के परिज्ञान का प्रयास किया गया है। भारत में रोगों के परिज्ञान हेतु जिस शास्त्र की भूमिका सर्वोपरि रही है, उसका नाम आयुर्वेद है । आयुर्वेद के अतिरिक्त भी कुछ ऐसे शास्त्र है , जिनमें व्याधियों के कारण, और निवारण के विषय में चिन्तन किया गया है। ऐसे शास्त्रों में सर्वाधिक प्रमुख ज्योतिष शास्त्र है । ज्योतिष शास्त्र में विविध प्रकार के ग्रहयोगों के आधार पर मानव को उसके जीवन में होने वाली विविध व्याधियों तथा उनके काल के विषय में चिन्तन किया गया है । ज्योतिषशास्त्र में विविध ग्रहों की एक प्रकृति निर्धारित की गई है । ग्रहों,राशियों तथा भावों के आपसी संयोग के आधार पर इन ग्रहों की दशा-अन्तर्दशा तथा गोचर वशात् रोगों के समय तथा प्रकृति का परिज्ञान किया गया है ।

आधुनिक जीवन शैली के कारण आज जनसामान्य ऐसे रोगों से पीड़ित हो रहा है , जिसका स्पष्ट उल्लेख प्राचीन आचार्यों ने नहीं किया है, परन्तु इन रोगों का मूल कारण कहीं ना कहीं सूत्र रूप में अवश्य ही प्राचीन ज्योतिष तथा आयुर्वेद के ग्रन्थों मे प्राप्त होता है ।मानव को आधुनिक काल में जिन विशेष रोगों से पीड़ित होना पड़ता है, उनमें अस्थिरोग भी एक रोग है।

आधुनिक जीवनशैली के कारण आज का मानव अल्पायु में ही अस्थि रोग से पीड़ित होता दिखाई दे रहा है। आधुनिक मानव के शरीर की अस्थियों में मृदुता दिखाई देती है । इसका एक बड़ा कारण मिथ्याहार-विहार है । आज के समय में मनुष्य शुद्ध हवा-पानी को प्राप्त करने के लिए भी चिन्तित है ,फल- भोजन –दूध इत्यादि तो विविध प्रकार के कैमिकल से युक्त होकर ही प्राप्त होता है । जिसके कारण विविध प्रकार के अस्थिरोग होते है । इसके अतिरिक्त विविध प्रकार की सड़क दुर्घटनाओं में चोट इत्यादि लगने के कारण भी अस्थियों में विकारता तथा विकलांगता देखी जाती है । अतः इस रोग का अध्ययन आज के परिप्रेक्ष्य में अत्यन्त महत्वपूर्ण हो जाता है । प्रस्तुत इकाई में आप इस अस्थि रोग के विषय में अध्ययन करेंगे।

1.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप

- जान पाएँगे कि अस्थि रोग क्या है ?
- अस्थिरोगके चिकित्सकीय कारण क्या हैं ?
- अस्थिरोग के कौन-कौन से प्रकार है ?
- अस्थिरोग के ज्योतिषीय कारणक्या है ?
- अस्थिरोगसेसम्बंधित कुछ कुंडली विश्लेषणजान पाएँगें ?

1.3 अस्थिरोग-एक परिचय

जैसा कि आप जानते है कि मानव के शरीर में अस्थियां ही व्याप्त है। अतः इन अस्थियों में यदि कोई विकार उत्पन्न हो जायें अथवा ये अस्थियां अपना कार्य समुचित प्रकार से ना कर पाएं तो ऐसी स्थिति को अस्थि रोग की स्थिति कहते है। अस्थि रोग वस्तुतः मनुष्य के शरीर की विविधहड्डियों को प्रभावित करने वाली एक प्रकार की बीमारी या चोट होती है। इस रोग की उत्पत्ति मे अनेक कारण हो सकते है जैसे- शारीरिक चोट,फ्रैक्चर इत्यादि। यही चोटें बाद मे बीमारी का रूप ले लेती है और इन्सान पर हावी हो जाती है। मानव शरीर २०६ हड्डियों से मिलकर बना है। शरीर की हर हड्डी एक जटिल जीवित अंग है। सभी अस्थि पंजर मिलकर एक मजबूततथालचीला ढांचा बनाते है,जो शरीर को सहारा देताहै। ये अस्थिपंजर और मांसपेशियां साथ मिलकर कार्य करते हैं,जो कि शरीर को पैदल चलने,दौडने,हाथोंको विभिन्न तरह के काम करने आदि मे सहायक होते है।एक अस्थि का सम्बन्ध दूसरी अस्थि से जब होता है तो उसको अस्थियों की सन्धि कहा जाता है। साधारण बोल-चाल की भाषा में इसको जोड़ कहा जाता है। मिथ्या आहार-विहार के कारण मानव के शरीर की विविध अस्थियों में तो रोग उत्पन्न होने की सम्भावना रहती ही है , उसके साथ ही साथ जोड़ों में दर्द आधुनिक जीवन शैली के कारण उत्पन्न होने वाला सर्वाधिक जटिल रोग है। आज के समय में जैसे ही मनुष्य प्रौढावस्था की ओर उन्मुख होता है तो उसके शरीर के विविध जोड़ों में दर्द होने लगता है। आज से लगभग 25-30 साल पूर्व तक हमारे राष्ट्र में यह समस्या बहुत कम दिखाई देती थी,

परन्तु विगत कुछ वर्षों में प्रत्येक व्यक्ति किसी ना किसी रूप में इस समस्या से पीड़ित दिखाई देता है। कुछ वर्ष पूर्व तक मानव को शुद्ध हवा-पानी के साथ-साथ विविध प्रकार के भोज्य पदार्थ भी शुद्ध ही प्राप्त होते थे, परन्तु वर्तमान भौतिकवादी युग में प्रत्येक व्यक्ति अधिक से अधिक धन कमाने की इच्छा के चलते प्रत्येक पदार्थ की गुणवत्ता के विषय में बिल्कुल भी चिन्ता नही करता , विशेष रूप से विविध प्रकार के खाद्य पदार्थों में मिलावटखोरी की समस्या विकराल रूप धारण कर चुकी है , जिसका परिणाम मनुष्य को विविध प्रकार के रोगों के रूप में भुगतना पड़ता है। इन रोगों में सबसे प्रमुख रोग जोड़ों का दर्द ही है। वह जगह जहां दो या दो से अधिक हड्डियां मिलती है। उसे जोड (ज्वाईन्ट) कहते है। शरीर मे मुख्यतया दो तरह के जोड होते है।

१. चल २. अचल

अस्थि

↓

जोड

चल **अचल**

(स्वतन्त्र रूप से घूमने वाले जोड) (जो आगे जाकर लॉक हो जाते है। सभी दिशाओं मे

जैसे-कोहनी,कुल्ह,कन्धे आदि नही घूम सकते । जैसे-घुटना,जबडा इत्यादि

1.3.1.अस्थिरोग के विविध प्रकार

आज के युग में किसी भी रोग का सूक्ष्मेक्षया अध्ययन किया जाता है। अस्थि रोग का भी सूक्ष्म दृष्टि से अध्ययन किया जा रहा है। शरीर में ऐसे विविध प्रकार के रोग समय-समय पर प्रकट होते रहते है , जिनके मूल में कहीं ना कहीं अस्थियों में विकार ही है ।आपने अस्थिरोग क्या है ?इस विषय में जाना । अब इन अस्थि रोगों के विविध प्रकारों की चर्चा की जाएगी।

अस्थियों मे होने वाली विविध व्याधियां

१. हड्डियों और जोड़ोंमे संक्रमण

२. रीढ की हड्डी में क्षय रोग(टी.बी)

३. अस्थि मे कर्क रोग (बोन कैन्सर)

४. अस्थियों मे सूजन (स्पोन्डिलाईटिस)

५. अस्थिमृदुता (आसटीओमलेशिया)

६. जोड़ोंमे दर्द (आरथ्रेलजिया)

७. जोड़ोंमे सूजन/गठिया (अर्थराइटिस)

८. जोड़ोंमे चोट या मोच

१. हड्डियो और जोडो मे संक्रमण-

यह अस्थि रोग का प्रथम प्रकार है। आमतौर पर यह संक्रमण (इन्फैक्शन)त्वचा मे रहने वाले ई-कोलाई बैक्टीरिया की वजह से होता है और रक्त वाहिनियोंके जरिये यह बैक्टीरिया रीढ की हड्डी तक फैल जाता है।यहीं से यह बैक्टीरिया वर्टिबल डिस्क मे फैलने लगता है,जिससे डिस्क और उसके आस-पास के हिस्सों मे संक्रमण (इन्फैक्शन)हो जाता है। और डिसाइटिस होने का खतरा पैदा हो जाता है।अस्थि रोग का यह प्रकार सर्वाधिक दृष्टिगोचर होता है।

२. रीढ की हड्डी में क्षय रोग(टी.बी.)-

रीढ की हड्डी मनुष्य के शरीर का सर्वाधिक महत्वपूर्ण भाग है। यदि कहें कि मानव का जीवन इस रीढ़ की हड्डी पर ही आश्रित है तो अतिश्योक्ति नहीं होगी। रीढ की हड्डी हमारे शरीर का सबसे मुख्य अंग होता है जिससे हम झुकना और खड़ाहोने तक के महत्वपूर्ण कार्य करते हैं।रीढ की हड्डी मे टी.बी.होने के प्रारम्भिकलक्षणो मे कमर दर्द रहना,बुखार,वजन कम होना,कमजोरी या फिर उल्टी इत्यादि है। यह रोग सबसे पहले इंटर वर्टिबल डिस्क मे शुरु होता है और फिर रीढ की हड्डी मे फैलता है।

३. अस्थि मे कर्क रोग (बोन कैन्सर)-

कैंसर आधुनिक युग की अत्यन्त भयावह व्याधि है। केवल कैंसर के ही अनेक प्रकार आज दृष्टिगोचर होते है। बोन कैन्सर को चिकीत्सीय भाषा मे टय़ूमर और हिन्दी मे अस्थिकर्करोग कहते है। कर्क रोग का अर्थ है-बिमारियों का वह समूह जिसमें कोशिका का विकास और विभाजन अनियन्त्रित हो जाता है और वह तेजी से छाले (अल्सर) या गांठ या फूलगोभी (काम्पैक) के आकार मे बढने लगता है ।यह रोग सर्वाधिक गति से फैल रहा है।

४. अस्थियों मे सूजन (स्पोन्डिलाईटिस)-

स्पोन्डिलाईटिस एक प्रकार की सूजन होती है जो हमारेरीढ़के जोडो मे होती है। रीढ़कई जटिल जोड़ोंसे बनी होती है। यदि किसी भी जोड मे सूजन आ जाए तो हमें दर्द होने लगता है। जिसे स्पोन्डिलाईटिस कहते है।परिश्रम की न्यूनता तथा आधुनिक वर्क कल्चर के कारण महानगरों में यह व्याधि सर्वाधिक दिखाई दे रही है।

५. अस्थिमृदुता (आसटीयोमलेशिया)-

विज्ञान ने मनुष्य के जीवन को अत्यन्त सुखमय बना दिया है , जिसके कारण आधुनिक जीवनशैली में मनुष्य विविध प्रकार के शारीरिक श्रमों से दूर होता जा रहा है। न्यून शारीरिक श्रम के कारण शरीर को विविध प्रकार के पौष्टिक तत्त्वों की आवश्यकता भी प्रतीत नहीं होती। अतः उनकी अस्थियों में भी क्षीणता आने लगती है ।इसी को चिकित्सकीय भाषा में अस्थिमृदुता कहते है ।व्यसकों मे हड्डी के मुलायम होने कोअस्थिमृदुता ही कहते है। बच्चो मे इस रोग को "रिकेटस"कहते है। ये प्राय: विटामिन डी की कमी के कारण होताहै। इसरोगकेहोनेका कारणअस्थियों मे खनिज (मिनरलाइजेशन) पर्याप्त मात्रा मे नहीं होनाहै। यह कंकालतन्त्र का गम्भीर रोग है।

६. जोडो मे दर्द (आरथ्रेलजिया)-

जोड़हमारे कंकाल की दो या दो से अधिक हड्डेयों को जोड़ने का कार्य करते है। इनके कारण ही हमारा शरीर कुछ भी क्रिया कर सकता है। जोडो का दर्द -शरीर के जोड़ोंजैसे- घुटनों,कोहनी,कन्धों,कुल्होंकोप्रभावित करता है। इसके प्रमुख कारण है- कमजोर गर्म या सूजे हुए जोड़ ,जोडो मे अकड़न,जोड़ोंका चटकना इत्यादि।

७. जोडों मे गठिया (अर्थराइटिस)-

अर्थराइटिस जोड़ोंकी सूजन है। यह एक संयुक्त या एकाधिक जोड़ोंको प्रभावित कर सकता है । यह रोग १०० से अधिक प्रकार का होता है । अधिकतर दो प्रकार का प्रसिद्ध है-अर्थराइटिस और रूमेटोइड अर्थराइटिस। अर्थराइटिस जोडो के ऊतको की जलन और क्षति के कारण होता है । जलन के कारण ही ऊतक लाल,गर्म,दर्दनाक और सूज जाते है ।यह रोग विगत अनेक वर्षों से मनुष्य को पीड़ित कर रहा है ।

८. जोडो मे चोट या मोच-

आज की भाग-दौड़ वाली जीवन शैली में मानव के पास समय को छोड़कर शेष सब कुछ है । अतः समय के संरक्षण हेतु मनुष्य निरन्तर ही कम समय में अधिक से अधिक कार्य करने की चेष्टा करता है । जिसके कारण यदा कदा उसको चोटिल भी होना पड़ता है अथवा उसके पैर इत्यादि में मोच आने की सम्भावना भी रहती है। जोडो मे चोट या मोच लगने के कारण अस्थिबन्ध(लिगामेन्ट) की क्षमता प्रभावित हो जाती है जिससे मांसपेशियो मे सूजन शुरु हो जाती है और वही दर्द का मुख्य कारण होता है ।इसके अतिरिक्तजोड़ोंमे अकड़न,अधिक पानी होना,जोड़ोमे खून का स्राव होना ये सभी अस्थि रोगों के मुख्य कारण होते है ।

सन्धिशोध गठिया- ये रोग उन लोगो को अधिक प्रभावित करता है,जिनकी रोग प्रतिरोधक क्षमता कमजोर होती है। यह स्त्री और पुरुषोंदोनो प्रकार के जातकों को प्रभावित करता है ।इस रोग मे मुख्यतया शरीर के सन्धिभागो मे वेदना होती है।

इस प्रकार से आपने अस्थि रोग क्या है ?इसके विविध प्रकार कौन से है ?इस विषय में जाना । अब आप निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर प्रदान कर आपने अधिगम को पुष्ट कीजिए।

अभ्यासप्रश्न-1

निम्नलिखितप्रश्नोंमेंसत्य/असत्यकथनकाचयनकीजिए।

१-मनुष्य के शरीर में 206 अस्थियां हैं।

२-जोड़ 2 प्रकार के होतेहै ।

३- जोड़ों में कभी संक्रमण नहीं होताहै।

४- गठिया का सम्बन्ध हृदय सेहै।

५- विटामिन डी की कमी से अस्थि रोग होताहै।

1.4. अस्थिरोग के ज्योतिषीय कारण

ज्योतिषशास्त्र में प्रत्येक रोग का विश्लेषण ग्रहों की विविध प्रकार की स्थिति के माध्यम से किया जाता है। शरीर में पैदा होने वाले रोग के लिए प्रमुख रूप से जन्मकालिक ग्रहस्थिति ही उत्तरदायी होती है। मुख्य रूप से सूर्य को अस्थिकारक माना जाता है। अतः जन्म के समय सूर्य की निर्बलता मनुष्य के शरीर की अस्थियों में भी निर्बलता प्रदान करती है। इसके अतिरिक्त अनेकों प्रकार के ग्रहयोग है जो मनुष्य को विविध प्रकार के अस्थिरोगों से पीड़ित करते है। तद्यथा-

- जातक का जन्म रात्रिकाल काहो तथापञ्चमभाव मे सूर्य पापग्रहोंके मध्य स्थित हो तो जातक अस्थिरोगी होता है।
- द्वादश भाव मे सूर्य तथा षष्ठभाव मे चन्द्र हो तो अस्थिरोग होता है।
- जातक का जन्मदिन मेंहो तथा दग्धचन्द्र पर भौम की दृष्टि होने परअस्थिरोगहोता है।
- जातक का जन्मरात्रिकाल काहो और दग्ध चन्द्र पर केन्द्रस्थ शनि की दृष्टि होने पर जातक अस्थिरोगी होताहै।
- लग्न और सप्तमभाव के नवमांश मे पाप ग्रहों से पीड़ित चद्रमा हो तो यह रोग होता है।
- शनियुक्त चन्द्रमा षष्ठभाव मे स्थित हो तो यह रोग होता है।
- शनि-चन्द्र और भौम द्वादशभाव मे स्थित होने पर अस्थिरोगहोता है।
- मेष लग्न मे उत्पन्न जातक निर्बल घुटनो से युक्त होते है।
- सूर्य अस्थिकारक है अत: जन्मकाल में सूर्य के बलवान होने पर जातक की अस्थियां बलवान होती है तथा सूर्य के पीड़ित होने से अस्थियों की निर्बलता रहती है।

- भौम मज्जा का कारक है अत: जन्म कुण्डली मे भौम का बलवान् होना अस्थि में बलवत्ता का सूचक है तथा भौम कानिर्बल होना अस्थियों की निर्बलता को दर्शाता है।
- गुरु एवं लग्नेश यदि त्रिक भावों मे हो तो विविध प्रकार के अस्थि रोगों को देते है।
- दग्ध चन्द्रमा का शनि से ईसराफयोगहोने पर अस्थियों की सन्धिभागों मे पीड़ा होती है।
- सूर्य की महादशा मे शनि की अन्तर्दशा आने पर अस्थिरोग होता है।
- भौम की महादशा मे पीड़ित बृहस्पति की अन्तर्दशा आने पर अस्थिरोग होता है।
- राहु की महादशा मे केतु की अन्तर्दशा होने पर गठियारोग होता है।
- राहु की महादशा मे पीड़ित शुक्र की अन्तर्दशा होने पर गठियारोग होता है ।
- राहु मे शनि की अन्तर्दशा होने पर गठिया रोग तथा अस्थिसन्धियों मे वेदना होती है।
- शनि मे शनि की अन्तर्दशा होने पर गठिया तथा विविध प्रकार के अस्थिरोग होते है।
- बुध मे बुध की अन्तर्दशा होने पर क्रीडाक्षेत्र मे आघातवशात् अस्थिरोग होने की सम्भावना होती है।
- केतु की महादशा मे केतु की अन्तर्दशा होने पर यान दुर्घटना मे अस्थि टूटने का योग होता है।
- नीच राशिस्थ भौम को यदि सूर्य देखे अथवा नीच राशिस्थ सूर्य पर भौम की दृष्टि हो तो अकस्मात् दुर्घटना के कारण अस्थि टूटने की सम्भावना रहती है ।
- षष्ठभाव मे नीचस्थ सूर्य,भौम तथा शनि मे से कोई ग्रह स्थित हो तो जातक की पैर की हड्डी टूटती है।

- मीन राशि मे सूर्य,भौम,शनि षष्ठभाव मे स्थित हो जातक पैर से विकलांग होता है।
- तुलाराशिगत सूर्य पञ्चमभाव मे हो तो अस्थिभंग होता है।

इस प्रकार से ज्योतिषशास्त्र में अनेक ऐसे योग प्राप्त होते है , जिसके कारण मनुष्य को विविध प्रकार के अस्थिविकारों से पीड़ित होना पड़ता है ,परन्तु इस रोग का सम्बन्ध मुख्य रूप से अस्थिकारक सूर्य से है। चूंकि अस्थियां सम्पूर्ण शरीर में ही व्याप्त है अतः अपने विवेक से ही विविध ग्रहों तथा विविध भावों से सम्बन्ध स्थापित करते हुए विविध प्रकार के अस्थिरोगों का विचार करना चाहिए।

1.4.1 अस्थिरोग के ज्योतिषीय उदाहरण

नाम- अम्बरीश ऋषि

जन्मदिनाङ्क - 14.12.1987

जन्मसमय - 07.27 प्रातः

जन्मस्थान- रोपड़(पंजाब)

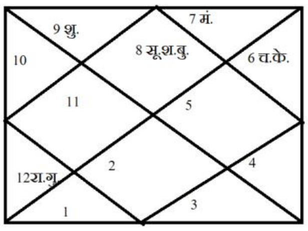

विश्लेषण-

प्रस्तुत कुण्डली अम्बरीश नाम एक युवा इंजीनियर की है , जिसको युवावस्था में ही कूल्हे की अस्थि में भयंकर वेदना के कारण अपनी नौकरी छोड़नी पड़ी। इसके अतिरिक्त उसके शरीर में विविध प्रकार के फ्रैक्चर की समस्या समय-समय पर उत्पन्न होती रहती है। इनकी जन्मकालिक स्थिति का विश्लेषण इस प्रकार है -

- मंगल लग्नेश होकर द्वादश भाव में स्थित है।
- अस्थिकारक सूर्य लग्न में शनि तथा अष्टमेश बुध से युत है।
- राहु की महादशा में शुक्र की अन्तर्दशा में अस्थिरोग का आरम्भ हुआ।
- चन्द्र की केतु के साथ युति भी अस्थिरोगकारक है।
- **नाम- कृष्णानन्द झा**

जन्मदिनाङ्क - 05.08.2002

जन्मसमय - 11.15 P.M.

जन्मस्थान- RANCHI

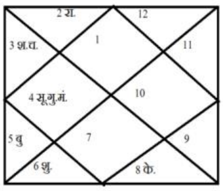

विश्लेषण-

प्रस्तुत कुण्डली कृष्णानन्द झा नाम के एक युवक की है। यह युवक अस्थियों के रोग से ग्रसित था। अस्थियों में रोग के कारण यह अपने दैनिक क्रिया-कलापों का सम्पादन भी यथोचित विधि से नहीं कर पाता था। विविध प्रकार की चिकित्साप्रणालियों का उपयोग करने के पश्चात भी यह बालक इस रोग से मुक्त नहीं हो पाया।इनकी जन्मकालिक ग्रह स्थिति का अध्ययन करने के पश्चात् निम्नलिखित ग्रहयोग इनकी कुण्डली में दृष्टिगोचर हो रहे है जो इनके स्नायु रोग का कारण है।

- जातक का जन्म मेष लग्न का है ,मेष लग्नोत्पन्न जातक घुटने के रोगों से सर्वदा पीड़ित रहता है।
- चतुर्थ भाव में मंगल नीच राशि का होने पर मज्जा दोष होने के कारण अस्थिरोग है।
- लग्नेश मंगल का नीचगत होना भी रोगप्रतिरोधक क्षमता में हानि करता है।
- चन्द्र का शनियुत होना भी अस्थिरोगकारक होता है।

अभ्यासप्रश्न-2

रिक्तस्थानोंकीपूर्तिकीजिए-

- शनि और चन्द्र की __________ भाव में स्थिति अस्थिरोगकारक हैं।
- __________ लग्न के जातक घुटनों के रोग से पीड़ित होते है।
- पञ्चम भाव में तुलाराशिगत______ग्रह अस्थिभंग कारक है।
- नीचराशिस्थ सूर्य पर _________ की दृष्टि अस्थिरोगकारकहै।
- राहुकी महादशा में ________ की अन्तर्दशा अस्थिरोगकारक है।

1.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन से आपने जाना कि अस्थिरोग किसे कहते है ?अस्थिरोग के चिकित्सकीय कारण क्या है ?अस्थि रोग के ज्योतिषीय कारणों से भी इस इकाई के माध्यम से परिचित हुयें। सभी ग्रहों में मुख्य रूप से सूर्य तथा मंगल का स्वनीचराशि में होना तथा इन पर पापग्रहों की दृष्टि होना तथा किसी भी प्रकार का पापप्रभाव होना जातक के शरीर की अस्थियों में निर्बलता को प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त राशिविशेष पर अथवा भावविशेष पर पाप ग्रहों का प्रभाव भी अस्थिरोग कारक माना जाता है। जो जो राशि तथा जो भाव जिस शरीराङ्ग का प्रतिनिधित्व करता हो , शरीर के उसी अंग की अस्थि में किसी ना किसी प्रकार से पीड़ा उत्पत्ति की सम्भावना रहती है। कुछ विशेष ग्रहों की महादशा में कुछ विशेष ग्रहों की अन्तर्दशा आने पर भी अस्थिरोगों से पीड़ा होने की प्रबल सम्भावना रहती है।

1.6 पारिभाषिक शब्दावली

- **स्पोन्डिलाईटिस** –अस्थियों में सूजन का आना ही स्पोन्डिलाईटिस रोग कहलाता है।
- **आसटीयोमलेशिया -** अस्थियों में मृदुता अर्थात् कमजोरी का आना ही आसटीयोमलेशिया रोग कहलाता है।
- **आरथ्रेलजिया** –जोड़ों में दर्द का होना ही आरथ्रेलजिया रोग कहलाता है।
- **अर्थराइटिस -** जोड़ों में गठिया रोग का होना अर्थराइटिस कहलाता है।

1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास-1 कीउत्तरमाला-

1.सत्य।

2.सत्य।

3.असत्य।

4.असत्य।

5.सत्य।

अभ्यास-2 की उत्तरमाला-

1.षष्ठ ।

2.मेष।

3.सूर्य।

4. मंगल।

5.शुक्र।

1.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

❖ ज्योतिष शास्त्र में रोग विचार,डॉ.शुकदेव चतुर्वेदी, मोतीलालबनारसीदास

❖ बृहज्जातक, उत्पलटीका, मोतीलालबनारसीदास,

❖ फलदीपिका, पं.गोपेशकुमारओझा, मोतीलालबनारसीदास

❖ लघुजातक, भट्टोत्पल-भारती टीका, चौखम्बा सुरभरती प्रकाशन, वाराणसी

❖ ज्योतिष और रोग, श्री कृष्ण कुमार, एल्फ़ा पब्लिकेशन रोशनपुर दिल्ली

❖ वीरसिंहावलोकः, पं श्री रामकृष्ण पराशरः, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

1.9 सहायक पाठ्य सामग्री

- अमरकोषः, अमरसिहं, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, वाराणसी
- बृहत्पाराशर-होराशास्त्रम्, सं. पं. देव चन्द्र झा, चौखम्बाप्रकाशन, वाराणसी
- ज्योतिष शास्त्र में रोग विचार,डॉ.शुकदेव चतुर्वेदी, मोतीलालबनारसीदास
- ज्योतिष और रोग, श्री कृष्ण कुमार, एल्फ़ा पब्लिकेशन रोशनपुर दिल्ली
- जातकालंकार, सं.डॉ. सत्येनद्रमिश्र, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी
- जातकपारिजात, श्रीवैद्यनाथविरचित, चौखंबा संस्कृत संस्थान, वाराणासी
- भुवनदीपक, डॉ. सत्येन्द्रमिश्र, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी
- लघुजातक, भट्टोत्पल-भारती टीका, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी

● वीरसिंहावलोकः, पं श्री रामकृष्ण पराशरः, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. अस्थिरोग का विस्तार से वर्णन कीजिये ?
2. अस्थिरोग के वैज्ञानिक कारण बताइए?
3. अस्थिरोग के ज्योतिषीय कारण को स्पष्ट कीजिये ?
4. अस्थिरोग का ज्योतिषीय विशलेषण उदाहरणपूर्वक करें।

इकाई-2 स्नायुरोग

इकाई की संरचना

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 स्नायुरोग-एक परिचय

2.4.स्नायुरोग के ज्योतिषीय कारण।

2.4.1.स्नायुरोग के ज्योतिषीय उदाहरण

2.5 सारांश

2.6 पारिभाषिक शब्दावली

2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

2.9 सहायक पाठ्य सामग्री

2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

मानव शरीर रोगों का घर है। समय-समय पर इस शरीर में विविध प्रकार के रोगों का उदय होता रहता है। इन रोगों का कारण शरीर में वात-पित्त-कफ का असन्तुलन तथा मिथ्या आहार-विहार है , जिसकी चर्चा आयुर्वेद के विविध ग्रन्थों में विस्तृत रूप से प्राप्त होती है । आयुर्वेद ऋग्वेद का उपवेद है । **आयुषो वेदः**आयुर्वेदः। वस्तुतः आयुर्वेद में मानव को होने वाले विविध रोगों के कारण,निवारण की चर्चा प्राप्त होती है । इसका वैशिष्ट्य है कि यहाँ आधुनिक चिकित्सा विज्ञान रोग के होने के बाद उस रोग के निवारण हेतु चिन्तन करता है , वहीं प्राचीन चिकित्सा विज्ञान ऐसी जीवन-चर्या का उपदेश करता है कि मनुष्य को किसी भी प्रकार के रोग से पीड़ित ही ना होना पड़े। जब से यह मानव सभ्यता है, तभी से ही मानव शरीर को विविध प्रकार के रोगों से पीड़ित होना पड़ता है। वर्तमान काल विज्ञान का काल है। इस युग में विविध प्रकार के वैज्ञानिक अविष्कारों के कारण मानव का जीवन अत्यन्त सुखमय बन गया है ,परन्तु इन विविध प्रकार के अविष्कारों ने यहां मानव को अनेक प्रकार के सुख-संसाधनों से सम्पन्न कर दिया , वहीं इन सुखों के कारण मानव की जीवन शैली में भी आमूल-चूल परिवर्तन हो गया है। आज महानगरों में रहने वाले कम आयु के युवा भी अनेकों ऐसे रोगों से पीड़ित होने लगे है, जिनके बारे में आज से कुछ वर्ष पूर्व तक हममें से अनेक लोगों से सुना तक भी नही था। इन रोगों का प्रमुख कारण महानगरीय जीवन शैली है। वर्तमान काल में लोग रात्रि में विविध प्रकार के कार्यों का सम्पादन करते है , उनकी नौकरी रात्रि में ही होती है , कई-कई घंटों तक रात रात भर कम्प्यूटर पर बैठ कर कार्य करना तथा अभक्ष्य का भक्षण करना अनेकों रोगों का जनक बन जाता है। इसी को आयुर्वेद ने मिथ्या आहार-विहार कहा है और यह मिथ्या आहार-विहार ही अनेक प्रकार के रोगों का कारण है। वर्तमान काल में, जब पैसे की होड़ लगी हुई है तो चाह कर भी इस आधुनिक जीवन शैली से स्वयं को पृथक रख पाना सरल नहीं है। इस जीवन शैली के कारण जिन भयंकर रोगों का सामना करना पड़ रहा है , उसमें से एक रोग स्नायु रोग भी है , जिसके विषय में आप इस इकाई में विस्तृत अध्ययन करेगें।

2.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप

- जान पाएँगे कि स्नायु क्या है ?
- स्नायुरोग किसे कहते हैं ?

- स्नायुरोग के कौन-कौन से प्रकार है ?
- स्नायुरोग के वैज्ञानिक कारण क्या हैं?
- स्नायुरोग के ज्योतिषीय कारणक्या है ?
- स्नायुरोग सम्बंधित कुछ कुंडली विश्लेषण?

2.3 स्नायुरोग क्या हैं ?

इस शरीर में सर्वत्र स्नायु ही व्याप्त है। इसको ही स्थानीय भाषा में नस कहते है तथा अग्रेंजी में NERVES कहते हैं। यदि शरीर के किसी भी भाग में कोई एक भी स्नायु प्रभावित होती है तो उसका प्रभाव सम्पूर्ण शरीर में दिखाई देता है। स्नायु रोग का सर्वाधिक प्रचलित प्रकार पक्षाघात है। इसका प्रमुख कारण स्नायुओं की शिथिलता ही है। स्नायुओं की शिथिलता के कारण मनुष्य का शरीर शिथिल हो जाता है , जिसके कारण किसी मनुष्य का आधा शरीर, किसी का हाथ, किसी का पैर मृत प्राय हो जाता है तथा वह चलने-फिरने में सक्षम नहीं रहता। आधुनिक काल में यह इतना गंभीर रोग है कि प्रत्येक 45 सेकण्ड में किसी ना किसी को स्नायु रोग के कारण रोगी होना पड़ता है। एक वर्ष में लगभग 700000 लोग एक वर्ष में स्नायु रोग के किसी ना किसी प्रकार से पीड़ित होते है। इतना ही नहीं,प्रत्येक 3 मिनट में विश्व में स्नायु रोग के कारण किसी ना किसी की मृत्यु हो जाती है। भारत में भी मृत्यु का दूसरा बड़ा कारण स्नायु रोग ही है।स्नायु रोग का सर्वाधिक प्रचलित प्रकार पक्षाघात है। दिमाग के किसी भाग में नसों में खून के जाम होने पर उस भाग को नुकसान पहुंच सकता है ,इसी को पक्षाघात कहते है। मस्तिष्क में रक्त के प्रवाह में कमी आने पर रक्त की आपूर्ति रुक जाती है या मस्तिष्क की कोई रक्तवाहिका फट जाती है , इसी को पक्षाघात अथवा स्ट्रोक कहते है।

स्नायुरोग के कारण दीर्घकालीन विकलांगता हो सकती है या फिर हाथ-पाँव काम करना बन्द कर सकते है।यदि कोई व्यक्ति उच्च रक्तचाप,मधुमेह,शूगर मोटापा तथा हृदय रोग से पीड़ित होता है तो स्नायुओं में विकार के कारण विविध प्रकार के रोग विशेषतः पक्षाघात होने की सम्भावना रहती है। न्नायु रोग का प्रमुख कारण पौष्टिक आहार का सेवन न करना,शराब, सिगरेट, तम्बाकू तथआ नशीली दवाओं का अत्यधिक मात्रा में सेवन करना है। शरीर की सक्रियता का ना होना भी स्नायु रोग का कारण बनता है। स्नायुओं की व्यापकता सम्पूर्ण शरीर में सर्वत्र होने के कारण शरीर के किसी भी अङ्ग में स्नायुओं में विकार हो सकता है। अतः आँख की स्नायुओं में विकार, अंगुलियों की स्नायुओं में विकार, जिह्वा की स्नायुओं में विकार, हस्त एवं पैर के स्नायुओं का विकार, शरीर के वाम अथवा दक्षिण भागों में स्नायुओं के विकार के

कारण विविध रोगों की उत्पत्ति होने पर शरीर के ये अङ्ग मुड़ जाते है तथा उनकी सक्रियता और क्रियाशीलता समाप्त हो जाती है । इसी को चिकित्सकीय भाषा में स्नायु विकार कहते हैं। यदा-कदा विद्युत का करंट लगने पर भी शरीर के विविध अङ्गों की क्रियाशीलता नष्ट हो जाती है और मनुष्य स्नायुविकारों से ग्रसित हो जाता है । इसी प्रकार से कभी-कभी जीवन में अत्यधिक प्रसन्नता अथवा अत्यधिक विषाद की स्थिति होने पर भी मनुष्य उस अतिवेग को सहने में असमर्थ हो जाता है तथा विविध प्रकार के स्नायु रोगों से ग्रसित हो जाता है । इसलिए हमारे आचार्ये ने अत्यधिक संग्रह को दोषपूर्ण माना है तथा सम्बन्धों में भी अत्यधिक आसक्ति न रखने की बात करते हुए समभाव से विचरण करने की प्रेरणा दी है। इसी प्रकार से किसी दुर्घटना या मार-पीट के कारण किसी अंगविशेष में गहरी चोट लग जाने के कारण उस अंग की क्रियाशीलता नष्ट हो जाती है । अंगों की इस निष्क्रियता का कारण भी उस अंग के स्नायुओं में किसी प्रकार की गहरी चोट का लगना है । अधिक ठंड लग जाने से भी अंगों में संज्ञाशून्यता आ जाती है। प्रायः जो लोग अत्यधिक ठंडे वातावरण में रहते है , उनके शरीर के स्नायुओं में विविध प्रकार के विकारों के कारण रोग उत्पन्न हो जाते है ।इसके अतिरिक्त तनाव भी स्नायुओं में विकार उत्पन्न होने का कारण बनता है ।विविध प्रकार के वात रोग भी स्नायुओं में विकार उत्पन्न करता है । आयुर्वेद तथा ज्योतिषशास्त्र के प्रसिद्ध ग्रन्थ वीरसिंहावलोक में स्नायु रोग का समावेश वातरोगाधिकार में किया गया है । वातरोग के उत्पन्न होने के कारणों में चिन्ता, शोक, मर्मस्थानों में चोट, नियमित रात्रि जागरण,अपनी शक्ति से अधिक व्यायाम करना, शोक व किसे दीर्घ काल तक रहने वाले रोग के कारण शारीरिक अक्षमता, अत्यधिक व्यस्ततम जीवनशैली, मलमूत्रादि वेगों को रोकना आदि अनेक ऐसे कारण है जो स्नायुओं में विकार उत्पन्न करते है , जिसके कारण स्नायुविकारजनित अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते है । तद्यथा-

रुक्षशीताल्पध्वन्नवयावायाति प्रजागरैः।

विषमादुपचाराच्च दोषासृक्सत्रवणादति।

लंघन प्लवनात्यर्थ व्ययाममतिचेष्टितैः।

धातूनां संक्षयाच्चिंताशोक रोगादिकर्षणात्।

वेगसंधारणाया,जचिझाचाज ङोजनाच।।

मर्मवेधापजोष्ट्राश्वशीघ्रयानापतर्पणात्।।

वस्तुतः शरीर में नसें एक बहुत बड़े जाल की तरह फैली हुई है और इन सभी का मूल स्त्रोत व नियन्त्रण मस्तिष्क द्वारा ही होता है। मस्तिष्क पर किसी भी प्रकार का आघात होने पर मस्तिष्क का नियन्त्रण इन नसों पर कमजोर पड़ने लगता है , जिसके कारण स्नायुओं में विकार उत्पन्न होने लगते है ।इसका प्रमुख कारण गहन चिन्ता है। आधुनिक जीवन शैली के कारण आज प्रत्येक व्यक्ति किसी ना किसी मानसिक तनाव में ही अपना जीवन व्यतीत कर रहा है। जिसके कारण युवावस्था में भी स्नायुविकार के कारण उत्पन्न रोग दिखाई देने लगे है। भारतीय ग्रन्थों में स्नायुओं में विकार के कारण उत्पन्न रोगों के विषय में विस्तृत चर्चा प्राप्त होती है। तद्यथा-

संकोचः पर्वणां स्तम्भो भंगोऽस्थनां पर्वणामपि।

लोमहर्षः प्रगल्पश्च पारिपृषठारीरोग्रहः।।

खोज्यं पांगुल्यकुब्जत्वे शोषोऽगानामनिद्रता।

गभ्रशुक्ररजोनाशः स्पन्दनं गात्रसुप्तता।।

शिरोनासाक्षिजत्रणां ग्रीवायाश्चापि मंजनम्।।

भेदस्तोदार्तिरक्षिपो मोहशचायास एव च ।।

अर्थात् प्रत्येक छोटी या बड़ी सन्धियों के जोड़ों में संकोच व खिचाव होता रहता है। जिसके कारण अस्थियों में विकार उत्पन्न हो जाता है ।रोमहर्षा खड़े हो जाते है ।हाथ,पैर और कमर,पीठ आदि भागों में जकड़न पैदा हो जाती है ।अंगशोध, अँग के सूखने पतले पड़ने की स्थिति पैदा हो जाती है ।स्पन्दन, गात्रसुप्तता, सिर व नासिका और नेत्रादि उर्ध्व प्रत्यंगो में जकड़न, खिंचाव तथा थकावट का अनुभव होना इसी स्नायुरोगों के प्रारम्भिक लक्षणों को बताता है।

अभ्यास प्रश्न-1

निम्नलिखित प्रश्नों में सत्य/असत्य कथन का चयन कीजिए।

स्नायु को अग्रेंजी में NERVES कहते हैं।
पक्षाघात स्नायु रोग का सर्वाधिक प्रचलित प्रकार है।
वीरसिंहावलोक संस्कृत व्याकरण का प्रसिद्ध ग्रन्थ है।
शरीर की नसों का नियन्त्रण मुख करता है।
मानसिक तनाव स्नायु रोग का प्रमुख कारण है।

2.4. स्नायुरोग के ज्योतिषीय कारण।

ज्योतिषशास्त्र का अध्ययन करने पर स्पष्ट होता है कि अधिकांश विद्वान मात्र छठे भाव को ही रोग का कारण मान लेते है, किन्तु शास्त्रों का गहन अध्ययन करने पर यह स्पष्ट होता है कि मात्र ६भाव को ही रोग का कारण नहीं माना जाता है। इस इकाई के अध्ययन से आप जानेगें कि स्नायु रोग के विचार के लिए कौन से ज्योतिषीय कारणों को उत्तरदायी माना जाता है।

पूर्वोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि स्नायु रोग का सम्बन्ध वात तन्त्रिकातन्त्र, रीढ़ की हड्डी तथा मस्तिष्क से है। जो जो ग्रह इनसे सम्बन्धित होता है वह वह ग्रह ही स्नायु रोग का कारण बनता है।सभी ग्रहों में से शनि एक ऐसा ग्रह हो जो विविध प्रकार की वात व्याधियों का कारक है। यथोक्तम्-

परुषरोमकचोऽनिलात्मा।

अतः वातरोगों का सम्बन्ध शनि से होने के कारण शनि ग्रह ही स्नायु रोगों का कारण बनता है। ज्योतिषशास्त्र के विविध ग्रन्थों में स्नायु रोग के विविध योगों की चर्चा प्राप्त होती है, जिनमें से कुछ योग अधोलिखित है-

- शनि के साथ चन्द्रमा का ईसराफ योग होने पर स्नायु विकार होने की सम्भावना रहती है।
- शनि के साथ क्षीण चन्द्रमा का ईसराफ योग हो।
- चन्द्रमा अस्तंगत हो।
- षष्ठेश पापाक्रान्त हो,गुरु से दृष्ट न हो तथा षष्ठभाव में पापग्रह हो।

इसके अतिरिक्त शेष ग्रहों में से शनि प्रमुख ग्रह है, जिसके दुष्ट होने पर, नीचस्थ होने पर, पापयुक्त होने पर, मंगल या सूर्य से दृष्ट हो तथा पीड़ित हो तो वातव्याधियां उत्पन्न हो जाती है। जलतत्व कर्कराशि में स्थित सूर्य पर शनि की दृष्टि के कारण भी विविध प्रकार के स्नायु रोग उत्पन्न हो जाते है।इसके अतिरिक्त भी कुछ प्रकार की अन्य ग्रह स्थितियां भी बनती है जो स्नायु रोग का कारण बनती है। तद्यथा-

- यदि किसी जातक के लग्न स्थान में शनि हो तथा त्रिकोण में अथवा सप्तम स्थान में मंगल हो तो भी स्नायुविकार से उत्पन्न व्याधियां हो जाती है।
- यदि लग्न स्थान में गुरु स्थित है और सप्तम स्थान में शनि स्थित होकर प्रथम भाव पर दृष्टि डाल रहा हो, तो स्नायु रोग उत्पन्न हो जाता है।
- षष्ठ भाव में शनि के स्थित होने पर जातक किसी ना किसी प्रकार से स्नायु रोग से पीड़ित रहता है।

- यदि व्यय भाव में शनि क्षीण चन्द्रमा से युक्त हो तो जातक विविध प्रकार की स्नायु विकार से जनित व्याधियों से पीड़ित रहता है।
- शनि ग्रह पर मंगल की दृष्टि होने पर भी जातक को स्नायु विकार से जनित रोगों से पीड़ा होती है।
- बृहस्पति के त्रिक स्थानों में होने पर विविध प्रकार के स्नायुविकार उत्पन्न होते है।
- बृहस्पति तथा लग्नेश दोनों ही का त्रिक स्थान में होना भी विविध प्रकार के स्नायुविकारों का कारण बनता है।
- कर्क राशि में स्थित चन्द्रमा पर मंगल की दृष्टि होने पर विविध प्रकार के स्नायुओं के विकार उत्पन्न होते है।
- सूर्य की महादशा में शुक्र की अन्तर्दशा भी शरीर में विविध प्रकार के स्नायुविकार उत्पन्न करती है।
- लग्नेश शत्रु या नीच राशि में हो,मंगल चतुर्थ भाव में हो तथा शनि पर पापग्रहों की दृष्टि होने पर विविध प्रकार के स्नायुविकार उत्पन्न होते हैं।
- सूर्य-चन्द्रमा एवं मंगल की युति एक ही भाव में हो, तो व्यक्ति को विविध प्रकार के स्नायुविकारों के कारण कष्ट भोगना पड़ता है।
- रात्रि का जन्म हो तथा पञ्चम भाव में पापाक्रान्त सूर्य भी स्नायुविकारों का जनक होता है।

इस प्रकार से ज्योतिषशास्त्र में अनेक ऐसे योग प्राप्त होते है , जिसके कारण मनुष्य को विविध प्रकार के स्नायुविकारों से पीड़ित होना पड़ता है ,परन्तु इस रोग का सम्बन्ध मुख्य रूप से वात प्रकृति से होने के कारण मुख्यतया शनि ग्रह के साथ है । अतः जन्म के समय शनि ग्रह की अशुभ स्थिति विविध प्रकार के स्नायुविकारों का कारण बनती है ।शनि स्नायुकारक ग्रह है । विशेष रूप से मकर तथा कुम्भ लग्न में शनि लग्नेश होकर नीच या पाप ग्रहों के युक्त या दृष्ट हो तो स्नायुविकार होने की प्रबल सम्भावना रहती है ।शनि के अतिरिक्त आत्मा का कारक सूर्य , मन-मस्तिष्क का कारक चन्द्रमा, रोग का कारक मंगल तथा शारीरिक पुष्टि का कारक बृहस्पति के साथ शनि का सम्बन्ध तथा इनकी अशुभ स्थिति शरीर में विविध प्रकार के स्नायु विकारों का कारण होती है ।इसके अतिरिक्त रोगेश, अष्टमेश, व्ययेश की विविध अशुभ भावों में स्थिति तथा रोगकारक ग्रहों के साथ इनका सम्बन्ध होने पर भी मनुष्य के शरीर में विविध प्रकार के स्नायु विकारों के

उत्पन्न होने की प्रबल सम्भावना रहती है। इन सभी ग्रहों की दशा-अन्तर्दशा में स्नायुविकारों की उत्पत्ति होने की सम्भावना रहती है।

2.4.1 स्नायुरोग के ज्योतिषीय उदाहरण

नाम- स्टीफेन हाकिंग

जन्मदिनाङ्क - 08.01.1942

जन्मसमय - 12.00 मध्याह्न

जन्मस्थान- आक्सफोर्ड (यू.के.)

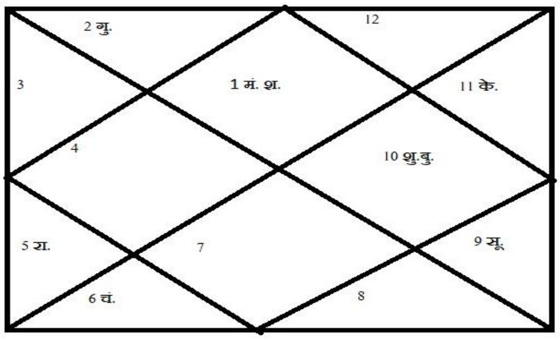

विश्लेषण-

प्रस्तुत कुण्डली प्रसिद्ध वैज्ञानिक स्टीफेन हाकिंग महोदय की है। वे स्नायु रोग से पीडित थे। वह इस रोग के एक प्रकार पक्षाघात से पीड़ित थे।

- षष्ठेश बुध एवं सप्तमेश शुक्र की मित्र शनि के घर में युति व उससे दृष्ट है।
- शुक्र और बुध सूर्य से द्वितीय भाव में है।
- लग्न में अष्टमेश मंगल स्थित है।
- द्वादशेश गुरु द्वितीयभाव में स्थित है।
- लग्न में मंगल के साथ शनि नीचराशि में स्थित है जो चन्द्र से अष्टमस्थ है।

नाम- मैक्स बरिटो

जन्मदिनाङ्क - 08.04.1971

जन्मसमय - 01.10 A.M.

जन्मस्थान- ABIDIJAN,IVORY COAST

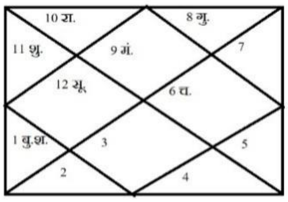

विश्लेषण-

प्रस्तुत कुण्डली अमेरिका के एक प्रसिद्ध रग्बी खिलाड़ी की है ,जो कि स्नायु विकार से ग्रसित है। इनकी जन्मकालिक ग्रह स्थिति का अध्ययन करने के पश्चात् निम्नलिखित ग्रहयोग इनकी कुण्डली में दृष्टिगोचर हो रहे है जो इनके स्नायु रोग का कारण है।

- द्वितीयेश तथा तृतीयेश शनि पञ्चम भाव में नीच राशि में है।
- लग्नेश बृहस्पति द्वादश भाव में स्थित है।
- लग्न में द्वादशेश मंगल की स्थिति है।
- चन्द्रकुण्डली में षष्ठेश शनि का अष्टम में नीचस्थ होना।

अभ्यास प्रश्न-2

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

- स्नायुरोग का मुख्य कारण __________ हैं।
- वातरोगों का मुख्य कारण __________ ग्रह है।
- चन्द्र के साथ शनि का ______योग स्नायुरोगकारक है।
- शनि पर _________ की दृष्टि स्नायुरोगकारक है।
- सूर्य की महादशा में ________ की अन्तर्दशा स्नायुरोगकारक है।

2.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन से आपने जाना कि स्नायुरोग किसे कहते है ?स्नायु रोग के चिकित्सकीय कारण क्या है ?स्नायुरोग का प्रमुख कारण वातरोग ही आयुर्वेदीय ग्रन्थों में कहा गया है। विविध प्रकार के वातरोगों के कारण शरीर की स्नायुओं में विकार उत्पन्न होने लगता है ,जो स्नायुरोग का कारण बनता है। इसके अतिरिक्त आधुनिक

जीवनशैली, अत्यधिक तनाव का होना, अत्यधिक ठंडे स्थानों पर रहना तथा किसी दुर्घटना के कारण शारीरिक अंगो के स्नायुओं में विकार उत्पन्न हो जाता है , जिसके कारण मनुष्य को विविध प्रकार के स्नायु विकारों का सामना करना पड़ता है । ज्योतिषीय दृष्टि से शनि ग्रह स्नायु रोग का सर्वाधिक प्रमुख कारक माना गया है क्योंकि शनि ग्रह ही विविध प्रकार के वातरोगों का कारक होता है अतः वातविकार के कारण ही विविध प्रकार के स्नायुरोगों की उत्पत्ति विविध आयुर्वेदीय ग्रन्थों में कही गई है। शनि के अतिरिक्त भी कुछ विशेष ग्रहों की जन्मकालिक स्थिति किसी जातक के जीवन में उसको स्नायुरोग होने की सूचना प्रदान करती है । दो कुण्डलियों के माध्यम से उसी ग्रहस्थिति को दर्शाया गया है । दोनों कुण्डलिया अत्यन्त प्रसिद्ध व्यक्तियों की है , जो कि स्नायुरोग से पीड़ित है । इनकी ग्रहस्थिति के आधार पर यह ज्ञात होता है कि ज्योतिषीय ग्रन्थों में कथित विविध ग्रहयोग निश्चित ही विविध स्नायुविकारों को सूचित करते है ।

2.6 पारिभाषिक शब्दावली

पक्षाघात –स्नायुविकार के कारण उत्पन्न होने वाला रोग, जिसमें शरीर का अंगविशेष निष्क्रिय हो जाता है।

ईसराफ- ज्योतिषीय ग्रहस्थिति के कारण बनने वाला योगविशेष ।

अस्तंगत –सूर्य के साथ ग्रह के स्थित होने पर उसमें बलहीनता का आना ।

रोगेश- षष्ठ भाव का स्वामी।

ग्रहयुति- दो या तीन ग्रहों का एक ही भाव में होना।

2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास-1 की उत्तरमाला-

सत्य।

सत्य।

असत्य।

असत्य।

सत्य।

अभ्यास-2 की उत्तरमाला-

वातविकार ।

शनिग्रह ।

ईसराफयोग।

मंगल।

शुक्र।

2.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. ज्योतिष शास्त्र में रोग विचार, डॉ.शुकदेव चतुर्वेदी, मोतीलाल बनारसीदास
2. बृहज्जातक, उत्पलटीका, मोतीलाल बनारसीदास,
3. फलदीपिका, पं.गोपेशकुमार ओझा, मोतीलाल बनारसीदास
4. लघुजातक, भट्टोत्पल-भारती टीका, चौखम्बा सुरभरती प्रकाशन, वाराणसी
5. ज्योतिष और रोग, श्री कृष्ण कुमार, एल्फ़ा पब्लिकेशन रोशनपुर दिल्ली
6. वीरसिंहावलोकः, पं श्री रामकृष्ण पराशरः, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

2.9 सहायक पाठ्य सामग्री

1. अमरकोषः, अमरसिहं, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, वाराणसी
2. बृहत्पाराशर-होराशास्त्रम्, सं. पं. देव चन्द्र झा, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी
3. ज्योतिष शास्त्र में रोग विचार, डॉ.शुकदेव चतुर्वेदी, मोतीलाल बनारसीदास
4. ज्योतिष और रोग, श्री कृष्ण कुमार, एल्फ़ा पब्लिकेशन रोशनपुर दिल्ली
5. जातकालंकार, सं.डॉ. सत्येनद्रमिश्र, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी
6. जातकपारिजात, श्रीवैद्यनाथविरचित, चौखंबा संस्कृत संस्थान, वाराणासी
7. भुवनदीपक, डॉ. सत्येन्द्रमिश्र, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी
8. लघुजातक, भट्टोत्पल-भारती टीका, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी
9. वीरसिंहावलोकः, पं श्री रामकृष्ण पराशरः, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. स्नायुरोग का विस्तार से वर्णन कीजिये ?
2. स्नायुरोग के वैज्ञानिक कारण बताइए?
3. स्नायुरोग के मुख्य कारण माने जाने वाले ज्योतिषीय कारण को स्पष्ट कीजिये ?
4. स्नायुरोग का ज्योतिषीय विशलेषण उदाहरणपूर्वक करें।

इकाई 03 स्त्रीरोग

इकाई की संरचना

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 स्त्रीरोग-एक परिचय
3.3.1 स्त्रीरोग के वैज्ञानिक कारण।
3.4.स्त्रीरोग के ज्योतिषीय कारण।
3.4.1.स्त्रीरोग के ज्योतिषीय उदाहरण
3.5 सारांश
3.6 पारिभाषिक शब्दावली
3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची
3.9 सहायक पाठ्य सामग्री
3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

वेद को भारतीय ज्ञान परम्परा के आदि स्रोत के रूप में ग्रहण किया गया है। वेदों के किल्ष्टार्थ के बोध हेतु वेदाङ्गों की रचना हुई । जिनका विन्यास वेदपुरुष के शरीर में किया गया । छः वेदाङ्गों में से वेदों के नेत्र स्थानीय वेदाङ्ग की संज्ञा ज्योतिषवेदाङ्ग है । प्राचीनकाल से ही ग्रह, नक्षत्र तथा अन्य खगोलीय पिंडों का अध्ययन जिस शास्त्र के अन्तर्गत किया जाता है, उस शास्त्र को ज्योतिषशास्त्र कहा जाता है ।

भारतीय चिन्तनधारा के आदिस्रोत के रूप में विद्यमान वेद को ही सभी शास्त्रों का मूल माना जाता है। ज्योतिषशास्त्र का मूल भी वेद ही है । ज्योतिष शास्त्र का प्राचीनतम ग्रंथ है "वेदांग ज्योतिष"। इसके प्रणेता आचार्य लगध को माना गया हैं। यह ग्रंथ ज्योतिष का आधार ग्रंथ है । ज्योतिषशास्त्र में दिग्-देश-काल को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है। इस शास्त्र का मूल सम्बन्ध कालगणना से है ।तद्यथा-

वेदा हि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः कालानुपूर्वा विहिताश्च यज्ञाः ।

तस्मादिदं कालविधानशास्त्रंयो ज्योतिषंवेद स वेद यज्ञान् ।।

वेदों के चार विभाग है- ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद । इन चार वेदों के चार उपवेद है । ऋग्वेद का उपवेद आयुर्वेद, यजुर्वेद का उपवेद धनुर्वेद, सामवेद का उपवेद गान्धर्ववेद तथा अथर्ववेद का उपवेद स्थापत्यवेद है । इन सभी वेदों,उपवेदों,उपनिषदों, वेदाङ्गों तथा वैदिक पृष्ठभूमि पर आधारित समस्त शास्त्रों का उद्देश्य मानव के जीवन को सुखमय तथा सुविधापूर्ण बनाना है । वेदों के नेत्रस्थानीय ज्योतिषवेदाङ्ग का भी मूल उद्देश्य मानव मात्र को इष्टप्राप्ति तथा अनिष्टपरिहार का उपाय करना है । मानव के लिए अनिष्टतम रोग ही है और इन रोगों के ज्ञान तथा निदान हेतु विविध आचार्यों ने विविध विज्ञानों तथा विविध विद्याओं के माध्यम से मानवकल्याण हेतु कार्य किया है, इन शास्त्रों में से योग, आयुर्वेद,मुद्राविज्ञान तथा ज्योतिषविज्ञान प्रमुख है । जब हम रोग के ज्ञान तथा निदान के विषय में चिन्तन करते है, तो सर्वप्रथम जो शास्त्र हमारे सम्मुख आता है –उसकी संज्ञा आयुर्वेद है, जिसका साक्षात् सम्बन्ध ऋग्वेद से है । आयुर्वेद ऋग्वेद का ही उपवेद है ।वस्तुतः आयुर्वेद को भारतीय चिकित्सा पद्धति का आधार माना जाता है जिसमें भारतीय ऋषियों ने अपने वर्षों के अनुभव के आधार पर विविध रोगों के ज्ञान तथा निदान के विविध सिद्धान्तों को लिपिबद्ध किया है । आयुर्वेद में शरीर को रोगों का घर मानते हुए कहा गया है-

" शरीरम् व्याधि मन्दिरम् "

वस्तुतः मानव शरीर में रोग बडे सुख से रहते है तथा उसी प्रकार प्रकाश में आते है, जिस प्रकार ऋतु आने पर वृक्षों पर फल और फूल दृष्टिगोचर होते है। मानव शरीर में रोग का मुख्य कारण त्रिदोषों की विषमता है। आयुर्वेद में त्रिदोषों की विषमता ही व्याधियों का मुख्य कारण मानी गई है। ज्योतिषशास्त्र में भी किसी मनुष्य को होने वाली विविध व्याधियों के सम्बन्ध में विचार किया गया है। ज्योतिषशास्त्र के विविध आचार्यों के मतानुसार सूर्योदि नव ग्रह वात-पित्त-कफादि त्रिदोषों का प्रतिनिधित्व करते है।आयुर्वेद तथा ज्योतिष दोनों ही शास्त्र मिलकर विविध रोगों के ज्ञान और निदान में अपनी भूमिका का निर्वहण करते है। इस प्रकार यदि कहा जाए कि रोगोपशमन की दृष्टि से ये दोनों ही शास्त्र एक-दूसरे के पूरक है तो अतिशयोक्ति नहीं होगी । आयुर्वेद जिन तत्त्वों के आधार पर किसी व्यक्ति को होने वाले विविध रोगों के सम्बन्ध में चिन्तन करता है, उन तत्त्वों में से एक तत्त्व काल-सम्प्राप्ति भी है। काल का ज्ञान ज्योतिषशास्त्र के अधीन है, जिसके माध्यम से हम यह जान सकते है कि किसी व्यक्ति की जन्मकालिक ग्रहस्थिति के आधार पर उसको अपने जीवन काल में किस-किस समय में किन-किन रोगों से पीडित होना पडेगा ? जन्मकालिक ग्रह मनुष्य को अपने जीवन में प्राप्त होने वाले शुभाशुभ फल के सूचक होते हैं। ये उन कर्मों की सूचना देते हैं, जो उसने अपने जन्म-जन्मान्तरों में किये हैं। पूर्वजन्म में किये गये पाप कर्मों के कारण इस जन्म में मनुष्य को विविध प्रकार के रोगों के कारण कष्ट भोगना पडता है। यथोक्तम्-

" जन्मान्तरकृतं पापं व्याधिरूपेण जायते "

पूर्वजन्म के पाप कर्मों के कारण उत्पन्न होने वाले इन रोगों को कर्मज रोग या कर्मज व्याधियां कहा जाता है।यथोक्तम-

" कर्मजा व्याधया: केचित् दोषजा सन्ति चापरो "

इन कर्मज व्याधियों के कारण होने वाले रोगों के ज्ञान तथा निदान हेतु ज्योतिषशास्त्र की महत्वपूर्ण भूमिका है।ज्योतिषशास्त्र के विविध ग्रन्थों में ग्रहों के कारण होने वाले विविध रोगों का विस्तृत विवेचन प्राप्त होता है। प्रश्नमार्ग नामक ज्योतिषशास्त्रीय ग्रंथ में सूर्य से सम्बन्धित दोष को प्रतिपादित करते हुए लिखा गया है कि सूर्य ग्रह यदि कुंडली में रोग का कारक ग्रह हो तो वह जातक के शरीर में पित्त, उष्णता, ज्वर, ताप आदि का भय उत्पन्न करता है।

इस प्रकार से ज्योतिषशास्त्र के अध्ययन के उपरान्त हम विविध ग्रहों से होने वाले रोगों के विषय में जान सकते है। मानव इस सृष्टि की सर्वोत्तम रचना है। मानवों में भी स्त्री को ईश्वर की अनुपम कृति माना जाता है क्योंकि स्त्री न केवल

विधाता की एक सृष्टि मात्र है, अपितु स्त्री विधाता की ही तरह सृष्टि की संरचना करती है। वह अपने गर्भ से सन्तानोत्पत्ति करती है। स्त्री का शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य ठीक होने पर ही वह उत्तम सन्तानोत्पत्ति कर सकती है। अतः आयुर्वेद तथा ज्योतिषशास्त्र के आचार्यों ने विविध स्त्री रोगों के विषय में गम्भीरता से चिन्तन करते हुए इन रोगों के ज्ञान तथा निदान का विचार किया है। प्रस्तुत इकाई में इन्हीं स्त्री रोगों के विषय में चिन्तन किया गया है। प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उद्देश्य निम्नलिखित है -

3.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप जान पाएँगे

- ग्रहों तथा रोगों का क्या सम्बन्ध है?
- स्त्रीरोग किसे कहते हैं ?
- स्त्रीरोगों में किन-किन व्याधियों का समावेश किया गया है?
- स्त्रीरोगों के वैज्ञानिक कारण क्या हैं?
- स्त्रीरोगों के ज्योतिषीय कारण क्या है ?
- जन्मकुण्डली से स्त्रीरोगों का विश्लेषण कैसे किया जाता है?

3.3 स्त्रीरोग – संक्षिप्त परिचय

जैसा कि आपने जाना कि स्त्री को परिवार और समाज का मूल आधार माना गया है अतः स्त्रियों को स्वास्थ्य के विषय में चिकित्सा विज्ञान की प्रत्येक पद्धति में गम्भीरता से विचार किया गया है। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट हो जाता है किस्त्रीरोग का तात्पर्य स्त्रियों/महिलाओं से सम्बन्धित रोगों से है। महिलाओं में होने वाले शारीरिक परिवर्तनों के कारणउनको होने वाले विभिन्न रोगों का समावेश इसके अंतर्गत लिया जाता है। ये रोग ऐसे रोग है जो पुरुषों में नहीं पाए जाते, अपितु स्त्रियों की शारीरिक संरचना के कारण उन्हीं को इन रोगों से कष्ट तथा पीडा का अनुभव करना पडता है।

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में स्त्रीरोगों को एक पृथक् विभाग के रूप में लिया जाता है, जिसमें अध्ययन करने वाले छात्रों को स्त्रीरोगविशेषज्ञ (Gynecologists) कहा जाता है। वस्तुतः यह आधुनिक चिकित्सा विज्ञान का वह खण्ड है जिसमें स्त्रियों से सम्बन्धित रोग, उनकी शारीरिक संरचना से सम्बन्धित रोग तथा उनके सम्पूर्ण चिकित्सीय विषय का समावेश किया जाता है।सामान्य रूप से देखा जाए तो महिलाओं से सम्बन्धित वे बीमारियाँ जो किसी प्रकार से प्रजननपथ को आघात व

उनमें विकार को शामिल करती है स्त्री रोग की श्रेणी में आती है। यह सामान्य पीड़ा से लेकर घातक ट्यूमर जैसी भयानक बीमारी तक हो सकती है। विशेषज्ञों का मानना है कि अधिकतर मामले सामान्य होते हैं, जिनका उपचार शीघ्र किया जा सकता है, किन्तु कुछ बड़ी व भयंकर बीमारियाँ भी हो जाती हैं जो बहुत सी जटिल समस्याओं को जन्म देती हैं।

स्त्रीरोग के विविध प्रकार

किसी भी रोग को जानने के लिये उसके कारण और लक्षण को जानना आवश्यक होता है,परन्तु चिकित्सा विज्ञान के अनुसार यह माना जाता है कि किसी भी रोग की उत्पत्ति के पीछे कोई एक कारण नहीं होता, अपितु एकाधिक कारण होते है। इन समस्त कारणों के विषय में चर्चा चिकित्सा शास्त्र में की जाती है। कुछ रोगों के कुछ विशेष परिस्थतियों में विशेष कारण भी हो सकते है, जिसके कारण उन रोगों की प्रकृति में भी अन्तर दिखाई देता है।

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान महिलाओं में होने वाली किन-किन समस्याओं को स्त्रीरोग की श्रेणी में रखता है, उसका विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि चिकित्सा विज्ञान अनेक रोगों को स्त्री रोगों की श्रेणी में समावेशित करता है तथापि कुछ मुख्य रोगों को यहाँ स्पष्ट किया जा रहा है जिनसे वर्तमान में ९०% महिलाएँ पीड़ित रहती हैं। १० में से लगभग ९ महिलाएँ अपने सम्पूर्ण जीवनकाल में एक बार तो इन शारीरिक कष्टों से अवश्य ही पीडित होती हैं। इन प्रमुख स्त्री रोगों का वर्णन इस प्रकार से है -

- **कष्टार्तव** (Dysmenorrhea)
- **अंडाशय पट्टिका** (Ovarian Cysts)
- **एंड्रोमेट्रियोसिस** (Endometrioses)
- **पी.सी.ओ.डीअथवा पॉलीसिस्टिक डिंबग्रंथ रोग** (PCOD or Polycystic Ovarian)
- **मूत्र पथ संक्रमण**UTI (Urinary Tract Infection)
- **गर्भाशय फ़ाइब्राएड** (Uterine Fibroids)

यह कुछ मुख्य रोग हैं जिनका समावेश स्त्रीरोगोंके अंतर्गत किया जाता है। यद्यपि इनके अतिरिक्त भी अनेक ऐसे रोग है, जिनको स्त्री रोगों की श्रेणी में गिना जाता है,परन्तु पूर्वोक्त रोग वे रोग है, जो स्त्रियों में बहुतायत से पाये जाते हैं। इन रोगों के

कारण अपनी उम्र के विविध पडावों पर स्त्रियों को पीडा का सामना करना पडता है। ये रोग इस प्रकार से है-

- **मासिक धर्म सम्बन्धी विकार।**
- **परिवार नियोजन सम्बन्धी विकार।**
- **रजोनिवृत्ति सम्बन्धी विकार।**
- **श्रोणितल विकार।**
- **बाँझपन।**
- **प्री-मेन्स्ट्रूअल सिंड्रोम।**

अभ्यासप्रश्न-1

निम्नलिखितप्रश्नोंमेंसत्य/असत्यकथनकाचयनकीजिए।

६- षड्वेदाङ्गों में ज्योतिष को कान की श्रेणी में रखा गया है?

७- स्त्रीरोग का तात्पर्य महिलाओं को होने वाले रोगों से है?

८- आयुर्वेद का सम्बन्ध ऋग्वेद से नहीं है?

९- एंड्रोमेट्रियोसिस स्त्रीरोग के अंतर्गत नहीं आता?

१०- कष्टार्तव को स्त्रीरोग माना जाता है?

3.3.1. स्त्रीरोग के वैज्ञानिक कारण

चिकित्सा विज्ञान इस बात को स्पष्टरूप से मानता है कि जब भी हम किसी रोग के मूल कारण तक जाते हैं तो मूल में उस रोग के तीन ही मुख्य स्रोत सामने आते हैं। तद्यथा-

१- वंशानुक्रम
२- जन्मकालिक
३- संक्रमण

यही तीन कारणस्त्रीरोगों के लिये भी उत्तरदायी हैं, एक महिला होने के नाते कुछ विशेष शारीरिक परिवर्तनों का सामना उनके शरीर को करना पडता है। जिसमें हम मासिक धर्म, गर्भधारण को प्रमुख रूप सेरख सकते हैं। यह एक ऐसा परिवर्तन है जो स्त्री जाति के अतिरिक्त अन्य किसी में नहीं पाया जाता। विभिन्नशोधपत्रों का

अध्ययन करने पर यह स्पष्ट होता है कि महिलाओं में रोग का प्रमुख कारण संक्रमणही है ।इसमें स्त्रीरोग का प्रथम कारण रक्तस्राव की अनियमितता को माना जाता है । जब भी मासिक धर्म अपने नियमित सीमा चक्र से भटकता है तो शरीर मेंविविध व्याधियों को उत्पन्न करता है तथा द्वितीय कारण ख़मीर संक्रमण Yeast Infection है। यह एक इस प्रकार का संक्रमण है जिसके विषय में वैज्ञानिकों का मानना है कि प्रत्येक १० महिलाओं में से ९ महिलाओं को अपने जीवन काल में एक बार किसी न किसी प्रकार के संक्रमण का सामना करना ही पड़ता है ।

इसकेकारणों में गर्भावस्था, अनियमित मधुमेह तथा गर्भनिरोधक दवाओं का अत्याधिक सेवन प्रमुख है । इसके साथ ही विभिन्न सुगंधित पदार्थ, रोगाणुरोधक सेंट,शारीरिक सज्जा हेतु विविध सौदर्य प्रसाधनों का अत्यधिक उपयोग तथा फैशन के नाम पर असहज वस्त्रों का प्रयोग भी कारण है ।

3.3.3. स्त्रीरोग के ज्योतिषीय कारण

ज्योतिषशास्त्र का अध्ययन करने पर स्पष्ट होता है कि छठे भाव को प्रमुख रूप से रोग का कारण माना जाता है, किन्तु ज्योतिषशास्त्र के गहन अध्ययन करने पर यह स्पष्ट होता है किमात्र छठाभावही रोग का कारण नहीं अपितु उसके साथ ही अन्य भी कई भाव हैं जिनसे रोग का विचार किया जाता हैं। भारतीय ज्योतिष के अनुसार किसी भी रोग के ज्ञान हेतु निम्नलिखित भावों पर विशेष रूप से ध्यान देना आवश्यक होता है।

- **षष्ठ भाव** (कुंडली का ६ भाव)
- **त्रिषडाय भाव** (कुंडली का ३-६-११ भाव)
- **त्रिक भाव** (कुंडली का ६-८-१२ भाव)
- **लग्नाधि योग** (कुंडली का ६-७-८ भाव)

इन उपरोक्त भावों को किसी भी रोग के लिये कारक माना जाता है तथा इनमेंसे छठे भाव को विशेष कारक इसलिए माना जाता हैक्योंकिछठे भाव की गणना उपरोक्त चारों भेदों में की जाती है, इसलिए ही इस भाव को रोग का मुख्य कारक भाव माना जाता है।

अब कुछ ज्योतिषीययोगों को जानते हैं, जिनसे स्त्रीरोगों को जाना जा सकता है।

- सप्तम भाव में मंगल का नवमांश हो तथा उसपर शनि ग्रह दृष्टिपात कर रहा हो।

- यदि किसी स्त्रीका जन्म निम्न तिथि- वार और नक्षत्र में हो तो

नक्षत्र	**वार**	**तिथि**
आश्लेषा	रविवार द्वितीया	
कृतिका	शनिवार	सप्तमी
शतभिषा	मंगलवार	द्वादशी

- लग्न में एक शुभ ग्रह तथा एक पापग्रह हो तथा छठे भाव में दो पाप ग्रहों की युति हो।
- सप्तमेश पाप ग्रह की राशि में पाप ग्रह के साथ हो।
- वृश्चिक राशि में शुक्रबैठेहों।
- किसी स्त्री के विवाह के समय मंगल अष्टम स्थान पर हो वह प्रदररोग से ग्रसितहोती है।

ज्योतिषशास्त्र में सूत्र रूप में इन विषयों को स्पष्ट किया गया है, तथा यहाँ योनि शब्द का तात्पर्य केवल vagina से नहीं है अपितु समस्त प्रजनन संस्थान सेकिया गया है। आचार्य चरक ने अपने ग्रंथ में स्पष्ट रूप से लिखा है कि योनि से सम्बंधित रोग २० प्रकार के हो सकते हैं तथा इसी संख्या को अन्य आचार्यो ने भी सही माना है।

“ विंशति: व्यापदो योनौ निर्दिष्टा रोग संग्रहे

आचार्य माधव ने बड़ी ही सुलभता से समस्त २० योनि विकारों को पाँच श्रेणियों में विभाजित किया है। इसमें वातपित्त आदि भेद से २० योनि रोगों को पाँच विभागों में विभक्त किया गया हैं।

१- **वातज-**उदावर्ता, विप्लुता, परिप्लुता, नष्टार्तवा, वातला।
२- **पित्तज-** लोहितक्षया,वामिनी, प्रस्रंसिनी, पुत्रघ्नी, पित्तला।
३- **कफज-** अत्यानंदा, कर्णिनी, अचरणा, अतिचरणा, श्लेष्मला।
४- **मिश्रिपातज-** षण्ड़ी, अण्डली, विवृता, सूची मुखी, त्रिदोषला।

3.4.1 स्त्रीरोग के ज्योतिषीय उदाहरण

आपने विविध स्त्रीरोगों के वैज्ञानिक तथा ज्योतिषीय कारणों के विषय में आपने पढा। अब पूर्वोक्त स्त्रीरोगों के ज्योतिषीय योगों को आप निम्न कुण्डली चक्रों के माध्यम से

समझेंगे। विविध रोगों के योगों के परिज्ञान हेतु विविध कुण्डलियों का विश्लेषण किया जा रहा है।

श्वेतप्रदर (Leucoria) –यह एक स्त्रीरोग है जिसमें महिलाएँ कटि पीड़ा, वस्ति पीड़ा, जरायु शोथ आदि के कारण दुर्बलता व कष्ट प्राप्त करती हैं, साथ ही योनिमार्ग से द्रव्यस्रावित होता रहता है। इस रोग के ज्योतिषीय योगों के उदाहरण स्वरूप अधोलिखित कुण्डली का विश्लेषण किया जा रहा है।

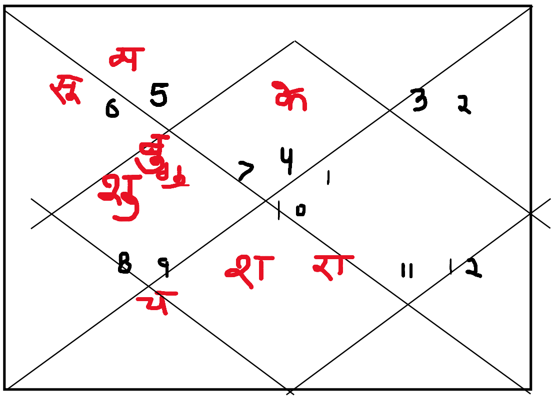

विश्लेषण-

- लग्नेश छठे भाव में बैठा है।
- लग्न भाव पर सप्तमेश व अष्टमेश शनि तथा राहु की सप्तम दृष्टि पड़ रही है।
- चंद्र कुण्डली में षष्ठेश शुक्र तथा सप्तमेश बुध की युति एकादश भाव में लग्नेश के साथ हो रही है।
- लग्न से सप्तम भाव में दो पाप ग्रह शनि और राहुकी युति एक साथ हो रही है।
- लग्न कुण्डली में रोगेश के साथ, व्ययेश की युति तथा साथ ही पाप ग्रह की अशुभ दृष्टि हो।
- सप्तम भाव में दो पाप ग्रहों की युति तथा साथ ही कारक ग्रह शुक्र पर पाप दृष्टि।

इसी प्रकार से प्रदररोग की कुछ ग्रह स्थितियों को आप निम्न कुण्डली चक्र के माध्यम से सरलता से समझ सकते हैं।

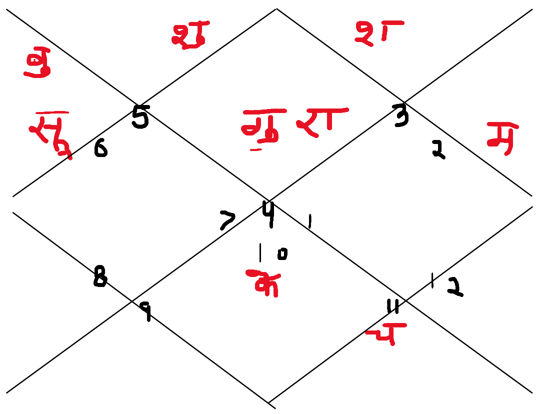

११-१०-१९९४

१:०० am, दिल्ली

विश्लेषण- (प्रदर रोग)

- षष्ठेश गुरु का लग्न में राहु के साथ बैठ कर पीड़ित होना।
- व्यय भाव में स्थित शनि अपनी दशा में सप्तम व अष्टम भाव का फल देने वाला होता है।
- चंद्र कुंडली में सप्तमेश और अष्टमेशकी अष्टम भाव में युति होना।
- चंद्र कुंडली में मंगल,शनि दोनों पाप ग्रहों की सप्तम दृष्टि सप्तम भाव पर पड़ रही है।
- शनि की दशा में इस रोगसे पीडित होने के योग हैं।

इसी प्रकार से निम्न कुण्डली चक्र के विश्लेषण से आप गर्भाशय से सम्बन्धित रोगों के विविध योगों को जानेंगे।

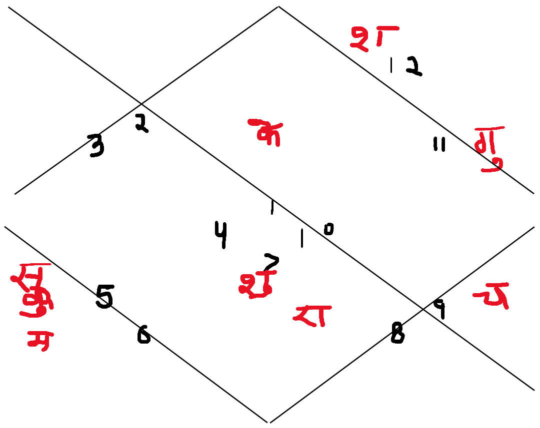

४-९-१९३८

९:४१, छपरा बिहार

विश्लेषण- (गर्भाशय से सम्बंधित रोग)

- लग्न में केतु की युति व राहु शुक्र की सप्तम दृष्टि है।

- षष्ठेश बुध की व अष्टमेश मंगल की युति है तथा साथ ही व्ययेश गुरु की दृष्टि है।
- व्यय स्थान पर शनि के होने से छठे भाव व चंद्रमा पर शनि की दृष्टि रोग उत्पन्न करती है।
- चन्द्र कुंडली में अष्टमेश लग्न में बैठा है साथ ही षष्ठेश शुक्र राहु के साथ बैठा है।
- चंद्र कुंडली में सप्तमेश बुध का सूर्य मंगल (व्ययेश) के साथ युति रोग को स्पष्ट करती है।

यदि किसी की जन्मकुण्डली में पूर्वोक्त योग विद्यमान हो तो ऐसी जातिका को गर्भाशय से सम्बन्धित रोग होने की प्रबल सम्भावना होती है। इसी प्रकार से निम्न कुण्डली में स्थित ग्रहों के विश्लेषण से किसी स्त्री की योनि में अल्सर के रोग की सम्भावना का परिज्ञान किया जा रहा है।

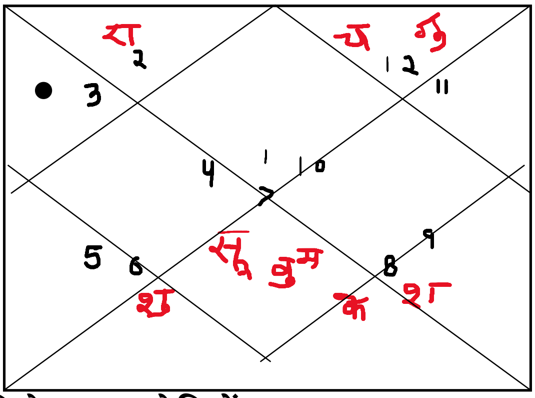

विश्लेषण- (योनि में अल्सर)

- सप्तम भाव में नीच राशि का सूर्य, अष्टमेश मंगल और षष्ठेश बुध की युति है जो सीधा सप्तम दृष्टि से लग्न को देख रहे हैं।
- अष्टमेश मंगल और षष्ठेश बुध की युति है जो सीधा सप्तम दृष्टि से लग्न को देख रहे हैं।
- बाधापति शनि अष्टम स्थान पर है और उसपर व्ययेश बृहस्पति तथा राहु की भी दृष्टि है जो गुप्तांग से सबंधित रोग का कारण बनता है।
- चंद्र लग्न में षष्ठेश सूर्य और सप्तमेश बुध की युति हो रही है।
- चंद्र लग्न में सप्तमेश व अष्टमेश का राशि परिवर्तन हो रहा है तथा अष्टमेश का नीच राशि में होना गुप्तांग के रोग को दिखाता है।

इसी प्रकार से अधोनिर्मित कुण्डली चक्र में गर्भाशय में अर्बुद होने के योग दिखायें गयें है। आप जन्माङ्ग चक्र को ध्यान से देखें तथा इसमें प्रदत्त ग्रह स्थितियों के ज्योतिषविश्लेषण का अध्ययन भी ध्यानपूर्वक करें।

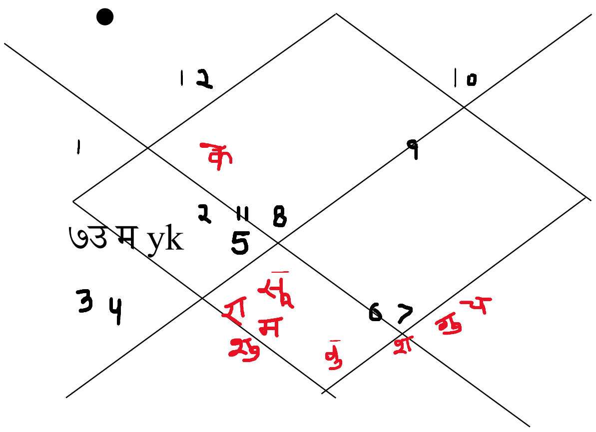

विश्लेषण- (गर्भाशय में अर्बुद Tumour)

- सप्तम भाव में सूर्य-मंगल-शुक्र-राहु की युति होना तथा लग्नेश शनि का अष्टमेश बुध के साथ बैठना।
- सप्तम स्थान में सप्तमेश सूर्य और एकादशेश मंगल का राहु से पीड़ित होना कष्टप्रद है।
- चंद्र कुंडली में सप्तमेश और अष्टमेश का भी राहु के साथ बैठना स्त्रीरोग को बढ़ाता है।
- लग्न तथा चंद्र से सप्तमभाव तथा सप्तमेश का राहु से साथ बैठकर पीड़ित होना गर्भाशय को पीडित करता है।
- राहु के साथ सूर्य-मंगल की युति को ज्योतिष शास्त्र में अनिष्टकारी माना गया है।

अभ्यासप्रश्न-2

रिक्तस्थानोंकीपूर्तिकीजिए-

- स्त्रीरोग के मुख्य कारण __________ हैं।
- स्त्रीरोग का प्रथम कारण __________ की अनियमितताहै।
- ज्योतिष शास्त्र में रोग का कारक भाव _____ है।
- त्रिक भाव _________ को कहा गया है।

- लग्नाधियोग के अंतर्गत _______ भावों को रखा जाता है।

3.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन से आपने जाना किरोग-परिज्ञान हेतु भारतीय परम्परा में ज्योतिषशास्त्र तथा आयुर्वेद की प्रारम्भ से ही प्रमुख भूमिका रही है। विविध स्त्रीरोगों के चिकित्सकीय तथा ज्योतिषीय कारणों की चर्चा प्रस्तुत इकाई में की गई है। विविध ज्योतिषशास्त्रीय ग्रन्थों में वर्णित ग्रहयोगों के माध्यम से किस प्रकार से हम किसी जातिका के जन्माङ्ग चक्र का विश्लेषण करके यह सम्भावना व्यक्त कर सकते है कि कोई स्त्री अपने जीवनकाल में किस-किस रोग से तथा किस-किस काल में पीडित हो सकती है। इस सबकी विस्तृत चर्चा प्रस्तुत इकाई में की गई है। ना केवल ग्रहों के योगों का ही अपितु उन ग्रहयोगों को उदाहरण कुण्डली के माध्यम से दर्शा कर उस कुण्डली का विस्तृत विश्लेषण करते हुये वर्णन किया गया। यदि किसी भी जातिका के जन्माङ्ग चक्र में पूर्वोक्त ग्रहयोगों में से कोई योग बन रहा हो तो उस जातिका के उस रोग से पीडित होने की सम्भावना रहती है और उस रोग से बचाव हेतु समुचित आहार-विहार का पालन कर वह जातिका उस रोग के कारण उसको होने वाले शारीरिक तथा मानसिक कष्ट को बहुत हद तक कम करने में सफल हो सकती है।

3.6 पारिभाषिक शब्दावली

१- **वेदाङ्ग**–वेद को छः अंगों में विभाजित किया गया है,जो इस प्रकार है- शिक्षा-कल्प-व्याकरण-निरुक्त-छंद-ज्योतिष। इसी को वेदाङ्ग कहते है।

२- **व्याधि**-व्याधि का तात्पर्य रोग से है।

३- **कष्टार्तव** –महिलाएँ अपने पीरियड्स के दौरान पीठ के निचले हिस्से में दर्द व पेट में दर्द से गुजरती है, उसी को कष्टार्तव Dysmenorrhea कहा जाता है

४- **मासिकधर्म**-महिलाओं में होने वाला एक प्राकृतिक परिवर्तन है जिसके नियमित तथा सही प्रकार से चलने से ही एक स्त्री गर्भधारण करने में सक्षम हो पाती है।

५- **त्रिदोष**-वात, पित्त और कफ ये त्रिदोष होते हैं। आयुर्वेद इन तीन दोषों के असंतुलन को रोग का कारण मानता है।

६- **प्रदररोग**-महिलाओं में होने वाली एक सामन्य बीमारी जिसमें योनि से श्वेत और गाढ़े पदार्थ का स्राव होता है, इसके दो प्रकार हो सकते हैं स्वाभाविक और अस्वभाविक

3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास-1 कीउत्तरमाला-

१- असत्य।
२- सत्य।
३- असत्य।
४- असत्य।
५- सत्य।

अभ्यास-2 कीउत्तरमाला-

१- तीन।
२- रक्तस्राव।
३- षष्ठ भाव।
४- 6-8-12 भाव।
५- 6-7-8।

3.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

१- ज्योतिष शास्त्र में रोग विचार,डॉ.शुकदेव चतुर्वेदी, मोतीलालबनारसीदास
२- बृहज्जातक, उत्पलटीका, मोतीलालबनारसीदास,
३- फलदीपिका, पं.गोपेशकुमारओझा, मोतीलालबनारसीदास
४- लघुजातक, भट्टोत्पल-भारती टीका, चौखम्बा सुरभरती प्रकाशन, वाराणसी
५- ज्योतिष और रोग, श्री कृष्ण कुमार, एल्फ़ा पब्लिकेशन रोशनपुर दिल्ली
६- वीरसिंहावलोक:, पं श्री रामकृष्ण पराशर:, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

3.9 सहायक पाठ्य सामग्री

१- अमरकोषः, अमरसिहं, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, वाराणसी
२- बृहत्पाराशर-होराशास्त्रम्, सं. पं. देव चन्द्र झा, चौखम्बाप्रकाशन, वाराणसी
३- ज्योतिष शास्त्र में रोग विचार,डॉ.शुकदेव चतुर्वेदी, मोतीलालबनारसीदास

४- ज्योतिष और रोग, श्री कृष्ण कुमार, एल्फ़ा पब्लिकेशन रोशनपुर दिल्ली
५- जातकालंकार, सं.डॉ. सत्येनद्रमिश्र, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी
६- जातकपारिजात, श्रीवैद्यनाथविरचित, चौखंबा संस्कृत संस्थान, वाराणासी
७- भुवनदीपक, डॉ. सत्येन्द्रमिश्र, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी
८- लघुजातक, भट्टोत्पल-भारती टीका, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी
९- वीरसिंहावलोकः, पं श्री रामकृष्ण पराशरः, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

१- स्त्रीरोग का विस्तार से वर्णन कीजिये ?

२- स्त्रीरोग के वैज्ञानिक कारण बताइए?

३- स्त्रीरोग के मुख्य कारण माने जाने वाले ज्योतिषीय कारण को स्पष्ट कीजिये ?

४- स्त्रीरोग पाँच उदाहरणों को विस्तार पूर्वक लिखिये ?

इकाई -04बालरोग

इकाई की संरचना

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 बालरोग-एक परिचय
4.3.1बालरोग के वैज्ञानिक कारण
4.4.बालरोग के ज्योतिषीय कारण
4.4.1.बालरोग के ज्योतिषीय उदाहरण
4.5 सारांश
4.6 पारिभाषिक शब्दावली
4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची
4.9 सहायक पाठ्य सामग्री
4.10 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

ज्योतिषशास्त्र का उद्भव वैदिक काल से ही हो गया था इसमें कोई संशय नहीं। वेदों को भारतीय ज्ञान परम्परा का आदि स्रोत माना गया है तथा आदि काल से ही ग्रह, नक्षत्र तथा अन्य खगोलीय पिंडों का अध्ययन जिस शास्त्र के अन्तर्गत किया जाता है, उस शास्त्र को ज्योतिषशास्त्र कहा गया है। वेद के मुख्य ६ अंगों में ज्योतिषशास्त्र को एक अभिन्न अंग के रूप में माना गया है।

भारतीय चिन्तनधारा के आदिस्रोत के रूप में विद्यमान वेद ही सभी शास्त्रों का मूल है। ज्योतिषशास्त्र का मूल भी वेद ही है। वेद के छः अंग मुख्य माने गए हैं जिन्हें षड् वेदाङ्ग कहा जाता है, इनमें ज्योतिष को नेत्र के रूप में स्वीकार किया गया है। ज्योतिष शास्त्र का प्राचीनतम ग्रंथ है "वेदांग ज्योतिष"। इसके प्रणेता आचार्य लगध को माना गया हैं। यह ग्रंथ ज्योतिष का आधार ग्रंथ है। ज्योतिषशास्त्र में दिग्-देश-काल को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है। इस शास्त्र का मूल सम्बन्ध कालगणना से है ।तद्यथा-

वेदा हि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः कालानुपूर्वा विहिताश्च यज्ञाः।

तस्मादिदं कालविधानशास्त्रंयो ज्योतिषंवेद स वेद यज्ञान्॥

वेदों के चार विभाग है- ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद। इन चार वेदों के चार उपवेद है। ऋग्वेद का उपवेद आयुर्वेद, यजुर्वेद का उपवेद धनुर्वेद, सामवेद का उपवेद गान्धर्ववेद तथा अथर्ववेद का उपवेद स्थापत्यवेद है। इन सभी वेदों,उपवेदों,उपनिषदों, वेदाङ्गों तथा वैदिक पृष्ठभूमि पर आधारित समस्त शास्त्रों का उद्देश्य मानव के जीवन को सुखमय तथा सुविधापूर्ण बनाना है। वेदों के नेत्रस्थानीय ज्योतिषवेदाङ्ग का भी मूल उद्देश्य मानव मात्र को इष्टप्राप्ति तथा अनिष्टपरिहार का उपाय करना है। मानव के लिए अनिष्टतम रोग ही है और इन रोगों के ज्ञान तथा निदान हेतु विविध आचार्यों ने विविध विज्ञानों तथा विविध विद्याओं के माध्यम से मानवकल्याण हेतु कार्य किया है, उन शास्त्रों में से योग, आयुर्वेद,मुद्राविज्ञान तथा ज्योतिषविज्ञान प्रमुख है। जब हम रोग के ज्ञान तथा निदान के विषय में चिन्तन करते है, तो सर्वप्रथम जो शास्त्र हमारे सम्मुख आता है –उसकी संज्ञा आयुर्वेद है, जिसका साक्षात् सम्बन्ध ऋग्वेद से है। आयुर्वेद ऋग्वेद का ही उपवेद है।

ज्योतिषशास्त्र में भी किसी मनुष्य को होने वाली विविध व्याधियों के सम्बन्ध में विचार किया गया है। ज्योतिषशास्त्र के विविध आचार्यों के मतानुसार सूर्यादि नव ग्रह वात-पित्त-कफादि त्रिदोषों का प्रतिनिधित्व करते है। आयुर्वेद तथा ज्योतिष दोनों ही

शास्त्र मिलकर विविध रोगों के ज्ञान और निदान में अपनी भूमिका का निर्वहण करते है। इस प्रकार यदि कहा जाए कि रोगोपशमन की दृष्टि से ये दोनों ही शास्त्र एक-दूसरे के पूरक है तो अतिशयोक्ति नहीं होगी । आयुर्वेद जिन तत्त्वों के आधार पर किसी व्यक्ति को होने वाले विविध रोगों के सम्बन्ध में चिन्तन करता है, उन तत्त्वों में से एक तत्त्व काल-सम्प्राप्ति भी है। काल का ज्ञान ज्योतिषशास्त्र के अधीन है, जिसके माध्यम से हम यह जान सकते है कि किसी व्यक्ति की जन्मकालिक ग्रहस्थिति के आधार पर उसको अपने जीवन काल में किस-किस समय में किन-किन रोगों से पीडित होना पडेगा ?

इस प्रकार से ज्योतिषशास्त्र के अध्ययन के उपरान्त हम विविध ग्रहों से होने वाले रोगों के विषय में जान सकते है। मानव इस सृष्टि की सर्वोत्तम रचना है। कोई भी जीव जब इस धरा पर जन्म लेता है तो वह प्रथम बाल्यावस्था में ही होता है, बालक को हिंदू धर्म में साक्षात ईश्वर का रूप माना जाता है क्योंकि उनके भीतर वास्तविक ईश्वरीय अंश विद्यमान रहता है जिससे वह बिना किसी विकार के स्वच्छन्द भाव के साथ सभी को एकरूप में देखते हैं।बाल्यावस्था में बालक का शरीर विकसित हो रहा होता है और उसकी रोगप्रतिरोधक क्षमता अत्यन्त कम होती है , अतः बालक के रोगी होने की सम्भावना सर्वाधिक होती है। इसीलिए आयुर्वेद तथा ज्योतिषशास्त्र के आचार्यों ने बच्चों में होने वाले रोगों के विषय में गम्भीरता से चिन्तन करते हुए इन रोगों के ज्ञान तथा निदान परविचार किया है। प्रस्तुत इकाई में इन्हीं बालरोगों के विषय में चिन्तन किया गया है।

4.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप जान सकेंगे-

- बालरोग किसे कहते हैं ?
- बालरोगों में किन-किन व्याधियों का समावेश किया गया है?
- बालरोग के वैज्ञानिक कारण क्या हैं?
- बालरोग के ज्योतिषीय कारण क्या है ?
- जन्मकुण्डली से बालरोग का विश्लेषण कैसे किया जाता है?

4.3 बालरोग – संक्षिप्त परिचय

जैसे कि नाम से ही स्पष्ट होता है,इस विषय का सीधा सम्बन्ध बच्चों में होने वाली बीमारियों से है। बालचिकित्सा Pediatrics अथवा बालरोगचिकित्सा

भारतीयचिकित्साविज्ञान की वह शाखा है जो शिशु,बालकों एवं कुमारावस्था के बच्चों से सम्बंधित रोगों की चिकित्सा से सम्बन्धित विज्ञान है। आयु की दृष्टि से देखा जाए तो इसके अन्तर्गत नवजात शिशु से लेकर १२ से २१ वर्ष के किशोर तक आ जाते हैं।

भारतीय चिकित्सा पद्धत्ति के अनुसार देखा जाए तो बालरोग के विषय में चिन्तन आदिकाल से ही प्राप्त होता है यथा- बालरोग आयुर्वेद के अष्टांगों में एक अभिन्न अंग है, जिसे कौमारभृत्य की संज्ञा दी गई है। वस्तुतः कौमारभृत्य के अन्तर्गत प्रसूतितंत्र, स्त्रीरोगविज्ञान तथा बालरोगविज्ञान को रखा जाता है। कश्यपसंहिता कौमारभृत्य का एक स्वतन्त्र ग्रंथ है, आधुनिक दृष्टिकोण से देखा जाए तो आज यह तीनों विषय अपने में एक स्वतंत्र शास्त्र को लिये हुए हैं।कौमारभृत्यके अन्तर्गत निम्न रोगों को रखा गया है।

- कुमार बच्चों का पोषण एवं रक्षण सम्बन्धी विकार।
- दुग्ध एवं आहारजन्य विकार।
- शारीरिक विकृतियाँ।
- ग्रहजन्य बाधा।
- औपसर्गिक रोग।
- बालस्वास्थ्य का वर्णन।
- आगंतुकरोगों का विवरण एवं चिकित्सा।

वस्तुतः आधुनिक चिकित्सा पद्धत्ति में पूर्व में बालरोग नामक कोई स्वतंत्र शाखा थी ही नहीं, ऐतिहासक ग्रंथों में स्पष्ट वर्णन मिलता है कि सर्वप्रथम १८९९ ई० में किंग्स कालेज चिकित्सालय, लंदन में बालरोग विशेषज्ञ पृथक रूप से रखा गया था, इससे पूर्व बालक को युवक का लघु रूप मानकर ही चिकित्सा की जाती थी। २०वीं शताब्दी के अंतराल में बालमृत्यु दरों में बहुत अधिक वृद्धि होने के कारणबालरोगों पर पृथक् रूप से काम करने का निर्णय लिया गया। बालरोगों पर पृथक् रूप से शोध और प्रयोग किये जाने लगें और आज यह आधुनिकचिकित्सा विज्ञानके एक प्रमुख अंग के रूप में स्थापित है।

बालरोग के विविध प्रकार

बालरोग से अभिप्राय उन रोगों से है जो शिशु की मानसिक, बौद्धिक एवं शारीरिक वृद्धि को बाधित करते है ।इन रोगोंका वर्गीकरण शिशु, बालक एवं कुमार अवस्था के भेद से किया गया है ।बाल रोगों का विस्तृत वर्गीकरण इस प्रकार से है-

बालरोग का वर्गीकरण

१- आनुवांशिक बालरोग

- पैतृक एवं मातृक।
- प्रसवपूर्व।
- प्रसवज।

इसके अंतर्गत होने वाले मुख्य रोग इस प्रकार हैं।

हिमोफ़िलिया (Hemophilia), गर्भज रक्तनाल कोशिकाप्रसु रोग, अंगघात, मस्तिष्क विकार, एलर्जी रोग, एक्ज़िमा और श्वासरोग इत्यादि।

२-सहज़रोग

बालकमाता के गर्भ मेंही माता-पिता के रोगों से ग्रसित हो जाता है, रोगों के कारण गर्भ सही प्रकार से विकसित नहीं हो पाता। इसके अंतर्गतहोने वाले कुछ मुख्य रोग इस प्रकार हैं -

श्वासावरोध, मस्तिष्क रक्तस्राव, मृदुअस्थिभग्न तथा पेशीघात (प्रसव में होने वाला एक मुख्य रोग), अवरुद्ध मासिक वृद्धि, मिर्गी, विकलांगता, मस्तिष्कघात आदि

३-कुपोषण रोग

बच्चों में अच्छी वृद्धि के लिए पोषक आहार अत्यंत महत्वपूर्ण होता है। इसी पर बालक का आकार, वजन, लम्बाई एवं बौद्धिक क्षमता / विकास निर्भर करता है। कुपोषण के कारण होने वाले मुख्य रोगइस प्रकार है-

अतिसार, वृक्करोग, वमनरोग, कमजोरी, त्वक्शूशक्ता, रात्रि में अंधापन, बेरी-बेरी रोग, मुँह एवं आँतों में व्रण, रक्तवाहिनियों में रोग, पेलेग्रा रोग, रिकेट इत्यादि

४-औपसर्गिक रोग

औपसर्गिक का तात्पर्य संक्रमण रोगों से है, जो संक्रमण से एक दूसरे में भी फैल जाते हैं ।विविध औपसर्गिक रोग है-

मसूरिका, कर्णफेर, स्कार्लेट ज्वर, शैशविक अंगघात, चेचक, चिकंपोक्स, हूपिंग कफ, स्माल पोक्स, मसिशकवरण शोथ (Meningitis), लसपर्वशोथ (Lymph ademitis), स्ट्रेप्टो कोकाय, मेनिगो कोकाय, टाईफाईड, निमोनिया, पीलिया, सामान्य खांसी-ज़ुखाम।

५- अन्यरोग

इन रोगों के अतिरिक्त कुछ अन्य रोग भी बालकों में आमतौर पर दिखाई देते है, जो इस प्रकार है-

रुमैट्रिक ज्वर,डायबटीज़ मेलाइट्स,डायबटीज़ इसिपिडस,एंड्रिनलजन्यरोग, पिट्यूटरी हीनताजन्यरोग,थाईराएड हीनताजन्य रोग,यौनग्रंथिज रोग इत्यादि।

बालकों में होने वाले घातक रोगों में टिटैनिस, डिफथीरिया, यक्ष्मा, मेनेन्जाइटिस, एन्सेफलाइटिस, न्यूमोनिया, बालयकृत शोथ आदि की गणना की जाती है।

अभ्यासप्रश्न-1

निम्नलिखितप्रश्नोंमेंसत्य/असत्यकथनकाचयनकीजिए।

११- बालरोग आनुवंशिक नहीं होते हैं ?

१२- बालरोग का तात्पर्य बच्चों में होने वाले रोगों से है ?

१३- वृक्करोग एक औपसर्गिक रोग होता है ?

१४- औपसर्गिक का तात्पर्य संक्रमण रोगों से है ?

१५- यक्ष्मा को सामान्य बालरोग माना जाता है ?

4.3.1.बालरोग के वैज्ञानिक कारण

भारतीय चिकित्सा विज्ञान में इस बात को स्पष्ट रूप से माना गया है कि कोई भी रोग मुख्य रूप से तीन ही कारणों से होता है। तद्यथा-

४- वंशानुक्रम
५- जन्मकालिक
६- संक्रमण

इन कारणों के अतिरिक्त बच्चों के रोगी होने के तीन मुख्य कारण माने जाते हैं- सबसे पहले माता पिता का किसी रोग से ग्रसित होना, जो वंशानुक्रम से आगे बढ़ जाता है,

दूसरा है गर्भ अथवा प्रसव के दौरान शिशु के पोषण में किसी प्रकार से कमी आना, जिसमें माता द्वारा सही खानपान व अन्य आवश्यकपौष्टिक वस्तुओं का सेवनन करना, स्वास्थ्य का सही देखभालन होना, शारीरिक कमज़ोरियों को दूर न करना आदि आ जाते हैं, तीसरा कारण बच्चे के जन्म हो जाने के बाद बाहरी वातावरण, किसी संक्रमित व्यक्ति का सम्पर्क, शरीर को आवश्यक विटामिन का ना मिलना, अथवा जिन टीकों को अनिवार्य रूप से लगाना चाहिए उनमें किसी की कमी हो जानाहै, जिसके कारण शिशु के शरीर में जीवाणुओं से लड़ने की क्षमता विकसित नहीं हो पाती और शिशु बीमार पड़ जाता है।

ये कुछ मुख्य कारण हैं जिनसे ये विभिन्न बीमारियाँ जन्म लेती हैं । भारत देश की बात की जाए तो यहाँ बच्चों में होने वाली बीमारियों के कुछ और कारण भी माने जाते हैं यथा-

- स्वास्थ्य सेवाओं का अभाव।
- बच्चों में बढ़ता कुपोषण का प्रभाव।
- ग्रामीण इलाक़ों में अच्छे प्रशिक्षित डाक्टरों का ना होना।
- आज भी बच्चे घरों में जन्म लेते हैं जहां सही देखभाल का न मिल पाना।
- समय रहते बच्चों को सही उपचार न मिलना।

4.3.3 बालरोग के ज्योतिषीय कारण

ज्योतिषीय ग्रन्थों में बालकों की आयु का विचार सर्वप्रथम किया गया है। कहा गया है-

पूर्वमायुः परीक्षेत्।

अतः आयु निर्धारण को मुख्य मानकर बालरोगों काविचार किया गया है। शिशु कीमृत्यु कब होगी अथवा किन योगों में बालक शीघ्र आयु पूर्ण कर लेता है- इस सम्बन्ध में विस्तृत चर्चा ज्योतिषशास्त्र में प्राप्त होती है। यह कहा जा सकता है बालरोग में आयु को केंद्र में रख करही ज्योतिषीय विचार किया गया है।जिसका वर्गीकरण इस प्रकारकिया जा सकता है।

- कुंडली में अल्पायु योग।
- बच्चों में सद्योमारक योग।

- जन्म के कुछ दिनो बाद मृत्यु योग ।
- एक मास के भीतर मृत्यु का योग।
- एक वर्ष की आयु का योग।
- जातक की २ से ९ वर्ष की आयु का योग।

अब ज्योतिषशास्त्र के अनुसार बताए गये विभिन्न योगों के विषय में विस्तार से वर्णन किया जा रहा है।

स्वोच्चे स्वकीयभवने क्षितिपालतुल्यो,लग्नेऽर्कजे भवति देशनराधिनाथः।

शेषेषु दुःखगदपीड़ित एव बाल्ये,दारिद्रयकासवशगो मलिनोऽलसश्च ।।

अर्थात् जातक की कुंडली में शनि यदि लग्न में स्वगृह अथवा उच्च राशि का हो तो जातक राजा के सामान तेजस्वी होता है किंतु यदि शनि स्वगृह व उच्च का ना हो तो जातक अनेक रोगों से पीड़ित, दरिद्र, कासरोग से ग्रसित, मलिन अथवा आलसी होता है। इस श्लोक से स्पष्ट होता है कि कुंडली में मात्र एक ही ग्रह किस प्रकार से बालक के जीवन को पूर्णरूप से प्रभावित करने का सामर्थ्य रखता है और साथ ही एक नया नियम भी मिलता है किमात्र षष्ठ भावही नहीं अपितुलग्न के दूषित होने पर भी शारीरिक कष्ट व रोगों से पीड़ा होती है।

इसी क्रम में एक अन्य श्लोक प्राप्त होता है, यदि जातक की कुंडली में शनि ग्रह चतुर्थस्थान में हो तो जातक हृदयरोग से पीड़ित होता है तथा साथ ही साथ ऐसा जातक बंधु बांधव से, अर्थ से,सुख और सवारी अर्थात् वाहन सुख से रहित एवं व्याधियों से पीड़ित रहता है। जातक का शरीर भी सुन्दर नहीं होता। शरीरपर नख व बाल अधिक होते हैं।

पीड़ितहृदयो हिबुके निर्वाहनबान्धवार्थमतिसौख्यः।

बाल्ये व्याधितदेहो नखरोमधरो भवेत्सौरिः ।।

असुखान्वितो दरिद्रो रोगैश्चवाभिपीड़ितोऽप्राज्ञः।

जननीरहितोऽतिमृदुर्विशिष्टनिरतः सदातुरश्चापि ।।

शनि के चतुर्थ स्थान पर होने सेबालकदुखी,दरिद्र, माता से रहित, शरीर से कमजोर और सदा रोगी रहता है।यदि कर्क राशि का शनि चतुर्थ भाव में हो तो भी बालक रोग से ग्रसित होता है।

भुजंगमे विलग्नगे विभावरी विभौ यदा।

रुजायुषोस्तदा शिशु: समेति तत्क्षणे मृतिम्।।

यदि कुण्डली में लग्न स्थान में राहु हो और षष्ठस्थान अथवा अष्टमस्थान पर चंद्र स्थित हो तो जातक अल्पायु होता है तथा उसकी शीघ्र मृत्यु हो जाती है। आयु का आघात करने में शनि के बाद राहु प्रमुख ग्रह है, लग्नस्थ राहु होने पर भी शनि जैसा प्रभावही जातक को झेलना पड़ता है और यदि कोई शुभ ग्रहों का प्रभाव ना हो तो जातक की शीघ्र मृत्यु भी हो जाती है। इसी क्रम में कुछ अन्य योगों पर चर्चा की जा रही है, जिनका सीधा प्रभाव जातक की आयु पर पड़ता है।

सद्योमारक योग -

केन्द्रे कोणे खलदिविशदोऽर्कोदये य: प्रसूतो,

वेन्दौ ग्रस्ते परिधिसहिते वाद्यदृष्टेऽथ याम्ये।

पापै: खेटैर्जनुषि बहुलै: क्रूरषष्ट्यंशयातै:,

भूभूभांशे किमखिलशुभा निर्जिता वैरिराशौ।।

वीरसिंहावलोक में स्पष्ट वर्णन मिलता है कि यदि जातक की कुंडली में यह निम्न योग हो तो जातक की शीघ्र मृत्यु के योग बनते है अथवा जातक का जीवन रोग ग्रसित रहता है।

- सूर्योदय में जन्म होने पर केंद्र-त्रिकोण में पाप ग्रह तथा त्रिक भावों में शुभ ग्रह हों।
- कुंडली में चंद्रमा पीड़ित हो तथा राहु अथवा पापग्रहों से युत व दृष्ट हो।
- जातक के जन्मकाल में मंगल की राशि हो अथवा अत्यधिक ग्रह मंगल के नवांश में स्थित हो।
- लग्न में मंगल हो और किसी शुभ ग्रह से दृष्ट ना हो।
- यदि लग्नेश अष्टम स्थान में हो तथा पाप ग्रहों से दृष्ट हो।
- लग्न में शनि, सप्तम में सूर्य तथा अष्टम में मंगल हो।
- त्रिकोण में पाप ग्रह हो, चंद्रमा क्षीण हो और किसी शुभ ग्रह से दृष्ट ना हो रहा हो।
- लग्न में क्षीण चंद्रमा हो ,केंद्र में पाप ग्रह हो तथा सप्तम में राहु हो।

- यदि लग्न,द्वादशएवं अष्टम में क्रम से शनि,मंगल,सूर्य एवं चंद्रमा हो।

इस प्रकार से नवजात शिशु के जन्म के समय लग्न व लग्नेश किसी भी प्रकार से पाप/क्रूर ग्रहों से युत एवं दृष्ट हो रहा हो, क्षीण चंद्रमा हो, केंद्र पापयुक्तहो, त्रिकोण में शुभ ग्रहना हो, लग्नेश का अथवा अष्टमेश का सम्बन्ध हो तो निश्चित ही जातक की कुंडली में सद्योमारक योग बनते हैं।

इसी क्रम में कुछ इस प्रकार के योगों की वर्णन किया जा रहा है जिससे जातक के जन्म के बाद कुछ दिनों (१०-११-१६ दिनों) में मृत्यु के योग बनते हैं।

चंद्रादस्ते भौमार्कौ दशाहे शिशुमरणम्।

मन्दाभगे जीवेऽष्टमे पापै: दृष्टे एकादशाहे शिशुमरणम्।

मन्देऽड़्गे पापमात्रदृष्टे षोडशाहे शिशुमरणम्।

- कुंडली में चंद्रमा से सातवें स्थान पर सूर्य-मंगल की युति हो रहीहो तो जातक की आयु १० दिन की होती है।
- यदिअष्टम भाव में शनि की राशि में गुरु हो तथा उसपर पापग्रहों की दृष्टि हो तो जातक की आयु एकादश दिन की होती है।
- जन्मकालिक कुंडली में लग्न में शनि हो और उस पर समस्त पाप ग्रहों की दृष्टि पड़ रही हो तो जातक की आयु १६ दिनों की समझनी चाहिये।

एकमास में की आयु वाले ज्योतिषीय ग्रहजन्य योग -

षष्ठाष्टमगा: सौम्या वक्रगपापदृष्टा मासे शिशुमरणम्।

सपापेऽ~गेशेद्यूने मासे शिशुमरणम्।

कुजऽगे जीवेत्ये शुभे षष्ठे मासे शिशुमरणम्।

सपापजन्मेशे रन्ध्रे मासे शिशुमरणम्।

लग्नपेऽस्ते खलविजिते मासे शिशुमरणम्।

मन्दार्का रन्ध्रे वा षष्ठे मासे शिशुमरणम्।

लग्ने राहु: षष्ठाष्टमे चन्द्रे सद्योमृत्यु।

- षष्ठ स्थान एवं अष्टम स्थान में शुभ ग्रहों की स्थिति हो किंतु इन ग्रहों पर वक्री पाप ग्रहों की दृष्टि हो।
- लग्नेश सप्तम स्थान में पापग्रहों से युत हो।
- जातक की कुंडली में लग्न, द्वादश, षष्ठ भाव में क्रमशः मंगल, गुरुतथा कोई शुभग्रह स्थित हो तो जातक की आयु एक मास की होती है।
- राशि स्वामी अष्टम स्थान पर पाप ग्रहों से युत व दृष्ट हो।
- सप्तम स्थान पर लग्नेश अपनी क्षीण अवस्था में हो।
- जातक की कुंडली में सूर्य, मंगल, शनि की युति छठे भाव अथवा अष्टम भाव पर हो ।
- लग्न में राहु हो, छठे व अष्टम स्थान पर चंद्रमा हो तो ऐसा माना जाता है कि जातक की एकमास की आयु होती है।

इन कुछ उपरोक्त योगों से जातक की आयु को एक मास का समझना चाहिए।

दो मास से लेकर एकवर्ष की आयुके ज्योतिषीय योग-

ग्रहणेऽगेशेबले सपापैः पक्षत्रयं वा मासत्रयं जीवति।

रंध्रऽगेशे पापयुतदृष्टे तुर्यमासायुः।

सर्वपापोक्लिमगा विबलाः षण्मासायुः।

पापर्क्षे सुते इंद्र्र्करा: षण्मासायुः।

धनान्त्यागा वा व्ययरिगा वा रन्ध्रारिगा वाष्टमाकगाः

पापाः षष्ठेऽष्टमे वा मासि मृतिः।

लग्नद्रेष्कोणेशे षष्ठे भतुल्ये मासि मृतिः।

षष्टाष्टमगयो पापदृटयोः पापयोर्वर्षान्तरे मृतिः।

मन्दार्कारा: षष्ठेऽष्टमे वर्षान्तरे मृतिः।

- यदि किसी जातक का जन्म ग्रहण काल में हुआ हो और साथ ही लग्नेश निर्बल होकर पाप ग्रह से युक्त हो तो जातक की आयु एक से तीन मास की होती है।

- लग्नेश की पाप ग्रह के साथ अष्टम स्थान पर युति हो एवं उसपर किसी पापग्रह की दृष्टि हो तो जातक की आयु चार मास की होती है।
- किसी जातक की कुंडली में शुभ एवं अशुभग्रह तृतीय, षष्ठ, नवम एवं द्वादश स्थान में स्थित हो तथा उनकी अवस्था निर्बल हो तो जातक की मृत्यु छः मास में हो जाती है।
- चंद्रमा, सूर्य और मंगल कुंडली में पंचम स्थान में पाप राशि १-८-५-१०-११ में बैठे हों तो जातक की आयु छः मास की होती है।
- जातक की कुंडली में सभी ग्रह २ एवं १२ भाव में स्थित हों, ६ एवं १२ भाव में हों, ६ एवं ८ स्थान में हों, ८ एवं ९ स्थान में हों तो जातक की आयु ५ व ६ मास ही होती है।
- पापग्रह छठे और आठवें स्थान पर स्थित हो और किसी पाप ग्रह से दृष्ट हो तो जातक की आयु १ वर्ष की होती है।
- केंद्र में चंद्र-बुध स्थित हो तथा उन्हें अस्तंगत शनि-मंगल देख रहे हो तो जातक की आयु १ वर्ष का होती है।
- कुंडली में ६ एवं ८ स्थान पर शनि, मंगल, सूर्य हो तो जातक की आयु एकवर्ष की होती है ।

आयु का निर्णय करते हुए उपरोक्त सभी योगों का विचार किया जाता है। इसके अतिरिक्त विविध ज्योतिषग्रन्थों में अन्य अल्पायु योगों का वर्णन प्राप्त होता है। जो इस प्रकार है -

ज्योतिषशास्त्रानुसार २ वर्ष से ९ वर्ष की आयु के योग -

लग्नपाच्चन्द्रेशेऽष्टमे पापमात्रदृष्टे वर्षद्वयायुः।

केन्द्राष्टषष्ठे वक्रग्रहे कुजभे सबलारदृष्टे वर्षत्रयायुः।

सोत्थे पापांशगौ पापदृष्टौ पुष्पवन्तौ वर्षत्रयायुः।

भौमभेऽष्टमे जीवे मन्देन्द्वेऽर्कदृष्टे भृग्वदृष्टे वर्षत्रयायुः।

केन्द्रे व्ययगे वा गुरौ त्रिरिपुधर्मस्थेऽगे सपापे त्र्यब्दायुः।

कर्केऽगे चन्द्रारौ ग्रहोने केन्द्रे रन्ध्रे चन्द्राब्दायुः।

षष्ठाष्टमे कर्कगे ज्ञे चंद्रदृष्टे तूर्यऽब्दे मृतिः।

रंध्रेशेऽगेगपे रन्ध्रे चेत्पंचाब्दायु:।

षष्ठाष्टमागाः सौम्या: कोणे पापा अष्टमेब्दे मृति: ।

त्रिके चन्द्रार्कार्कियोगे नवमाब्दे मृति: ।

ज्ञभगा इंद्वर्कारा गुर्वदृष्टा नवमाब्दे मृति: ।

- कारकांश कुंडली में लग्नेश से आठवें स्थान पर चंद्रमा बैठा हो और पाप ग्रहों से दृष्ट हो तो जातक की आयु २वर्ष की होती है ।
- यदि किसी जातक की कुंडली में प्रथम, चतुर्थ, षष्ठ, सप्तम एवं दशम स्थान पर मंगल की राशि हो और उसपर बलवान मंगल की दृष्टि पड़ रही हो तो जातक की आयु ३ वर्ष की होती है।
- यदि तृतीय भाव में सूर्य एवं चंद्रमा पापग्रह के नवमांश मेंहो तथा पाप ग्रहों से दृष्ट हो जातक की आयु ३ वर्ष माननी चाहिये ।
- कुंडली में अष्टम स्थान पर मंगल की राशि में गुरु होतथा उस पर शनि, सूर्य, क्षीण चंद्रमा की दृष्टि हो परन्तु शुक्र की दृष्टि ना हो तो जातक की आयु ३ वर्षकी होती है।
- कुंडली में षष्ठ एवं अष्टम भाव में कर्क राशि का बुध हो तथा उस पर चंद्रमा की दृष्टि हो तो जातक की आयु ४ वर्ष होती है।
- यदि लग्नेश अष्टम में स्थित हो तथा अष्टमेश लग्न में स्थित हो तो जातक को ५ वर्ष की आयु में मृत्युतुल्य कष्ट होता है।
- कुंडली में ५ एवं ९ स्थान में पाप ग्रह ६ एवं ८ भाव में शुभग्रह हों तो जातक की आयु ८ वर्षहोती है।
- यदि त्रिक स्थान में चंद्रमा, सूर्य और शनि का योग हो तो जातक की आयु ९ वर्ष की होती है ।
- यदि बुध की राशि में चंद्रमा, सूर्य, मंगल की युति हो और शुक्र की दृष्टि ना हो तो जातक की आयु ९ वर्ष की होती है ।

4.4.1बालरोग के ज्योतिषीय उदाहरण

अल्पायु का योग- जातक का नाम शौर्य

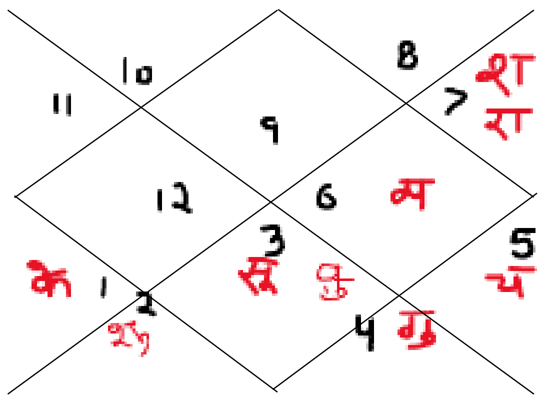

१-७-२०१४

१७:५५

कानपुर

जातक का जन्म जुलाई २०१४ का हैऔर जन्म के बाद से ही स्वास्थ्य ठीक नहीं था, मानसिक विकास नहीं हो रहा था, डाक्टरों के अनुसार मस्तिष्क में ट्यूमर इसका कारण है। परिवार इसको दैवीय आघातमानता था। जातक की मृत्यु अचानक से २०१९ में हो जाती है।

इस पत्रिका का विश्लेषण किया जा रहा है जो इस प्रकार से है-

विश्लेषण-

- लग्न एवं लग्नेश दोनों पर शनि की तृतीय एवं दशम दृष्टि पड रही है।
- लग्नेश गुरुअष्टम भाव मेंबैठा हैअतः जातक को स्थान हानि...... का फल मिला।
- लग्न पर मंगल की भी चतुर्थ दृष्टि है
- शुभग्रह का स्थिति षष्ठ एवं अष्टम भाव में है।
- केंद्र भाव में पाप ग्रहस्थित है ।
- जातक का जन्म केतु की महदशा और रोगेश शुक्र की अंतर्दशा में हुआ।
- रोगेश के कारण रोग साथ लेकर जातक उत्पन्न हुआ

चिकनपोक्स का योग- जातक का नाम विकास

२-१०-१९९३

६:४५am, दिल्ली

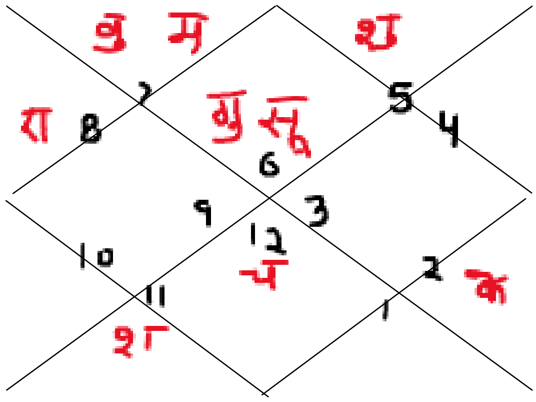

इस पत्रिका का ज्योतिषीय विश्लेषण किया जा रहा है जो इस प्रकार से है-

विश्लेषण- (चिकनपोक्स रोग)

- लग्नेश बुध की मंगल के साथ द्वितीय भाव में युति।
- लग्न में सूर्य की स्थिति ।
- लग्नेश की अष्टमेश मंगल के साथ युति जिसका सम्बंध त्वचा व रक्त से है।
- केतु की महादशामें रोग हुआ, केतु चर्मरोग कारक है।
- जातक को केतु की महादशा में म-बु की अंतर्दशा में रोग हुआ।
- द्वितीय भाव में योग बनने से सर्वाधिक प्रभाव जातक के मुख एवं नेत्रों में हुआ

श्वेतरोग (ल्यूकोड़र्मा) –जातिका का नाम ख़ुशी

२४-८-१९९७

८:५० am, बीकानेर

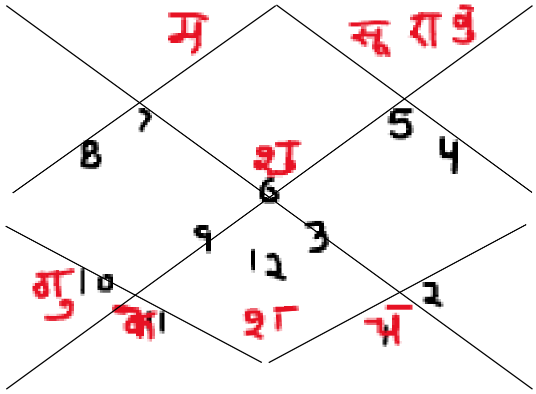

जातिका को श्वेतरोग २ साल की आयु में हुआ, इसका ज्योतिषीय कारण कुंडली में स्पष्ट दिख रहा है किंतुचिकित्सको के अनुसार, यह रोग बालिका को आनुवंशिक रूप में प्राप्त है।

विश्लेषण- (श्वेतरोग)

- लग्नेश अग्नितत्व की राशि में सूर्य एवं राहु के साथ बारहवें भाव में बैठा है।
- लग्नेश पर चर्मरोग कारक केतु की भी दृष्टि पड रही है।
- बुध त्वचा का कारक है, सूर्य अग्नितत्व का कारक है, केतु चर्म रोग का कारक है तीनों ग्रहों का परस्पर सम्बंध है।
- जातिका को शुक्र की महादशा के अंतर्गत केतु की अंतर्दशा में रोग आरम्भ हुआ।
- षष्ठ भाव का स्वामी ग्रह शनि लग्न को सप्तम दृष्टि से प्रभावित कर रहा है।
- चंद्रमा अग्नितत्व की राशि में बैठा है तथा उसपर मंगल की भी दृष्टि पड रही है।

मूक-बधिर योग- जातक का नाम अश्मित

५-१०-१९९०

२३:१०, दिल्ली

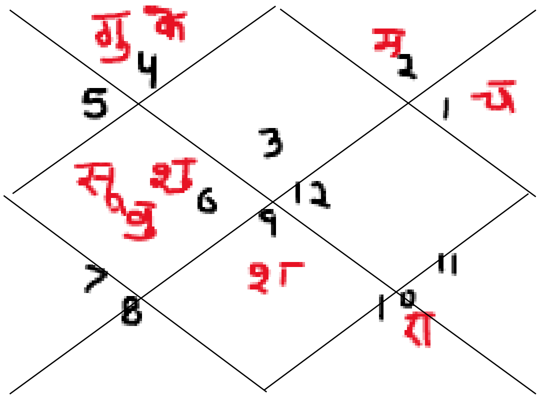

विश्लेषण- (मूक-बधिर रोग)

- द्वितीय भाव मुख एवं ग्रीवा का कारक भाव है।
- द्वितीय भाव में मारकेश गुरु केतु के साथ है।
- मुख एवं ग्रीवा कारक वृष राशि में रोगेश मंगल है और रोगस्थान को देख रहा है।
- द्वितीय भाव तथा द्वितीयेश पर किसी प्रकार से कोई शुभ दृष्टि नहींहै।
- द्वितीयभाव पर राहु की भी दृष्टि है।
- लग्नेश चतुर्थ स्थान पर सूर्य, द्वादशेश शुक्र के साथ बैठा है।
- लग्नेश एवं लग्न भाव दोनों ही शनि की सप्तम एवं दशम दृष्टि से प्रभावित है।

हृदयरोग–जातक का नाम अंशुमन

७-१-२००८

१०:२२ am, दिल्ली

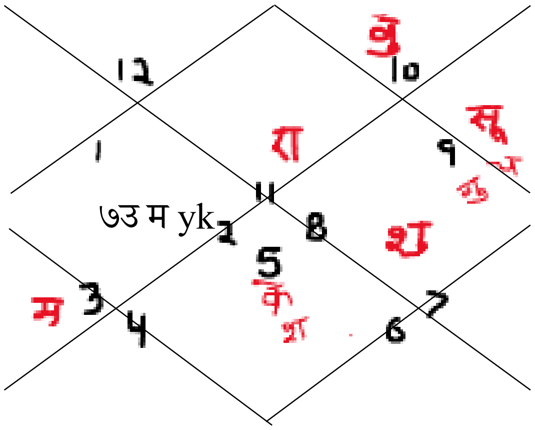

यह पत्रिका कुम्भ लग्न की है। यह जन्म से हृदय रोग से पीड़ित है, इसके हृदय में छेद था व जातक अन्य हृदय सम्बन्धी समस्याओं से पीड़ित रहा है।

विश्लेषण- (जन्म से हृदय में छेद)

- लग्नेश केतु के साथ सप्तम भाव में है तथा उसपर राहु की सप्तम दृष्टि है।
- सूर्य एवं चंद्रमा दोनों पर मंगल का प्रभाव है।
- हृदय सम्बन्धी ग्रह सूर्य नवमांश में नीच राशि का बैठा हुआ है।
- चंद्र लग्नेश एवं चतुर्थेश पर मंगल का प्रभाव है।
- नवमांश कुंडली में चतुर्थेश शुक्रराहु के साथ स्थित होकर मंगल एवं केतु के प्रभाव में हैं।
- पीड़ित लग्नेश तथा सूर्य चंद्र की प्रतिकूल स्थिति है।

अभ्यासप्रश्न-2

रिक्तस्थानोंकीपूर्तिकीजिए-

- बालरोग के प्रमुख कारण __________ हैं।
- बालरोग का निर्धारण ज्योतिष में __________ को केंद्र में रख कर किया गया है।
- ज्योतिष शास्त्र में रोग का कारक भाव _____ है।
- त्रिक भाव _________ को कहा गया है।
- सद्योमारक योग का तात्पर्य जातक के _______ से है

- लग्न में पाप ग्रह होने से ________ योग बनता है।

4.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन से आपने जाना कि ज्योतिष का रोग से किस प्रकार से साक्षात् सम्बंध है तथा ज्योतिष शास्त्र में इस विषय पर शोध का कार्य हमारे ऋषि मुनियों द्वारा किया गया है। इस इकाई में हमने जाना कि भारतीय ज्योतिष शास्त्र में जो रोगों के कारण बताए गए हैं, उनका एक वैज्ञानिक पक्ष भी है मात्र कपोल कल्पना नहीं।प्रस्तुत इकाई में विविध प्रकार के बालरोगों का चिकित्सकीय विश्लेषण तो किया ही गया है, उसके साथ ही इन बाल रोगों का ज्योतिषशास्त्रीय विश्लेषण भी किया गया। ज्योतिषशास्त्र के विविध आचार्यों ने सर्वप्रथम जातक के आयु परीक्षण की बात की है तथा अल्पायु अथवा मध्यमायु के अनेक योग ज्योतिषग्रन्थों में प्राप्त होते है।तदनन्तर किस प्रकार की ग्रहस्थिति में किस रोग से कष्ट जातक को भोगना पडेगा ,इसके भी अनेक योग ज्योतिषग्रन्थों में प्राप्त होते है।

बालरोग के अंतर्गत किन किन रोगों का समावेश किया जाता है,इसका पूर्ण वैज्ञानिक चिकित्सीय विशलेषण विस्तार से किया गया है, साथ ही कुछ ऐसे रोगों के विषय में भी बताया है जो आज भी असाध्य रोग बने हुए हैं बालरोग के कारणों पर भी चर्चा की गई है। इन सबके साथ बालरोग का ज्योतिषीय दृष्टिकोण भी दिया गया है तथा प्रमाण सहित उनका विश्लेषण यहाँ प्रस्तुत किया गया है। बालरोग तथा बालारिष्ट का भी चर्चा की गई। ज्योतिष शास्त्र में वर्णित कतिपय योगों को यहाँ प्रस्तुत किया गया जिनके आधार पर कुंडलियों का विश्लेषण करने का भी प्रयास किया गया, जिससे पाठकों के लिए इस विषय के प्रति जागरूकता बढ़े और वैज्ञानिक दृष्टिकोण उभरकर सामने आए तथा छात्रों को विषय को जानने में भी सरलता का अनुभव हो ।

4.6 पारिभाषिक शब्दावली

वेदाङ्ग–वेद को छः अंगों में विभाजित किया गया है, वह इस प्रकार है- शिक्षा-कल्प-व्याकरण-निरुक्त-छंद-ज्योतिष

कौमारभृत्य –यह आयुर्वेद की वह शाखा है जिसमें स्त्रिरोगविज्ञान,प्रसूतितंत्र एवं बालरोगविज्ञान के बारे में वर्णन प्राप्त होता है।

कुपोषण- कुपोषण का तात्पर्य बच्चों में सही आहार व्यवस्था का ना होना है जिससे उनके सर्वांगीण विकास में बाधा होती है।

औपसर्गिक- इसका अर्थ संक्रमण से है।

त्रिदोष- वात, पित्त और कफ ये त्रिदोष होते हैं। आयुर्वेद इन तीनों दोषों के असंतुलन को रोग का कारण मानता है।

प्रसवज- प्रसव के दौरान होने वाली समस्या ।

सद्योमारक- कुंडली में ऐसे, योग जिनके कारण जातक अल्पायु होता है उनको सद्योमारक योग कहा जाता है।

हिबुक- कुंडली के चतुर्थ भाव को कहा जाता है।

जीव- बृहस्पति ग्रह को जीव की संज्ञा दी गई है।

रन्ध्र- इसका शाब्दिक अर्थ छिद्र है, ज्योतिष शास्त्र में इसका प्रयोग अष्टम भाव के लिय किया जाता है।

4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास-1 कीउत्तरमाला-

असत्य।

सत्य।

असत्य।

असत्य।

असत्य।

अभ्यास-2 कीउत्तरमाला-

तीन ।

आयु ।

षष्ठ भाव।

६-८-१२ भाव।

जीवन काल।

अरिष्ट।

4.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. ज्योतिष शास्त्र में रोग विचारमोतीलालबनारसीदास ,शुकदेव चतुर्वेदी.डॉ,
2. बृहज्जातक ,उत्पलटीका ,मोतीलालबनारसीदास,
3. फलदीपिकामोतीलालबनारसीदास ,गोपेशकुमारओझा.पं ,
4. लघुजातकवाराणसी ,चौखम्बा सुरभरती प्रकाशन ,भारती टीका-भट्टोत्पल ,
5. ज्योतिष और रोग एल्फ़ा पब्लिकेशन रोशनपुर दिल्ली ,श्री कृष्ण कुमार ,
6. वीरसिंहावलोक ,:पं श्री रामकृष्ण पराशर ,:चौखम्बा कृष्णदास अकादमी , वाराणसी

4.9 सहायक पाठ्य सामग्री

1. अमरकोषःवाराणसी ,चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान ,अमरसिहं ,
2. बृहत्पाराशरवाराणसी ,चौखम्बाप्रकाशन ,देव चन्द्र झा .पं .सं ,होराशास्त्रम्-
3. ज्योतिष शास्त्र में रोग विचारमोतीलालबनारसीदास ,शुकदेव चतुर्वेदी.डॉ,
4. ज्योतिष और रोगश्री कृ ,ष्ण कुमार एल्फ़ा पब्लिकेशन रोशनपुर दिल्ली ,
5. जातकालंकारवाराणसी ,चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन ,सत्येनद्रमिश्र .डॉ.सं ,
6. जातकपारिजातवाराणासी ,चौखंबा संस्कृत संस्थान ,श्रीवैद्यनाथविरचित ,
7. भुवनदीपक ,सत्येन्द्रमिश्र .डॉ ,चौखम्बा सुरभारती प्रकाशनवाराणसी ,
8. लघुजातकभट् ,टोत्पलराणसीवा ,चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन ,भारती टीका-
9. वीरसिंहावलोक ,:पं श्री रामकृष्ण पराशर ,:चौखम्बा कृष्णदास अकादमी , वाराणसी

4.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. बालरोग का विस्तार से वर्णन कीजिये ?
2. बालरोग के वैज्ञानिक कारण बताइये?
3. बालरोग /बालारिष्ट के मुख्य कारण माने जाने वाले ज्योतिषीय कारण को स्पष्ट कीजिये ?
4. बालारिष्ट के पाँच योगों का उदाहरणसहित विस्तार पूर्वक लिखिये ?